ISSN 2321-4945
UGC CARE Research Journal

द्विभाषी राष्ट्रसेवक

वर्ष : 72 ● अंक : 11 ● फरवरी, 2023

भारत सरकार द्वारा फिजी में आयोजित 12वें विश्व हिंदी सम्मेलन में असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति को ''विश्व हिंदी सम्मान'' से अलंकृत किया गया है। 17 फरवरी, 2023 को भारत के माननीय विदेश मंत्री श्री एस. जयशंकर जी के कर-कमलों से यह विशेष सम्मान ग्रहण करते हुए समिति के कार्याध्यक्ष श्री भारतभूषण महंत।

फिजी में आयोजित 12वें विश्व हिंदी सम्मेलन में असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति को प्रदत्त सम्मान पत्र

RNI NO. ASSBIL/2009/31008 ISSN : 2321-4945

एक हृदय हो भारत जननी

द्विभाषी राष्ट्रसेवक

(भाषा, साहित्य, समाज, कला व संस्कृति विषयक शोध-पत्रिका)

UGC CARE Research Journal

वर्ष : 72 अंक : 11 फरवरी, 2023

परामर्श मंडल

श्री भारतभूषण महंत
कार्याध्यक्ष, असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति
गुवाहाटी (असम)

प्रो. आर.एस. सर्राजु
सम कुलपति, हैदराबाद विश्वविद्यालय
तेलंगाना-500046

प्रो. प्रदीप के शर्मा
कुलसचिव, उच्च शिक्षा शोध संस्थान
दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा
टी. नगर, चेन्नई (तमिलनाडु)

डॉ. दीपक प्रकाश त्यागी
प्रोफेसर, हिंदी विभाग
दीन दयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय
गोरखपुर (उत्तर प्रदेश)

डॉ. दिलीप कुमार मेधि
प्रोफेसर, हिंदी विभाग
गौहाटी विश्वविद्यालय, गुवाहाटी (असम)

डॉ. अमूल्य चंद्र बर्मन
पूर्व अध्यक्ष, हिंदी विभाग
कॉटन विश्वविद्यालय, गुवाहाटी (असम)

डॉ. अच्युत शर्मा
पूर्व अध्यक्ष, हिंदी विभाग
गौहाटी विश्वविद्यालय, गुवाहाटी (असम)

प्रधान संपादक

डॉ. क्षीरदा कुमार शइकीया
मंत्री, असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति

संपादक

प्रो. मोहन
हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय
दिल्ली-1

कार्यकारी संपादक

रामनाथ प्रसाद
प्रभारी साहित्य सचिव
असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति

असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, गुवाहाटी

DWIBHASHI RASTRASEWAK : A Bilingual (Hindi & Assamese) Monthly Research Journal, Focused on Language, Literature Society, Art and Culture, Partially funded by Central Hindi Directorate, Govt. of India and Published by Asom Rastrabhasha Prachar Samiti, Rupnagar, Guwahati-781032.

प्रकाशक :

असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति

गुवाहाटी-32

संपादकीय कार्यालय :

प्रधान संपादक, द्विभाषी राष्ट्रसेवक

असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति

सेवा मंदिर पथ, रूपनगर, गुवाहाटी-32

फोन : 9101541395, 9101541380

ई-मेल : rastrasewak51@gmail.com

मूल्य : रु. 50/- (प्रति अंक)

शब्द संयोजन : रतिकांत कलिता

आवरण पृष्ठ : 12वाँ विश्व हिंदी सम्मेलन

असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति की ओर से मंत्री डॉ. क्षीरदा कुमार शइकीया द्वारा सराइघाट फोटो टाइप्स प्रा.लि., इंडस्टियल इस्टेट, गुवाहाटी-781021 में मुद्रित, प्रकाशित एवं प्रसारित।

सर्वाधिकार : **असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, गुवाहाटी-32**

'द्विभाषी राष्ट्रसेवक' में प्रकाशित रचनाओं के विचारों से असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति का सहमत होना आवश्यक नहीं है। प्रकाशित सामग्री के उपयोग हेतु प्रकाशक की अनुमति आवश्यक है। सभी कानूनी विवादों का निपटारा गुवाहाटी न्यायालय के अधीनस्थ होगा।

विषय सूची

हिंदी विभाग

क्रम	विषय	लेखक	पृष्ठ
	संपादकीय		4
1.	स्वाधीन भारत में शिक्षा नीति : द्वितीय	✍ डॉ. आकाश वर्मा	6
2.	भारतीय संस्कृति के प्रसार में हिंदी की भूमिका	✍ प्रो. सुशील कुमार शर्मा	13
3.	लोक जीवन के कुशल चितेरे : अमित कुमार मल्ल	✍ प्रो. यशवंत सिंह	17
4.	सुभाष चंद्र बोस के विचारों में भारतीय राष्ट्रवाद का सांस्कृतिक स्वरूप : एक पुनरावलोकन	✍ लकी शर्मा / ✍ डॉ. कँवर चंद्रदीप सिंह	22
5.	निशी समुदाय के कटु यथार्थ को अभिव्यक्ति करता 'जंगली फूल'	✍ डॉ. उपमा शर्मा	29
6.	मानवीय राग के रचनाकार : फणीश्वर नाथ 'रेणु'	✍ डॉ. अरुण कुमार पाण्डेय	37
7.	तुलनात्मक साहित्य की प्रविधि-प्रक्रिया : एक आलोचनात्मक दृष्टि	✍ राजीव कुमार बेज	41
8.	हिंदी-मणिपुरी कहानियों में चित्रित मूल्य संबंधी समस्याएँ	✍ नोङथोमबम गुणचंद्र सिंह	47
9.	असम और असमीया साहित्य में महात्मा गांधी	✍ डॉ. परिस्मिता बरदलै	56
10.	आचार्य विष्णुकांत शास्त्री की आलोचना दृष्टि और असमीया राम साहित्य	✍ मनीष कुमार भारती	66

অসমীয়া বিভাগ

11.	বহুভাষিকতা ঃ এক সমাজভাষাতাত্ত্বিক পৰিঘটনা	✍ ড° সেউজী শর্মা	71
12.	বুৰঞ্জী সাহিত্যত ব্যৱহৃত সম্বন্ধবাচক ৰূপ	✍ ড° কণিমা পাঠক	77
13.	শিকন ব্যৱস্থাপনা প্রণালীৰ জৰিয়তে প্রদান কৰা কর্মৰত শিক্ষকসকলৰ বৃত্তিমূলক বিকাশ প্রশিক্ষণ কার্যসূচী ঃ ইয়াৰ ফলপ্রসূতাৰ ওপৰত সাহিত্য পর্যালোচনাৰ পৰা পোৱা ফলাফল	✍ জুল দত্ত/ ✍ ড° নৃপেন্দ্র নাৰায়ণ শর্মা	82
14.	য়েছে দৰজে ঠংচিৰ মিছিং উপন্যাসত প্রকাশিত জনজাতীয় সমাজ ঃ এক জমু অৱলোকন	✍ চিম্পী গগৈ	92
15.	ছুটি (গল্প)	✍ শিৱানী দে	99

संपादकीय

असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति को विश्व हिंदी सम्मान

हिंदी ने देश को एकता की डोर में बांधने का काम किया है। आजादी की लड़ाई में जब पूरा देश अपना सर्वस्व न्योछावर कर रहा था, तब देश के कवियों और साहित्यकारों ने अपनी कलम की क्रांति से वो हुंकार भरी थी कि देश के युवा से लेकर हर वर्ग स्वाधीनता पाने को लेकर व्याकुल हो उठे थे। स्वतंत्रता की लड़ाई में हमारी सबसे बड़ी ताकत एकता थी और उस वक्त पूरे देश को एक सूत्र में बांधने में हिंदी ने निर्णायक भूमिका निभाई थी।

1893 में दक्षिण अफ्रीका गए महात्मा गांधी जब 21 साल बाद 9 जनवरी 1915 को भारत लौटे तो करोड़ों भारतीयों के लिए वे आजादी दिलाने की उम्मीद बन गए थे। स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान भारतीयों को एकजुट करने के लिए महात्मा गांधी, सुभाष चंद्र बोस, लाला लाजपत राय, बाल गंगाधर तिलक, गोपीनाथ बरदलै और तरुणराम फुकन जैसे स्वतंत्रता सेनानियों ने हिंदी को केवल स्वीकार ही नहीं किया बल्कि अपने आंदोलन का भाषाई माध्यम भी बनाया। इसी के फलस्वरूप पूरे देश में हिंदी प्रचार-प्रसार के लिए अनेक स्वैच्छिक संस्थाओं की स्थापना हुई। उसी क्रम में असम (जिसमें पहले पूरा पूर्वोत्तर क्षेत्र आता था) में स्वतंत्रता सेनानियों एवं बुद्धिजीवियों ने हिंदी सेवी संस्था का गठन कर स्थानीय लोगों को हिंदी सीखाने की पहल की। इसके चलते पूर्वोत्तर में हिंदी के प्रति एक स्नेह का भाव लोगों में पनपा।

असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति हिंदी की उन्नति और प्रगति हेतु विगत आठ दशकों से पूर्वोत्तर क्षेत्र में निष्ठा एवं समर्पण भाव से काम करती आ रही है। यह जनजातीय बहुल क्षेत्र होने के साथ-साथ यहाँ भिन्न भाषा-भाषी लोग रहते हैं। हर जनजाति की अपनी परंपराएँ, भाषा और उनकी अलग पहचान है। पूर्वोत्तर केवल भाषा, परंपरा और संस्कृति के क्षेत्र में समृद्ध नहीं है बल्कि प्राकृतिक सुषमा और सौंदर्य के क्षेत्र में भी अतुलनीय है। पहाड़-पर्वत, नद-नदियाँ, ताल-तलैया, झील-झरने, दुर्लभ वनस्पतियाँ एवं वण्यजीव यहाँ प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं। यही वजह है कि असम में हर साल हजारों की संख्या में सैलानी यहाँ के प्राकृतिक सौंदर्य का लुफ्त उठाने के लिए आते हैं। सैकड़ों भाषा-भाषी वाले इस जनजातीय क्षेत्र में हिंदी के लिए जमीन तैयार करना सामान्य-सी बात नहीं है।

आज हमें फक्र है कि असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति ने स्वाधीनता से पूर्व इस प्रांत में हिंदी के लिए जमीन तैयार करने में अहम् भूमिका निभाई, जिसके कारण यहां हिंदी प्रचार-प्रसार के नए आयाम खुले। देश की आजादी के पहले जब पूर्वोत्तर के सातों राज्य उस वक्त असम के नाम से ही जाने जाते थे, तब महात्मा गांधी अपने असम प्रवास के दौरान लोगों में एकता की मजबूती के लिए हिंदी का अधिकाधिक प्रयोग पर बल दिया था। उन्हीं के मार्गदर्शन में असम के स्वतंत्रता सेनानियों के सहयोग से प्रथम मुख्यमंत्री (उस समय प्रधानमंत्री कहलाते थे) भारत रत्न लोकप्रिय गोपीनाथ बरदलै जी ने 3 नवंबर 1938 को इस संस्था की नींव रखी और स्वयं संस्थापक अध्यक्ष बने। आज उनकी विरासत को नई पीढ़ी को सौंपने की जरूरत है।

जब हम अपने पूर्वजों का स्मरण करते हैं तो उनके विशाल हृदय के आगे अपने को बौना पाते हैं। जिस प्रकार गांधी जी अहिंदी भाषा थी, उसी प्रकार असम में गोपीनाथ बरदलै भी अहिंदी भाषा ही थे। वे हिंदी नहीं जानते थे, उन्होंने तय किया था कि भारतीय लोगों के बीच विचारों के आदान-प्रदान हेतु एकमात्र संपर्क भाषा हिंदी ही हो सकती है। इसलिए असम में श्री बरदलै जी सबसे पहले अपनी पत्नी सूरबाला बरदलै को हिंदी की तालिम दिलवाई। असम का नेतृत्व संभालने के साथ-साथ उन्होंने पत्नी से थोड़ा-बहुत खुद हिंदी सीखी। यह उनके हिंदी प्रेम का प्रमाण है।

गांधीवादी नेता होने के नाते वे पूर्वोत्तर के लोगों को हिंदी की औपचारिक शिक्षा दिलाने के उद्देश्य से स्वयं अपनी जेब से 17 रुपये 12 आने चंदा देकर असम हिंदी प्रचार समिति की नींव रखी, जो बाद में असम हिंदुस्तानी प्रचार समिति बनी, फिर कुछ समय के अंतराल में उसका नाम असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति रखा गया। यह संस्था देश-प्रदेश की अनेक विभूतियों के श्रम से सिंचित है। उनकी मेहनत, त्याग और समर्पण की बुनियाद पर ही यह संस्था टिकी हुई है।

हम अपने स्थापना काल से ही हिंदी समेत भारतीय भाषाओं के विकास और संबंर्धन के लिए प्रयासरत हैं। इसलिए समिति को समय-समय पर पुरस्कार भी मिलते रहे हैं। उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान का राजर्षि पुरोषोत्तम दास टंडन पुरस्कार, केंद्रीय हिंदी संस्थान का बाबू गंगा शरण सिंह पुरस्कार, अखिल भारतीय हिंदी संस्था संघ का स्वर्ण जयंती सम्मान आदि उल्लेखनीय हैं।

हाल ही में फिजी में आयोजित 12वें विश्व हिंदी सम्मेलन के दौरान भारत सरकार की ओर से समिति को विश्व हिंदी सम्मान से सम्मानित किया गया, जो एक हिंदीतर क्षेत्र की हिंदीसेवी संस्था के लिए बहुत बड़ी उपलब्धि है। इसके लिए हम सभी हिंदीप्रेमियों, शुभचिंतकों, शिक्षकों, शोधार्थियों, प्रचारकों के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करते हैं। हिंदी की सेवा राष्ट्र की सेवा है। इसी सेवा भाव के साथ आप सभी शब्द शिल्पियों को अशेष शुभकामनाएं। ❑

दृष्टिकोण

स्वाधीन भारत में शिक्षा नीति : द्वितीय

डॉ. आकाश वर्मा

आचार्य, हिंदी विभाग
असम विश्वविद्यालय
सिलचर, असम, 788011
मो. 09435173672
ई-मेल : hindiakash@gmail.com

पिछली नीति की व्यवस्थाएँ 1969 से व्यवहृत की जाने लगीं। 10+2+3 संरचना के साथ कृषि, व्यावसायिक, तकनीकी, विज्ञान की शिक्षा आदि के लिए विशेष व्यवस्थाएँ होने लगीं। गणित आदि पश्चिमी वैज्ञानिक अध्ययनों को एक प्रकार से अनिवार्य किया जाने लगा। इसी बीच 1977 में जनतांत्रिक विद्रोह के चलते मोरारजी देसाई प्रधानमंत्री बनते हैं, जिन्होंने 1968 की शिक्षा व्यवस्था में बदलाव का विचार किया। उन्होंने 10+2+3 के स्थान पर 8+4+3 शिक्षा संरचना को लागू करने का विचार प्रस्तुत किया। उस समय केंद्रीय शिक्षा मंत्री प्रताप चंद्र चंदर ने कुछ शिक्षाविदों और सासंदों के सहयोग से दूसरी नई शिक्षा नीति तैयार की और 1979 में उसे लागू करने की घोषणा कर दी।[1] इसी बीच चुनाव आ जाते हैं और 1980 में पुन: इंदिरा गांधी की सरकार बन जाने से मोरारजी देसाई द्वारा प्रस्तुत शिक्षा नीति लागू नहीं होती और 1968 की नीतियों का पुन: अनुपालन किया जाने लगता है।

प्रथम शिक्षा नीति इस अवस्था में बनी थी, जब भारतीय व्यवस्थाएँ भारतीय जनतंत्र के अनुसार स्थापित और विकसित करनी थीं। उस समय के बारे में यह कहा जा सकता है कि तत्कालीन जनता को पहले भारतीय स्वरूप की नीतियों के हिसाब से ढालना था, चरित्रीत करना था तथा उनसे देश के विकास अथवा निर्माण में हिस्सेदारी का भी सहयोग लेना था। यह भी कह सकते हैं कि वह अवस्था बुनियादी आवश्यकताओं के अनुसार निर्मित होनी थी। प्रथम शिक्षा नीति 1968 के तहत भारत निर्माण के स्वप्न बड़े व्यापक थे, हालाँकि इसके वह व्यापक परिणाम नहीं निकले, क्योंकि जनता को स्वाधीनता की वास्तविकता समझने और अपनी स्थिति में सुधार लाने की जागरूकता के विकसित होने में ही दो दशक से अधिक का समय लग गया। गौर करें तो प्रथम शिक्षा नीति भारतीय शिक्षा के इतिहास में एक महत्वपूर्ण घटना थी, जिसका उद्देश्य भारत की जनता को सुसंस्कृत करके राष्ट्रीय बोध एवं एकता को मजबूत बनाना था। इसके लिए शिक्षा के एक रूपीय पद्धति को पूरे देश में लागू किया गया। हाँ, यह माना जा सकता है कि इसी नीति के चलते आज

भारत के प्रत्येक गाँव में रहने वालों के लिए लगभग एक किलोमीटर के भीतर प्राथमिक विद्यालय उपलब्ध हुए–इससे शिक्षा के प्रति जागरूकता बढ़ी, प्राथमिक और माध्यमिक स्तर तक के छात्रों की संख्या में वृद्धि हुई, लेकिन कोठारी आयोग द्वारा सुनिश्चित वास्तविक उद्देश्य पूरे नहीं हुए। शब्दश: उल्लेख करें – यद्यपि ये उपलब्धियाँ अपने आप में महत्वपूर्ण हैं, किंतु यह सच है कि 1968 की शिक्षा नीति के अधिकांश सुझाव कार्यरूप में परिणत नहीं हो सके, क्योंकि क्रियान्वयन की पक्की योजना नहीं बनी, न स्पष्ट दायित्व निर्धारित किए गए और न ही वित्तीय एवं संगठन संबंधी व्यवस्थाएँ ही हो सकीं। नतीजा यह हुआ कि विभिन्न वर्गों तक शिक्षा को पहुँचाने, उसका स्तर सुधारने और विस्तार करने तथा आर्थिक साधन जुटाने जैसे महत्वपूर्ण कार्य नहीं हो पाए और इन कमियों ने एक बड़े अंबार का रूप धारण कर लिया है। इन समस्याओं का हल निकालना वक्त की पहली जरूरत है।[2]

शिक्षा नीति 1986 :

दूसरी राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986, पिछली नीति शिक्षा नीति 1968 में बहुत अधिक बदलाव नहीं लाती है, बल्कि उसी आधारशिला पर अधिक तीव्रता से कार्ययोजना बनाकर काम करने की आवश्यकता पर बल देती है। कहने का तात्पर्य यह कि इस नीति में बुनियादी ढाँचे को उसी प्रकार रहने दिया जाता है और उसी की पृष्ठभूमि पर कुछ नई योजनाएँ भी जरूर शामिल की जाती हैं, जैसे– मुक्त विश्वविद्यालय, नवोदय विद्यालय आदि जैसी शैक्षिक अवधारणाएँ। इस नीति के प्रमुख सुझाव और योजनाएँ[3] इस प्रकार देखी जा सकती हैं –

इस नीति में प्रथम भाग में पूर्व शिक्षा नीति की प्राथमिक विद्यालयी स्तर पर प्राप्त उपलब्धियों की सराहना तो की गई, किंतु भविष्यगामी योजनाओं में कमियों की ओर संकेत किया गया, इसलिए इसमें संशोधन अथवा नवीकरण की आवश्यकता को रेखांकित किया गया है। इसमें एक ओर भारतवर्ष के क्रमश: आर्थिक तथा तकनीकी रूप से सक्षम होने को स्वीकार किया गया। निश्चित रूप से इसके पीछे शैक्षिक पृष्ठभूमि ही होती है। पुन: जायजा लेकर शिक्षा को और अधिक तीव्रतम, सुदृढ़ तथा भविष्योन्मुखी बनाने की योजना पर बल दिया गया। चरित्र निर्माण, रोजगार के अवसर, महिलाओं की साक्षरता को सार्थकतम रूप में विकसित करने की बात की गई।

इसके भाग दो और तीन शिक्षा के औचित्य, आवश्यकता और उसके महत्व पर बात करते हैं। इसमें संकेत किया गया है कि सबके लिए शिक्षा, सुसंस्कृत शिक्षा द्वारा समाजवाद, धर्मनिरपेक्षता एवं लोकतंत्र के निर्माणक अवयवों के विकास, आत्मनिर्भर भारत के निर्माण, जाति, धर्म, स्थान आदि से भेदभाव रहित शिक्षा, के लिए प्रभावकारी प्रयास किए जाएँ। साथ–ही–साथ वसुधैव कुटुंबकम, राष्ट्र चेतना, राष्ट्र गौरव, सांस्कृतिक धरोहर, लोकतंत्र, समानता आदि के बोध को प्रत्येक स्तर पर जागरूक करने वाली शिक्षा का प्रसार किया जाएगा। इसमें आजीवन शिक्षा, सार्वजनीन साक्षरता के माध्यम से घरेलू महिलाओं, युवा वर्ग, किसान, मजदूर, कामकाजी लोगों को उनकी सुविधा–पसंद के अनुसार शिक्षा की योजनाएँ बनाई गईं। यहीं से मुक्त विश्वविद्यालय की अवधारणा को और अधिक बल मिला। इसके पूर्व इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय 1985 में स्थापित हो चुका था।

भाग चार, भारत की शिक्षा में समानता की शिक्षा को महत्व देने का संकेत करता है, जिसमें महिलाएँ, अनुसूचित जाति तथा जनजाति, शिक्षा की दृष्टि से पिछड़े हुए दूसरे वर्ग, अल्पसंख्यक, विकलांग तथा प्रौढ़ वर्ग के लोग आते हैं। इसकी क्रिया विधि के लिए गाँवों में सतत शिक्षा केंद्र, एजेंसियों द्वारा श्रमिक शिक्षा, उच्च शैक्षिक संस्थान, पुस्तकालय, वाचनालय, संचार के माध्यमों का उपयोग, शिक्षितों द्वारा शिक्षा प्रसार, दूर शिक्षण केंद्र आदि द्वारा कराया जाए तथा इनको प्रोत्साहन दिया जाए।

भाग पाँच, प्रत्येक स्तर पर शिक्षा की पुरानी व्यवस्था (नीति) को पुनर्गठित करने की बात करता है – शिशु देखभाल केंद्र से लेकर उच्च शिक्षा तक। शिक्षा केंद्रों की बुनियादी आवश्यकता जैसे अनिवार्य भवन, गुणवत्ता में सुधार, शिक्षण सामग्री तथा साधनों की अनिवार्य

आपूर्ति, प्राथमिक स्तर के सुधार के लिए ऑपरेशन ब्लैक बोर्ड, माध्यमिक स्तर से ही व्यावसायिक शिक्षा के पाठ्यक्रम के प्रवेश की बात की गई । 14 वर्ष तक बच्चों के स्कूल में बने रहने के लिए मूल्यांकन पद्धति को लचीला बनाकर फेल न करने की प्रक्रिया अपनाई जाए ताकि वे स्कूल में बने रहें और अधिक-से-अधिक बच्चे शिक्षित हो सकें। अनौपचारिक शिक्षा तथा एक संकल्प के सहारे इसे पूरा करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया। खंड पाँच में ही माध्यमिक शिक्षा में व्यावसायिक व्यक्तित्व निर्माण को बढ़ावा देने की बात कही गई है, ताकि आरंभ से ही व्यावसायिक विवेक का निर्माण हो सके तथा किसी कारण से उच्च शिक्षा में आगे नहीं जाते तो स्वारोजगार की ओर बढ़ सकें। शिक्षा पिरामिड में उच्च शिक्षा शीर्षस्थ होने के चलते इसकी गुणवत्ता के विकास को महत्व दिया गया, क्योंकि इसके बाद लोग आवश्यकता और पद-अनुसार सामाजिक निर्माण, प्रशासनिक भूमिका तथा देश के नियामक संचालक की भूमिका में जाते हैं। इसलिए विशिष्ट ज्ञान और कुशलता को बनाए रखने के लिए और इसको गिरावट से बचाने के उपाय किए जाएँगे। विश्वविद्यालयों से कॉलेजों के अनुबंधन घटाकर उनको स्वायत्तता दी जाएगी, ताकि उनको कार्य करने की स्वतंत्रता मिल सके। निश्चित रूप से ये सभी कार्य विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की देख-रेख में ही होने हैं। इसके साथ ही मुक्त विश्वविद्यालय और दूरस्थ शिक्षा पद्धति को लागू किया जाए। हाँ, इसमें (मुक्त तथा दूरस्थ) विशिष्ट व्यावसायिक पाठ्यक्रम जैसे- चिकित्सा, कानून, शिक्षण, इंजीनियरिंग को अलग रखा गया। खंड पाँच में ही ग्रामीण विश्वविद्यालय की अवधारणा रखी गई, जिसके माध्यम से महात्मा गांधी के शिक्षा संबंधी क्रांतिकारी विचारों के अनुरूप विकसित किए जाने का विचार रखा गया। इसका उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्र के उन्नयन की दृष्टि से योग्य शिक्षा दिया जाना है। इसके माध्यम से महात्मा गांधी की बुनियादी शिक्षा से संबद्ध संस्थाओं और कार्यक्रमों को सहायता दी जाएगी।

भाग छह में तकनीकी एवं प्रबंध शिक्षा की ओर ध्यान देने की बात कही गई है। इसका कारण आने वाली नई सदी तथा कंप्यूटर युग का आरंभ माना जा सकता है। निश्चित रूप से अर्थव्यवस्था की नींव की सुदृढ़ता के लिए उन्नत तकनीकी तथा प्रबंधकीय क्षमता से युक्त जनशक्ति की आवश्यकता होने वाली थी, जिस पर सरकार को ध्यान देना चाहिए। विशेष रूप से शैक्षिक संस्थाओं में तकनीकी साक्षरता के साथ प्रौद्योगिकी, स्वरोजगार, उद्यम-विषयक प्रशिक्षण की

व्यवस्था के विकास की ओर ध्यान दिया जाएगा। इसके निर्माण के लिए आवश्यकतानुसार नवाचार, शोध आदि को विकसित करने पर ध्यान दिया जाएगा। संस्थाओं द्वारा चलाए जाने वाले इन पाठ्यक्रमों का लक्ष्य होगा उद्योगों एवं उनका उपयोग करने वाली वर्तमान तथा भावी आवश्यकताओं की पूर्ति। इन सभी उद्देश्यों की पूर्ति के लिए प्रशिक्षित अध्यापकों, विशेष संस्थाओं की आवश्यकता तथा तकनीकी संस्थाओं के आधुनिकीकरण की व्यवस्था की जाएगी।

भाग सात में शिक्षा व्यवस्था को अधिक कारगार बनाने की ओर संकेत किया गया है, जिसमें महत्वपूर्ण माना गया है कि शिक्षा मात्र एक प्रक्रिया नहीं है, बल्कि उसका उद्देश्य बौद्धिक अनुशासन एवं गंभीर उद्देश्यों की आपूर्ति के लिए भी है। अत: इसको कारगर बनाने के लिए अध्यापकों को अधिक जबावदेह बनाना होगा, साथ ही साथ उन्हें अधिक सुविधाएँ देनी होंगी। शिक्षा सेवा तथा शिक्षा तंत्र को अधिक सुविधा (संसाधन) संपन्न करना होगा। इसी के साथ राष्ट्रीय तथा राज्य स्तर पर शिक्षा संस्थाओं के कार्य मूल्यांकन पद्धति का निर्माण किया जाए।

भाग आठ, शिक्षा की विषय-वस्तु पर बल देता है, जिसका केंद्र बिंदु सांस्कृतिक और मूल्य शिक्षा हो। भारतीय संस्कृति तथा मूल्य शिक्षा जिससे भेदभाव, अंधविश्वास, हिंसा, भाग्यवाद जैसी कुप्रवृत्तियों का अंत कर सके। इन दोनों का लक्ष्य राष्ट्रीय चेतना का निर्माण होना चाहिए। पिछली शिक्षा नीति 1968 में भारतीय भाषाओं के विकास की ओर विस्तृत संकेत किया गया था, जिस पर अधिक ध्यान नहीं दिया गया और अंग्रेजी का वर्चस्व पहले से और अधिक बढ़ता चला गया। अत: इसे अब अधिक सक्रियता से लागू किया जाएगा। पुस्तकीय अध्ययन तथा पुस्तकालयों के निर्माण एवं विकास पर अधिक बल दिया जाएगा तथा उनकी अवस्थाओं को सुधारा जाएगा। इसके साथ ही संचार माध्यमों द्वारा शिक्षा के प्रसार में आनी वाली रुकावटों को दूर किया जाएगा। इसी खंड में पिछली शिक्षा नीति की तरह इस नीति में भी गणित, विज्ञान, खेल एवं शारीरिक शिक्षा पर विशेष महत्व देने का सुझाव दोहराया गया।

भाग नौ, शिक्षक की भर्ती प्रणाली, उसकी सामाजिक सांस्कृतिक अवस्था, दायित्वबोध, योग्यता, जवाबदेही तथा अध्यापकीय शिक्षा पर विशेष बल देता है, जिसमें प्राथमिक विद्यालयों के अध्यापकों की नियुक्ति के लिए जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान स्थापित किए जाने की घोषणा करता है।

भाग दस, शिक्षा के प्रबंधन के लिए राष्ट्रीय शिक्षा सलाहकार समिति की तरह प्रत्येक राज्य को शिक्षा सलाहकार बोर्ड स्थापित करने का सुझाव देता है, जो शैक्षिक विकास का अवलोकन, व्यवस्था, कार्यान्वयन एवं देख-रेख में निर्णायक की भूमिका में कार्य करे। जिला एवं स्थानिय स्तर पर शिक्षा बोर्डों की स्थापना करके शैक्षिक प्रगति तथा विद्यालयी शिक्षा आदि के निरीक्षण कार्य को संपन्न किया जाएगा।

भाग ग्यारह, पूरी शिक्षा प्रक्रिया का संसाधनिक विश्लेषण करता है तथा समीक्षा करता है। यहाँ संकेत मिलता है कि शिक्षा नीतियों के उद्देश्य को पूरा करने के लिए आवश्यक पूँजी उपलब्ध कराना आवश्यक है। पिछली शिक्षा नीति में जरूरी 6 प्रतिशत उपलब्ध कराना सुनिश्चित किया गया, लेकिन अपर्याप्त मात्रा में पूँजी लगाने का परिणाम वास्तव में बहुत गंभीर है। निश्चित रूप से योजनाएँ बनाना और उनके लिए पूँजी उपलब्ध कराना दो भिन्न स्थितियाँ हैं। शिक्षा नीति 1986 संकेत करती है कि शिक्षा पर होने वाला निवेश धीरे-धीरे 6 प्रतिशत तक ले जाया जाए- यह 1968 में तय हुआ, लेकिन ऐसा नहीं होने के दूरगामी परिणाम प्रकट हो रहे हैं। दूसरी शिक्षा नीति में कहा गया कि इसके कार्यान्वयन में पूँजी निवेश जिस हद तक जरूरी होगा, वह सातवीं पंचवर्षीय योजना में ही बढ़ा दिया जाएगा और आठवीं पंचवर्षीय योजना से वह राष्ट्रीय आय का 6 प्रतिशत से अधिक ही रखा जाए। इसमें एक नई बात यह जोड़ी गई कि शिक्षा नीति के सभी पहलुओं के कार्यान्वयन की समीक्षा प्रत्येक पाँच वर्ष में होती रहेगी और आवश्यकता हुई तो मध्यावधि मूल्यांकन भी किया जाएगा।

भाग बारह, शिक्षा के भविष्य को लेकर आश्वस्त होता है कि आने वाले कुछ वर्षों में लगभग सौ करोड़

की आबादी को विश्व में शिखर पर सर्वोत्तम शिक्षा के साथ स्थापित करने का प्रयास सफल होगा, हालाँकि यह इतना पेचीदा है कि इसकी स्पष्ट रूपरेखा बना सकना संभव नहीं है।[4]

इस नीति के प्रमुख अवयवों को देखें तो इसका उद्देश्य केवल पढ़ने-पढ़ाने से अधिक सीखने और उसका इस्तेमाल करने पर अधिक बल था- इसके लिए शिक्षा को व्यावसायिक दृष्टि से तैयार करना, जिसमें विज्ञान से लेकर वाणिज्य और कृषिपरक शिक्षा पाठ्यक्रम पर अधिक बल देना था, हालाँकि यह बात 1968 की नीति में भी कही गई थी। केवल नौकरी प्राप्त करने वाली शिक्षा अर्थात डिग्री से भिन्न करना था, साथ-ही-साथ स्वैच्छिक शैक्षिक प्रयासों को भी प्रोत्साहित करना था। इस नीति से दो नई अवधारणाएँ लागू की गईं- मुक्त विश्वविद्यालय और नवोदय विद्यालय। मुक्त विश्वविद्यालय परंपरागत विद्यालयी शिक्षा से वंचितों के लिए शुरू किया, जो लगभग एक दशक बाद अपनी सफलता की ओर बढ़ने लगा, जिसकी सार्थकता देख कर आगे कई राज्यों एवं विश्वविद्यालयों ने मुक्त विश्वविद्यालय खोले और पाठ्यक्रम चलाए। निश्चय ही इसका लाभ नौकरी करने वालों, घरेलू महिलाओं से लेकर शिक्षा में रुचि रखने वाले, आयु सीमा के प्रतिबंधों के चलते प्रवेश नहीं ले सकने वाले लोगों को मिल रहा था। नवोदय विद्यालय देश के प्रत्येक जिले में खोलने की योजना बनी, जिसमें त्रिभाषा सूत्र के साथ छठवीं कक्षा में प्रवेश परीक्षा के द्वारा दाखिला मिलेगा, जो पूरी तरह से आवासीय और नि:शुल्क होगा।

संशोधित राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 (वर्ष 1992)

वर्ष 1986 की नीति में पंचवर्षीय मूल्यांकन की अवधारणा प्रस्तुत की गई थी, जिसके तहत तत्कालीन सरकार द्वारा 1990 में ही इसकी समीक्षा के लिए राममूर्ति समीक्षा समिति गठित की गई। हालाँकि इसके विश्लेषणों, सुझाव आदि पर विचार करने से पूर्व ही एक और समिति-जनार्दन रेड्डी समिति बनाई गई। इन दोनों समितियों के विश्लेषणों एवं सुझावों के आधार पर भारत की इस दूसरी शिक्षा नीति में कुछ संशोधन हुए, जिसका नामकरण हुआ - संशोधित राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 (वर्ष 1992)। इस संशोधन में मूल परिवर्तन कुछ इस प्रकार हुआ[5] जो निम्नवत है-

अगर ध्यान से देखा जाए तो संशोधन में बहुत खास परिवर्तन नहीं किए गए। जैसे भाग एक, दो, सात, नौ, ग्यारह और भाग बारह में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। भाग तीन में केवल इतना किया गया कि +2 को पूर्णत: स्कूली शिक्षा से जोड़ दिया गया, जो पहले उच्च शिक्षा से आंशिक रूप से जुड़ा था। भाग चार में समानता की शिक्षा के लिए समग्र (महिलाओं, अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और शिक्षा की दृष्टि से पिछड़े हुए अन्य वर्गों, अल्पसंख्यकों, विकलांगों, प्रौढ़) शिक्षा को और अधित महत्व देने की बात कही गई, साथ-ही-साथ ही राष्ट्रीय शिक्षा मिशन योजना को राष्ट्रीय एकता, प्राथमिक स्वास्थ्य, पर्यावरण संरक्षण, सीमित परिवार जैसे व्यापक उद्देश्य से जोड़ा जाएगा। भाग पाँच में वर्ष 2000 तक अनिवार्य एवं नि:शुल्क शिक्षा की लक्ष्य प्राप्ति के लिए राष्ट्रीय मिशन चलाया जाएगा तथा भविष्य में प्राथमिक विद्यालयों में एक महिला शिक्षक की नियुक्ति की अनिवार्यता मानी गई। ऑपरेशन ब्लैक बोर्ड के तहत अब दो अनिवार्य कमरों के स्थान पर तीन कमरों और तीन शिक्षकों की व्यवस्था की जाएगी, जो कि पूर्व में दो कमरे तथा दो शिक्षक तक थी। माध्यमिक स्तर पर बालिकाओं एवं निम्न अनुसूचित जाति-जनजातीय बच्चों के प्रवेश पर बल देने की बात कही गई तथा परीक्षा एवं मूल्यांकन में सुधार हेतु राष्ट्रीय मूल्यांकन संगठन बनाने की योजना बनी। भाग छह में मात्र इतना बदलाव किया गया कि अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद को और अधिक मजबूत किया जाएगा। भाग आठ में प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा में जनसंख्या शिक्षा पर विशेष बल देने की बात कही गई। भाग दस में पुन: दोहराया गया कि शिक्षा पर राष्ट्रीय आय का छह प्रतिशत खर्च किया जाएगा।

इन परिवर्तनों पर हम गौर करें तो पाएँगे कि ये परिवर्तन कुछ खास नहीं प्रतीत होते। ये व्यवस्थाएँ पहले भी थीं और बात केवल इतनी-सी रही कि इनका अनुपालन ठीक से नहीं हो रहा था। निश्चित रूप से कोई नीति बनती है तो उसके कुछ लाभ होते हैं और

उसके नुकसान भी। वर्ष 1968 की शिक्षा नीति के लाभ- हानि को छोड़ देना चाहिए, क्योंकि स्वाधीनता के पश्चात जहाँ थोड़ा-बहुत था या मान के चलें कि कुछ नहीं था, की तुलना में शिक्षा नीति 1968 से शिक्षा में कई गुना की बढ़ोतरी हुई थी, इसमें कोई संदेह नहीं। वह स्वाधीन भारतीय शिक्षा नीति का आरंभिक स्वरूप था, जिसे सुदृढ़ता प्रदान करने के लिए विशेष कार्यशैली और नीतियों के अनुपालन की आवश्यकता थी। सबसे बड़ी बात ईमानदार क्रियान्वयन की आवश्यकता थी। भारतीय शैक्षिक अवस्था में बदलाव लाने का कार्य 1968 की नीति कर चुकी थी। 1986 की नीति द्वारा इसे मजबूती प्रदान करना था। इस लिहाज से राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 बहुत कारगर नहीं हो सकी थी। लिहाजा परिवर्तन एवं संशोधन तो थोड़ा बहुत किया ही गया, लेकिन उसका मुख्य उद्देश्य नीतियों का अनुपालन करवाना अधिक था। संशोधित नीति 1992 आने के बाद कुछ तेजी जरूर आई, यह माना जा सकता है। वहाँ से पर्याप्त सुधार हुए जैसे - 11 नए मुक्त विश्वविद्यालय खोले गए, वर्ष 2007 तक 556 जिला एवं प्रशिक्षण संस्थान एवं 565 नवोदय विद्यालयों की स्थापना हुई, शैक्षिक नियामक संस्थाओं को अधिक शक्तिशाली बनाकर (एनसीटीई, एआईईसीटीई आदि) जिम्मेदारी सौंपी गई, वर्ष 2007 तक ही पूरे देश में साढ़े सात लाख के लगभग आँगनबाड़ी और बालबाड़ी केंद्र स्थापित किए जा चुके थे, तकनीकी एवं अभियांत्रिकीय शिक्षा में एक तीव्रतम विस्तार हुआ, वर्ष 2007 तक ही 104 शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों को शिक्षक शिक्षा महाविद्यालयों एवं 39 को शिक्षा उच्च अध्ययन केंद्रों मे समुन्नत किया जा चुका है।[6] इस संशोधित नीति का ही परिणाम है कि लगभग 80 प्रतिशत प्राथमिक और लगभग 40 प्रतिशत उच्च प्राथमिक स्कूलों की दशा में सुधार दिखाई देता है। प्रौढ़ शिक्षा, महिला शिक्षा, अनुसूचित जाति एवं जनजाति के लोगों में शिक्षा जागरूकता बढ़ने लगती है। साक्षरता का दर हमारे देश में वर्ष 2001 में 65.38 प्रतिशत हो जाता है और वर्ष 2008 के आसपास यह 72 प्रतिशत तक पहुँच जाता है। यह उपलब्धि साक्षरता की दृष्टि से सफल अवश्य मानी जा सकती है, किंतु गुणवत्ता एवं राष्ट्रीय बोध जैसे अवयवों के अनुसार कितनी सफल हुई यह आज भी विचारणीय है। यह भी हुआ कि सरकारें शिक्षा के बजट में वृद्धि करने लगती हैं, परंतु यह सीमा 6 प्रतिशत तक कभी नहीं पहुँची। ऐसे अनेकों कार्य हुए, जिन्हें हम सुधार के रूप में देख कर आश्वस्त हो सकते हैं, लेकिन इसके अन्य दूरगामी परिणाम भी दिखाई दिए, जैसे - स्ववित्तपोषित संस्थाओं को प्रोत्साहित करने की योजना के नाम पर प्राथमिक से लेकर महाविद्यालय स्तर तक (वर्ष 2000 के आसपास तक) और विश्वविद्यालय स्तर पर (वर्ष 2010 के आसपास तक) एक प्रकार से शिक्षा का निजीकरण (व्यावसायिकरण) बढ़ता गया, प्रत्येक स्तर पर अनेक संस्थाएँ खुलने लगीं, जिन पर सरकारों का नियंत्रण नहीं था। इन सबका नतीजा यह निकला कि शिक्षा बहुत तेजी से महँगी होती चली गई। एक संकेत यह भी किया जा सकता है कि प्राथमिक स्कूलों (कक्षा एक से आठवीं तक) के सुधार के लिए ऑपरेशन ब्लैकबोर्ड के अंतर्गत बने भवनों एवं प्रत्येक उच्च प्राथमिक स्कूलों को शिक्षण-अधिगम सामग्री क्रय के लिए दिए गए 40000 रुपयों में, पर्याप्त घोटाले किए गए, हेरा-फेरी हुई एवं भ्रष्टाचार हुआ।[7] हालाँकि सरकारों ने अनेक छात्रवृत्तियों की योजनाएँ चलाईं, लेकिन उससे राष्ट्रीय बोध प्रधान गुणवत्ता पूर्ण शिक्षा व्यवस्था नहीं पनप सकी। लोग शिक्षित हुए, लेकिन ये सब धनोपार्जन एवं भौतिक संसाधनों की प्राप्ति के लिए भागने वाली प्रवृत्ति ही प्रोत्साहित करती रही। दुर्भाग्य से दूसरी शिक्षा नीति की व्यवस्थाओं में अधिक धन प्राप्ति वाले पाठ्यक्रमों की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित हुआ - मेडिकल, इंजीनियरिंग आदि। समाज में आपाधापी पनपी तथा इसके लिए अतिरिक्त धन व्यय किया जाने लगा। इसका परिणाम यह हुआ कि उसमें खर्च हुए धन को अनेक प्रकार से प्राप्त करने की विकृति भी विकसित हुई। शिक्षा का जो उद्देश्य वर्ष 1968 में तय किया गया था - वह कहीं छूट चुका था। इसे चाहे तो 21 वीं सदी की दुनिया का प्रवाह कह लें या माँग, इसमें लोकहित अथवा देशहित से अधिक स्वार्थहित का समावेश हो चुका है, जबकि दुनिया का प्रत्येक देश अपनी शिक्षा और उसकी

व्यावसायिकता को देशहित के अनुसार अपनी भाषा में बनाता आया है, जबकि हमारे देश में नीतियाँ बनती हैं, लेकिन उसके राजनीतिक हितों के चलते उसका मूल उद्देश्य कभी नहीं पूरा हो सका।

1968 और 1986 की शिक्षा नीतियों में भारतीय भाषाओं एवं हिंदी के विकास की बात कही गई और प्रत्येक भारतीय के लिए अपनी मातृभाषा के अलावा दूसरी देशभाषा के सीखने – समझने की आवश्यकता को संकेतित किया गया था ताकि क्षेत्रीय भाषाओं को महत्व मिल सके और राष्ट्रीय एकता का निर्माण हो सके, लेकिन ऐसा नहीं हुआ और अंग्रेजी मातृभाषाओं पर हावी होती चली गई। हम जानते हैं कि मातृभाषाएँ सांस्कृतिक संरचना का सार होती हैं, उनका पीछे छूटना अपनी संस्कृति एवं नैतिकबोध से दूर होना ही होता है। आज अनेक परिवार हैं, जो अपनी मातृभाषाओं से अधिक अंग्रेजी को महत्व देते हैं। इसके पीछे केवल धन और सिर्फ उसका लालच ही है, भले ही लाख बहाना किया जाया कि यह वर्तमान दुनियावी सभ्यता की माँग है या आधुनिक दुनिया में इसके बिना काम नहीं चल सकता।

इस लिहाज से एक ऐसी शिक्षा व्यवस्था और नीति की आवश्यकता बन जाती है, जो प्रत्येक शिक्षार्थी में भारत बोध के साथ उसके चरित्र का निर्माण कर सके तथा उसकी आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति भी कर सके। एक संकेत और कर सकते हैं कि पिछली शिक्षा नीतियाँ जब बनी थीं – वह समय जो भी रहा हो, उनमें परंपरागत भारतीय शिक्षा के उद्देश्यों को प्राथमिक रूप से रखा गया था, लेकिन उन उद्देश्यों की पूर्ति कभी ठीक से नहीं हुई या कहें कि भारतीय लोक और समाज ने उस ओर ध्यान नहीं दिया। उन नीतियों के जो द्वितीयक उद्देश्य थे, वे हावी होते गए और पूरे भारत में शिक्षा का उद्देश्य उतना ही मान लिया गया। इन सभी अवस्थाओं को देखते हुए वर्ष 2020 में भारत की तीसरी शिक्षा नीति प्रस्तावित होती है – नई शिक्षा नीति 2020। एक बात और कही जा सकती है कि पुरानी नीति का आमूल-चूल परिवर्तन तो नहीं किया जा सकता, लेकिन पद्धति एवं प्राथमिकताओं को तय करके, उसकी पृष्ठभूमि में भारतीय शिक्षा के औचित्य, उद्देश्य एवं आवश्यकताओं को पुनर्निधारित अवश्य किया जा सकता है। ❑

संदर्भ सूची :

1. समकालीन भारत और शिक्षा, पृष्ठ- 188, विशिष्ठ शिक्षा विभाग, शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा, उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, उत्तराखंड, प्रकाशन वर्ष- 2016
2. राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 (कार्य योजना का दस्तावेज), पृष्ठ- 1-2, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार (शिक्षा विभाग), नई दिल्ली, वर्ष- मई 1986
3. तदेव, पृष्ठ- 1 से 24 तक में विस्तृत दस्तावेज
4. तदेव, पृष्ठ- 24
5. राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 (1992 के संशोधनों सहित), पृष्ठ- 1 से 17 तक , मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार (शिक्षा विभाग), वर्ष 1992
6. समकालीन भारत और शिक्षा, पृष्ठ- 210- 212
7. तदेव, पृष्ठ- 215

भारतीय संस्कृति के प्रसार में हिंदी की भूमिका

प्रो. सुशील कुमार शर्मा

वरिष्ठ आचार्य एवं अध्यक्ष
हिंदी विभाग
मिजोरम केंद्रीय विश्वविद्यालय
आइजॉल-796004 (मिजोरम)
मो. 94361-05977

11 सितंबर, 1893 – यह वह तिथि है, जिस दिन स्वामी विवेकानंद ने विश्व धर्म सम्मेलन में अमेरिका के शिकागो शहर में विख्यात व्याख्यान दिया था। विख्यात होने का कारण था। धर्म संसद में व्याख्यान देने वाले प्रत्येक प्रतिनिधि का संबोधन था- लेडीज एंड जेंटलमैन। पर स्वामी जी का संबोधन इससे हटकर था। उन्होंने कहा – अमेरिका के मेरे भाइयो और बहिनो (Brothers & Sisters)। लोगों को यह संबोधन सर्वथा नया था। इसलिए उनका चौंकना स्वाभाविक था। स्वामी विवेकानंद ने जो भाषण दिया, वह अब भी भारत की संपूर्ण सांस्कृतिक गरिमा का दर्पण है। उन दिनों हिंदी स्वयं को स्थापित करने के लिए संघर्ष कर रही थी। आज की भाँति यदि हिंदी उस समय समृद्ध होती तो अटल बिहारी वाजपेयी की भाँति स्वामी जी ने शिकागो में हिंदी में ही व्याख्यान दिया होता। स्वामी जी जानते थे कि भारतीय चिंतन और भारतीय संस्कृति के प्रसार के लिए अंग्रेजी ही उपयुक्त भाषा है। इसी भाषा में उन विदेशियों को समझाया जा सकता है कि भारत साधु-संतों का देश नहीं है, यह देश उच्च आध्यात्मिक चिंतन से समृद्ध है।

भाषा को प्रभावित राजसत्ता भी करती है। मुगलों के शासनकाल में देश में अरबी-फारसी व उर्दू का वर्चस्व रहा। पुर्तगाली, डच और फ्रांसीसी भी भारत में रहे, पर इनका प्रभाव हिंदी पर नगण्य रहा। इनके कुछ सैकड़ा शब्दों को अवश्य ही हिंदी ने अपनी प्रकृति के अनुरूप स्वीकार कर लिया। यह हिंदी की अपनी भाषायी संस्कृति है, जो दूसरी भाषाओं के शब्दों को आत्मसात करती है। अंग्रेजी शासन में हिंदी के सम्मुख दोहरी चुनौती थी – अरबी-फारसी मिश्रित उर्दू से और अंग्रेजी से। शिक्षा में हिंदी का भाषायी रूप क्या हो ? इस पर विद्वानों में मतभेद थे। एक दल उर्दू मिश्रित हिंदी को शिक्षा का माध्यम बनाने का पक्षधर था तो दूसरा संस्कृतनिष्ठ हिंदी को। प्रथम पक्ष के मुखर समर्थक थे – राजा शिवप्रसाद सितारे 'हिंद' और दूसरे पक्ष को राजा लक्ष्मण सिंह अपना समर्थन दे रहे थे।

'निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल' का उद्घोष करने वाले

भारतेंदु हरिश्चंद्र के समय तक हिंदी का रूप स्थिर नहीं था, परंतु उन्होंने हिंदी की स्थापना के लिए अथक प्रयास किए। सन 1877 में इन्होंने 'हिंदी की उन्नति' पर 98 दोहों में व्याख्यान दिया था। हिंदी के लिए उनकी तड़प इन दोहों में आभासित होती है –

लाल पुत्र करि चूमि मुख विविध प्रकार खेलाइ।
माता सब कछु पुत्र को सहजहिं सकत देखाइ॥
सो माता हिंदी बिना कछु नहिं जानत और।
तासौं निज भाषा अहै सबही कौ सिरमौर॥
प्रचलित करहुँ जहान में, निज भाषा करि जत्न।
राज काज दरबार में फैलावहु यह रत्न॥[1]

हिंदी गद्य के विकास में योगदान उन ईसाई धर्म प्रचारकों का भी रहा, जिन्होंने छोटे-छोटे पेम्पलेट्स हिंदी में छपवाए और वितरित करवाए। 'उन्होंने अपने भाव का प्रचार करने के लिए अपने धार्मिक ग्रंथों के अनुवाद, व्याख्यान, लेख तथा पाठ्यपुस्तकें हिंदी में प्रस्तुत कीं, जिनसे अप्रत्यक्ष रूप से हिंदी गद्य की सेवा हुई।'[2]

भारतीय संस्कृति के प्रसार के लिए विवेकानंद जैसे महान चिंतक और हिंदी प्रेमी को भी अंग्रेजी का प्राश्रय ग्रहण करना पड़ा। शिकागो व्याख्यान के पूर्व नि:संदेह पश्चिमी देशों की दृष्टि में भारत की उन्नत संस्कृति 'फोक कल्चर' से अधिक नहीं थी, परंतु तब इन्होंने गहराई से भारतीय संस्कृति को देखा-परखा, तब ये इस निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए विवश हुए कि भारतीय संस्कृति विश्व में अद्वितीय है। डॉ. रामधारी सिंह 'दिनकर' की कृति – 'संस्कृति के चार अध्याय' की भूमिका में पं. जवाहर लाल नेहरू लिखते हैं कि – ''संस्कृति है क्या? शब्दकोश उलटने पर इसकी अनेक परिभाषाएँ मिलती हैं। एक बड़े लेखक का कहना है कि 'संसार भर में जो भी सर्वोत्तम बातें जानी या कही गई हैं, उनसे अपने आपको परिचित करना संस्कृति है। एक दूसरी परिभाषा में कहा गया है कि संस्कृति शारीरिक-मानसिक शक्तियों का प्रशिक्षण, दृढ़िकरण का विकास अथवा उससे उत्पन्न अवस्था है। यह मन, आचार अथवा रुचियों की परिष्करण अथवा शुद्धि है। यह सभ्यता का भीतर से प्रकाशित हो उठना है। इस अर्थ में संस्कृति कुछ ऐसी चीज का नाम हो जाता है, जो बुनियादी और अंतर्राष्ट्रीय है। फिर, संस्कृति के कुछ राष्ट्रीय पहलू भी होते हैं और इसमें कोई संदेह नहीं कि अनेक राष्ट्रों ने अपना कुछ विशिष्ट व्यक्तित्व तथा अपने भीतर कुछ खास ढंग के मौलिक गुण विकसित कर लिए हैं।''[3]

'अपने भीतर कुछ खास ढंग के मौलिक गुण' – यह संस्कृति है। व्यक्ति की सोच, विचार, धर्म, दर्शन, साहित्य, कला आदि संस्कृति के विविध तत्व हैं। भारतीय संस्कृति को स्पष्ट करते हुए डॉ. रामधारी सिंह 'दिनकर' अपना मत व्यक्त करते हुए लिखते हैं कि – ''भारतीय संस्कृति का आविर्भाव आर्य और आर्येतर संस्कृतियों के मिलन से हुआ तथा जिसे हम वैदिक और प्राग्वैदिक संस्कृतियों के मिलन से उत्पन्न मानते हैं, यह अनुमान कई प्रकार की युक्तियों पर आधारित है। भारतीय संस्कृति के विवेचन में हमारे सामने कुछ ऐसी शंकाएँ खड़ी होती हैं, जिनका समाधान न तो इस स्थापना से हो सकता है कि भारतीय संस्कृति सोलह आने आर्यों का निर्यात है, न इस स्थापना से कि वैदिक संस्कृति केवल प्राग्वैदिक संस्कृति का विकास मात्र है।'' दिनकर जी, डॉ. मंगलदेव शास्त्री को उद्धृत करते हुए लिखते हैं कि ''भारतीय संस्कृति में जो कुछ परस्पर विरोधी युग्म हैं, उनका भी कारण यही है कि यह संस्कृति आरंभ से ही सामासिक रही है। उदाहरणार्थ, भारतीय समाज में एक द्वंद्व तो कर्म और संन्यास को लेकर है, दूसरा प्रवृत्ति और निवृत्ति के

बीच तथा तीसरा स्वर्ग और नरक की कल्पनाओं को लेकर।''[4]

यह भारत की संस्कृति का मूल स्वरूप था। इसका विकास आगे भी होता रहा। भारत में तमाम विदेशी शक्तियाँ आईं - यूनानी, तुर्क, शक, हूण, डच, मुगल, अंग्रेज। भारत पर आक्रमण किए, लूटा और यहाँ की संस्कृति को नष्ट करना चाहा, पर असफल रहे। भारतीय संस्कृति ने अपनी लचीली प्रवृत्ति अथवा समाहारी प्रकृति के कारण उन सब विदेशी संस्कृतियों का समाहार तो किया, परंतु अपना मूल स्वरूप नहीं खोया। यही कारण है कि विश्व के तमाम प्राचीन देशों का अस्तित्व तो मिट गया, पर भारत का अस्तित्व अब तक यथावत है। डॉ. इकबाल इसी विशेषता को व्यक्त करते हैं -

यूनान-ओ-मिस्त्र-ओ-रूमों, सब मिट गये जहाँ से।
अब तक मगर है बाकी नामों-निशां हमारा॥
कुछ बात है कि हस्ती, मिटती नहीं हमारी।
सदियों रहा दुश्मन, दौर-ए-जमां हमारा॥[5]

भारतीय संस्कृति का मूलाधार है - भारतीय दर्शन। भारतीय दर्शन वेदों पर आधारित है। भारतीय दर्शन में बहुदेववाद को यदि स्वीकृति प्राप्त है, तो 'एकोऽहं द्वितीयोनास्ति' कह कर एकेश्वरवाद को भी मान्यता प्रदान की गई है और दोनों मान्यताओं में परस्पर कोई द्वेष अथवा विरोध परिलक्षित नहीं होता । इस संबंध में डॉ. देवराज अपनी कृति - 'दर्शन: स्वरूप, समस्याएँ एवं जीवन दृष्टि' में लिखते हैं - 'भारतीय वेदांत के प्राय: सभी निकाय (द्वैतवादी मध्व संप्रदाय को छोड़कर) ब्रह्म और जीवात्मा में गहरी निकटता का संबंध मानते हैं। ज्ञातव्य है कि भारतीय दर्शनों में प्राणीमात्र की आत्मा को अजन्मा, अविनाशी प्रकल्पित किया गया है। रामानुज उसे ईश्वर का अंश कहते हैं और अद्वैत वेदांत तो दोनों में अभेद ही मानता है। फलत: यहाँ की परंपरा मनुष्य को भ्रष्ट पदार्थों से अलग करते हुए अतिरिक्त महत्व देती है। हमारी संस्कृति में उत्तर मध्ययुग के कतिपय भक्ति संप्रदायों को छोड़कर मनुष्य को आत्मनिर्भर होने की शिक्षा दी गई है। श्रीमद्भागवतगीता कहती है - अपना उद्धार स्वयं अपने द्वारा करें, आत्मा ही आत्मा का बंधु है, वही आत्मा का अपना शत्रु भी है। इसी प्रकार भवगवान बुद्ध ने 'अपना दीपक या प्रकाश स्वयंजनों' की शिक्षा दी। इन अनेक तत्वों की उपस्थिति के कारण भारतीय परंपरा की भूमि में मानवतावादी दर्शन का विकास संभव ही नहीं, स्वाभाविक भी है।'[6]

ऐसी अद्वितीय संस्कृति के देश का और विदेशों के कोने-कोने में दो प्रकार से हिंदी में प्रसार हुआ है। प्रथम हिंदी के मध्यकालीन हिंदी कवियों के द्वारा और और दूसरे, विदेशों तक हिंदी की पहुँच के कारण हिंदी ने जिस प्रकार समस्त भारतीय भाषाओं के शब्दों को ग्रहण किया, विदेशी भाषा के शब्दों को समाहित किया, यह इस संस्कृति की विराटता का सूचक है।

यह जो भक्ति तत्व दक्षिण से उत्तर में आया, उसने समूचे देश में एक नई लहर को जन्म दिया। दो प्रकार के भक्त कवि थे - निर्गुण और सगुण। कबीर, दादू, रैदास, पीपा, जैसे कवि निर्गुण ईश्वर का भजन कर रहे थे। आगे चलकर सूर-तुलसी जैसे कवियों ने सगुण भक्ति का गायन किय। इनके द्वारा रचित भक्ति- साहित्य ने भारतीय संस्कृति का प्रसार कर समूचे देश को एकसूत्र में आबद्ध किया।

जिस भारतीय संस्कृति को स्वामी विवेकानंद ने अंग्रेजी भाषा में विश्व से परिचित कराया था, वे दिन इतिहास हो गए। अब हिंदी स्वयं भारतीय संस्कृति के प्रसारण का वाहक बनी हुई है। आज विश्व के लगभग 150 से अधिक देशों के 200 विश्वविद्यालयों में हिंदी का पठन-पाठन हो रहा है। अकेले यू.एस.ए. (अमेरिका) में 45 विश्वविद्यालय ऐसे हैं, जिनमें हिंदी का अध्ययन करने वालों की संख्या हजारों में है। अंग्रेजी की सम्मानित ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी में अब तक 1400 हिंदी शब्दों को शामिल किया जा चुका है।[7]

जिस तीव्रता से विश्व में हिंदी लोकप्रिय हो रही है, उसी तीव्रता से भारतीय संस्कृति का वैश्विक प्रसार हो रहा है। भारतीय संस्कृति को गहराई से जानने की लालसा से मैक्स मूलर ने वेदों सहित अन्य शास्त्रीय ग्रंथों का जर्मनी भाषा में अनुवाद किया, परंतु फादर कामिल बुल्के जैसे विदेशी विद्वान ने तो राम और 'रामचरितमानस' को गहराई से जानने-समझने की लालसा से हिंदी सीखी। हिंदी प्रेम के कारण इन्होंने

अपना शोध-कार्य (पीएच.डी.) इलाहाबाद विश्वविद्यालय से सन 1949 में हिंदी में पूर्ण किया। रामकथा पर केंद्रित यह भारत का प्रथम शोध-कार्य माना जाता है। अपने हिंदी प्रेम और भारतीय संस्कृति प्रेम के संबंध में वे लिखते हैं- ''मातृभाषा प्रेम का संस्कार लेकर मैं सन 1935 में राँची पहुँचा। यह देखकर मुझे बहुत दुख हुआ कि भारत में न केवल अंग्रेजों का राज है, बल्कि अंग्रेजी का भी बोलबाला है। मेरे देश की भाँति उत्तर भारत का मध्यवर्ग भी अपनी मातृभाषा की अपेक्षा एक विदेशी भाषा को अधिक महत्व देता है, इसकी प्रतिक्रिया स्वरूप मैंने हिंदी पंडित बनने का निश्चय किया।''[8]

डॉ. कामिल बुल्के का तो एक उदाहरण मात्र है। गार्सा-द तासी, जार्ज ग्रियर्सन, इलियट जैसी विदेशी विभूतियों ने हिंदी के महत्व को जाना और समझा। जहाँ प्रथम दो ने हिंदी साहित्य के इतिहास लेखन की पृष्ठभूमि प्रस्तुत की, वहीं इलियट ने बुंदेलखंड के लोकप्रिय आल्हखंड के बिखरे सूत्रों को संकलित कराया। जनरल कनिंघम ने भारतीय पुरातत्व एवं इतिहास के शोध, सर्वेक्षण, संकलन तथा संरक्षण के क्षेत्र में स्तुत्य एवं स्मरणीय कार्य किया। इतिहास और पुरातत्व, भारतीय संस्कृति के अभिन्न अंग हैं।

हिंदी ग्रंथों के अनुवाद किए ग्रंथों की आवश्यकता का प्रतिशत अब न्यून होता रहा है, क्योंकि विदेशी अब हिंदी के मूल ग्रंथों को पढ़ने में अधिक रुचि प्रदर्शित कर रहे हैं। इतना ही नहीं, भारतीय संस्कृति की ओर भी विदेशी आकृष्ट हो रहे हैं। आए दिन इस विषय के समाचार प्रकाशित होते रहते हैं कि विदेशी जोड़े ने भारत आकर भारतीय परंपरानुसार विवाह किया। इस्कॉन में चल रही भक्ति परंपरा तो प्रसिद्ध ही है और वे तमाम क्रिया-कलाप हिंदी में संचालित हो रहे हैं। संवैधानिक स्तर पर हिंदी राजभाषा है। राष्ट्रभाषा का दर्जा इसे प्राप्त नहीं है, परंतु यह भारत के करोड़ों और विश्व के लाखों लोगों की प्रिय भाषा है। वह दिन-प्रतिदिन वृद्धि को प्राप्त हो रही है। हिंदी के स्पंदन पर आरूढ़ होकर भारतीय संस्कृति का परचम विश्व में लहरा रहा है। ❑

संदर्भ सूची :

1. भारतेंदु समग्र : संपा. डॉ. हेमंत शर्मा, पृ. 228
2. हिंदी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास (खंड-2) : डॉ. गणपति चन्द्र गुप्त, पृ. 337
3. संस्कृति के चार अध्याय : रामधारी सिंह दिनकर, (भूमिका)
4. वही, पृ. 47
5. बंग-ए-दारा (उर्दू, 1924) : डॉ. अल्लामा इकबाल
6. दर्शन : स्वरूप, समस्याएँ एवं जीवन दृष्टि : डॉ. देवराज, पृ.14
7. https://hindi.oneindia.com7featunes
8. अरविंदास, BBC.com, 7 sep. 2009

व्यक्तित्व

लोक जीवन के कुशल चितेरे : अमित कुमार मल्ल

प्रो. यशवंत सिंह

प्रोफेसर, हिंदी विभाग
मणिपुर विश्वविद्यालय
काँचीपुर, इंफाल-795003 (मणिपुर)
मो. 9612169840
ई-मेल : dryashwantsingh66@gmail.com

हिंदी शब्दकोशों में 'लोक का आशय जनसामान्य से लिया गया है, जो सब लोगों से संबंध रखने वाला होता है।'[1] वह तर्कबुद्धि से परे, भेदादिभेद से अनजान, कृत्रिमता व बनावटीपन से दूर, सहज, आस्थाशील एवं सामूहिक जीवन जीने वाला होता है। उसका जीवन सार्वजनिक होता है, जिसमें वह अपने निजी जीवन के साथ समाज से जुड़कर परोपकार के कल्याणकारी कार्य करने में संलग्न रहता है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने 'रामचरितमानस' में साहित्यकार को इसी श्रेणी में रखते हुए लिखा है -

'कीरति भनिति भूति भलि सोई।
सुरसरि सम सब कहँ हित होई॥'[2]

लोक जीवन के कुशल चितेरे अमित कुमार मल्ल का जन्म एक जुलाई सन् 1963 ई. को उत्तर प्रदेश के देवरिया जनपद के ग्राम महेन में हुआ। उनके पिता स्वर्गीय बंशबहादुर मल्ल का व्यक्तित्व सामाजिक सरोकारों से युक्त जनसेवक का था। उन्होंने ग्रामीण क्षेत्र में लोगों के आपसी झगड़ों को सद्भावनापूर्ण महौल में निपटाने के लिए विशेष प्रयास किए, क्योंकि इनके कारण ही ग्रामवासियों का अधिकांश अर्जित धन, श्रम व ऊर्जा नष्ट हो जाती थी। इसको बचाने के लिए एवं आपसी झगड़ों को निपटाने के लिए उनके पिता जी ने विशेष महारत हासिल की थी, जिसमें ग्रामीण लोगों के बीच मौखिक परंपरा में प्रचलित किस्से-कहावतें सहायक होते थे।

बालक अमित के व्यक्तित्व पर उनके पिता जी के इस सामाजिक आचरण का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। उनके बहिर्मुखी व्यक्तित्व ने ग्रामीण परिवेश को आत्मसात किया, जो आगे चलकर 'काका के कहे किस्से'[3] के लेखन के रूप में अभिव्यक्त हुआ। गाँव के लोगों में मौखिक परंपरा में प्रचलित इन किस्सों में अपना-अपना धर्म है, गृहस्थ की भक्ति है, गाँव के लोगों की हाजिर-जवाबी है, अकेला चना का भाड़ नहीं फोड़ सकता है, दूर की सोच है, सुरती की तलब है, लोगों का अच्छे कामों में भी मीन-मेख निकालना है, पैसा पैसे को खींचता है, चार पढ़े-लिखे मूर्ख हैं,

कलयुगी पैरोकार हैं, जैसा सोचा वैसा फल पाना है, होशियारी है, सदाचारी है, पटवा-बीनवा की कहानी है, पढ़ा-लिखा दरबारी है, असली पतिव्रता है, सीखे की सीख है, मातृभाषा की पहचान है, भय-अभाव का असर है, देश की दशा है, जैसे को तैसा है, दुख की व्यापकता है, तीसी व बीसी की कहानी है, भगवान का किया अच्छा ही होता है, कमजोर की पहचान है, बैलगाड़ी का कुत्ता तथा साधु व उनके दो शिष्य हैं। इन किस्सों को ग्रामीण लोग अवसर-विशेष पर दृष्टांत के रूप में प्रयुक्त करते हैं तथा अपनी समस्याओं का निराकरण करते हैं। साथ ही, इसमें संगृहीत ढेरों लोक प्रचलित कहावतों - मैं रानी ते रानी / के भरी महल का पानी, का खाई का पी / का ले परदेश जाई, गुजरल गवाही / लौटल बराती, पिसान पोत के / भंडारी बनल, अबरका का मेहरारू / गाँव भर क भउजाई, जबरा मारै / अउर रोवे न दे, चोरवा से कहे चोरी करे / साहूआ से जागत रह, लग्गा से पानी पियावत, घरही के क राम / घरही क रामलीला, फेंचकुर फेंकल, जौने रोगिया क भावे / उहे बइदा फरमावे, चिरई क जान जा / लइका क खिलौना, जो बोले / मुंडी खोले, कूटे पूसे हीरा / भाड़ पसावे जीरा आदि में ग्रामीण लोगों के अनुभवजन्य ज्ञान समाहित हैं, जिनको गाँव के लोग अपनी आपसी बातचीत में प्रयुक्त करते हैं तथा इनसे कोई-न-कोई अवसर उपयोगी शिक्षा प्राप्त करते हैं। इन कहावतों को ग्रामीण लोगों का संचित ज्ञानकोश भी कहा जाता है, जिनसे उनका लोक जीवन संचालित होता है।

अब तक अमित कुमार मल्ल के पाँच कविता संग्रह- 'लिखा नहीं एक शब्द, फिर, बूँद-बूँद पानी, इश्क में नदी व बोल रहा हूँ' और दो कहानी संग्रह - 'थाली में शब्द व मटमैली जिंदगी' प्रकाशित हुए हैं। इनमें से 'बूँद-बूँद पानी' कविता संग्रह का पंजाबी भाषा में अनुवाद भी प्रकाशित हुआ है।

मिलनसार व्यक्तित्व के धनी अमित कुमार मल्ल के रचना संसार पर दो समीक्षात्मक पुस्तकें भी प्रकाशित हुई हैं, जिनमें हिंदी के मूर्धन्य समीक्षकों के उनके रचना-कर्म पर लिखे आलेख समाहित हुए हैं। उनके संपूर्ण रचना-कर्म का अवलोकन करने से ऐसा लगता है कि जैसे उनका गाँव व गाँव में बिताए बचपन के संस्कार ही उनके लेखन में अभिव्यक्त हुए हैं-

'मेरे गाँव में / पहाड़ नहीं है / झरने नहीं हैं / हर तरफ हरियाली नहीं है / लेकिन मिस करता हूँ / अपने गाँव को।'

उनके द्वारा रचित 'बोल रहा हूँ'[4] कविता संग्रह में संगृहीत - 'मेरा गाँव' नामक लंबी कविता में उन्होंने अपने गाँव के खेत-खलिहान, घर-द्वार को शिद्दत से याद किया है, जिस परिवेश में उनके बचपन का समय गुजरा था। वे खेतों में धान की रोपाई, उस अवसर पर गाए जाने वाले रोपनी गीतों, गेहूँ की बुवाई एवं उसकी पैदावार से भरने वाली डेहरी से होने वाली घर में खुशी का भी स्मरण करते हैं।

उनको याद आते हैं - गाँव की जीवन की जरूरतों को पूरा करने वाले बांगर, कछार, देवार, गड़ही, पोखरी, ताल और उसमें पैदा होने वाले मीठे-मीठे सिंघाड़े। वे अपने गाँव के पास बहने वाली राप्ती नदी को पार कराने

वाली डोंगी – नाव और उसके किनारे के धूप – स्नान का स्मरण करना भी नहीं भूलते। बचपन में खेले जाने वाले गुल्ली-डंडा, कबड्डी, चिक्का की मधुर यादें भी हैं, जिनको खेलते समय वे कभी जीत हासिल नहीं कर पाते थे।

इस कविता के माध्यम से उन्होंने मानो ग्रामीण जीवन की संपूर्ण जीवंत झाँकियों को समाहित कर दिया है, जिसमें अखाड़े, दंड-बैठक, लाल लंगोट, धोबिया पाट, कान तुड़ान के साथ कंचा-गोली, गुच्ची के खेल, फुलवारी, बारी, नवरंगी, बगीचा, गर्मी की दुपहरी, ताजिया, रामलीला, नागपंचमी, दशहरा, नीलकंठ दर्शन, होली-दहन, कबीरा गाने, होली के दिन की कीचड़, राख-मिट्टी, रंग-अबीर, फगुआ गाने, पान खाने, देवी माई, काली माई, बरम बाबा, गाँव के मेले, चवन्नी-अठन्नी, बाजार – पकौड़ी, काका-काकी, भैया-भौजाई, बहिनी, बाबा सभी कुछ शामिल हैं। उनको अपने गाँव की प्राइमरी पाठशाला भी याद आती है, जिसमें मौलवी साहब, पंडित जी, स्कूल का बस्ता, नरकट की कलम, पटिया, रोशनाई, निबवाली पेन, पाँचवीं बोर्ड की परीक्षा, एक्स्ट्रा क्लासेस आदि का उल्लेख करना वे नहीं भूलते। साथ ही, वर्तमान समय में बदलता गाँव एवं लोगों के आपसी संबंधों में गर्माहट की कमी को भी उन्होंने रेखांकित किया है – **'जब गाँव जाता हूँ / तो और भी / मिस करता हूँ / उस गाँव को / शहर जाते समय / छोड़ गया था जिसे / भरे मन से।'**

यह सच है कि अब गाँव के रास्ते पक्के होने के साथ लोगों की संवेदनाएँ भी तारकोल की तरह जल गई हैं, कच्चे रास्ते मन की तरह सिकुड़ गए हैं, खेतों का बँटवारा होने के साथ ही लोगों के दिलों का बँटवारा भी हो गया है, खलिहान, बारी, बगीचे, ताल, गड़ई कम हो गए हैं, लेकिन लोगों के आपसी मुकदमे, स्वार्थ, दिखावा, जलन, मोदक, शराब, पक्के मकान, गाड़ियाँ तथा येन-केन-प्रकारेण कामयाब होने की चाह बढ़ गई है। गाँव में चिप्स, कोक, मोबाइल, इंटरनेट बिकने लगे हैं; ठंडाई, सत्तू, शरबत, बहूरी – मुरमुरा विलुप्त हो गए हैं। अंततः लेखक को टीस है कि गाँव अब गाँव नहीं रहा, बल्कि वह शहर बनने की ओर अग्रसर है।

यह कितनी विडंबनापूर्ण स्थिति है कि गाँव से शहर आकर व्यक्ति की अपनी पहचान खो गई है। गाँव में तो उसके पिता का नाम ही उसकी पहचान के लिए काफी था, लेकिन शहर में रहकर अपनी पहचान का संकट झेल रहा व्यक्ति अपनी जड़ों में जाकर पहचान पाने को प्रयासरत है – **'मुझे पहचानना चाहते हो / तो देखो / जमीन में घुलते और / बीजते बीजों को / उगूंगा मैं / फोड़कर वही पथरीली धरती / जहाँ खिलते हैं, बंजर – काँटे झाड़ियाँ।'**[5] साथ ही शहर के घुटनभरे, नीरस माहौल से ऊबा व्यक्ति पुनः अपने ग्रामीण परिवेश की ओर लौट जाना चाहता है, जहाँ पर– **'जहाँ बंजर खेत हों / जुएं हो हलों के / पुठ्ठे हो बैलों के/ मन लौट चल उस जमीन पर / जहाँ परियों का मेला न हो।'**[6]

वह ऐसी जगह को तुरंत छोड़ देने की कामना करता है, जहाँ पर दीपावली में, रक्षाबंधन में, दशहरे में, होली में कोई साथ नहीं होता। उसे ईश्वर पर पूर्ण विश्वास है कि ऐसा बुरा वक्त अवश्य बदलेगा, जीवन में अच्छे दिनों की शुरुआत होगी – **'यह भरोसा / यह आशा / यह विश्वास / तुम्ही से है / तुम्ही पे है / हे भगवान / तुम मेरे जीवन का आधार हो।'**[7] कवि कई जन्नतों से युक्त एक ऐसे परिवेश में अपने घर को बसाने की इच्छा रखता है, जहाँ पर लोगों की संवेदनाएँ जागृत हों, लोग एक-दूसरे का सुख-दुख बाँटने को राजी हों – **'चलो फिर कहीं एक घर बनाएँ / अपनी कहानी एक दूजे को सुनाएँ खुशियाँ बिखेरेंगे साथ रहेंगे / निहारा करेंगे एक दूसरे को / आसमां हो अपना, चाँदनी अपनी होगी / चलो धरती पर जन्नत उतार लाएँगे।'**[8]

गाँव के लोक जीवन में रचा-बसा कवि उन ठंडी हवाओं का वंदन करता है, जो दिखती तो नहीं, पर सबको शीतलता प्रदान करती है। वह उन छोटी नदियों का भी वंदन करता है, जो समुद्र तक भले ही न पहुँच पाती हों, लेकिन खेतों को हरा-भरा कर देती हैं – **'वे नदियाँ वंदनीय हैं / जो समुद्र तक नहीं पहुँच पाती / रास्ते में ही सूख जाती हैं / लेकिन / जहाँ तक पहुँचती हैं/ खेतों को हरा कर देती हैं।'**[9] वहीं गाँव में

गन्ने के लहलहाते खेतों को देखकर कवि को अपनी दादी के चेहरे की खुशियाँ याद आतीं हैं –

'गन्ने के खेत में उम्मीदें हैं लहलहाई,
दादी के चेहरे की झुर्रियों में चमक आई।'[10]

इसके विपरीत विकासवाद के नाम पर वर्तमान मानव सभ्यता की अंधी दौड़ ने मानो कवि के स्वप्नों को चकनाचूर कर दिया है।

पिछले हजार सालों में प्रकृति का जितना विनाश नहीं हुआ था, उतना पिछले सौ सालों में हमने विकास के नाम पर कर डाला है। हमने अपनी जीवनदायिनी नदियों के जल का इतना अधिक दोहन किया है कि सदानीरा नदियाँ अब सूखने लगी हैं। उन पर हमने शहरों व उद्योगों का प्रदूषित अवशेष डालकर उनके अस्तित्व को ही खतरे में डाल दिया है, जिससे–

'नदियाँ / डरकर / ठिठकने लगीं /
दुबकने लगीं / सड़ने लगीं / मरने लगीं।'[11]

इससे सूखती नदियाँ रेत में परिवर्तित हो रही हैं, जिनमें जीवन जीने वाले जीव–जंतुओं का अस्तित्व विलुप्तप्राय हो रहा है –

'इस डर से / नदियों को रेत / के हवाले कर दिया / जिसने / केवल नदी को ही नहीं मारा / मार दिया / नदी में रहने वाले / सभी जीव–जंतुओं को ।'[12]

इस तथाकथित विकास के नाम पर जैव – विविधता तो नष्ट हो ही रही है। साथ ही पर्वत, पहाड़, बंजर, घाटी, देवार भी धीरे–धीरे नष्ट हो रहे हैं। कवि चिंतित है कि क्या नया समाज बनाने के लिए अपना सब कुछ मिटाना होगा –

'उसने महसूस किया / सब खराब है
अतः वर्तमान मिटाना ही होगा
नया समाज बनाने के लिए
नई दुनिया बनाने के लिए ।'[13]

कवि प्रश्नाकुल है कि नई दुनिया के नाम पर हम यह कैसी दुनिया बसा रहे हैं, जिसमें चारों ओर दीवारें ही दीवारें नजर आतीं हैं –

'कहने को तो / आसमान अपना है / धूप अपनी हैं / हवाएँ अपनी हैं / साँसें अपनी हैं / लेकिन ! /
मेरे चारों ओर / उठी दीवारें
आँखों भर भी / आसमान समाने नहीं देती ।'[14]

विकास के नाम पर सब कुछ हमसे छीना जा रहा है, परंतु संवेदनाशून्य हो जाने के कारण हमें इस छीने जाने के दर्द का अहसास ही नहीं होता –

'पहाड़ भी रोते हैं
जब उनसे पेड़ों को अलग किया जाता है
नदियाँ भी रोती हैं
जब उनके बहने पर रोक लगा दी जाती है
पिता भी रोता है
जब उसकी आँखों में
ठूंठ दरख्त उग आता है।'[15]

बावजूद इनके रोने से कोई नहीं रोता, कुछ भी नहीं बदलता, क्योंकि दुनिया मान चुकी है कि पहाड़ को, नदी को, पिता को रोने से दर्द नहीं होता, लेकिन ईश्वर की लाठी में आवाज नहीं होती है, जबकि उसकी चोट बहुत ही गहरी होती है। वह देर से ही सही, लेकिन न्याय अवश्य करता है, प्रकृति भी अपने ऊपर हो रहे इस अन्याय का प्रतिकार करती है –

'बादलों ने बरसकर / अपना वादा / निभा दिया / सड़कों पर पानी ने कब्जा कर लिया / नालियां नाले बन गए / नदियां बाघों को तोड़ने लगीं / पहाड़ टूटकर बिखरने लगे / जिंदगी बिरखती गई / इंसानियत बिलखती गई / प्रकृति अपना न्याय करती रही।'[16]

इस विषम परिस्थिति में भी कवि का मन सहज रूप से आस्थावान बना रहता है। उसे आशा ही नहीं, बल्कि पूर्ण विश्वास है कि सामान्यजन के बीच खुशियाँ बाँटने से लोक जीवन फिर से जीवंत हो उठेगा –

'खुशियाँ / बाटने रहिये
मिट्टी में / मानस में / माहौल में
हर बार / बीज ! / मरा नहीं करते ।'[17]

यह सर्वविदित है कि पिछले समय के कोरोना जनित लॉकडाउन में फिर से नदियाँ स्वच्छ होकर सदानीरा बन गई थीं, आसमान में तारे साफ चमकते दिखलाई पड़ने लगे थे, पशु–पक्षी पहले की तरह स्वच्छंद विचरण करने लगे थे –

'शहर के / सन्नाटे का / शोर सुनकर
जंगल के जानवरों को / लगा
जंगल की / सीमा / पहले जैसे / हो गयी ।'[18]

इस तरह अमित कुमार मल्ल का संपूर्ण रचना - कर्म लोक जीवन के विविध रूपों की जीवंत छटाएँ प्रस्तुत करता है। इसमें जहाँ उनके बचपन के गाँव की मधुर स्मृतियाँ हैं, तो बदलते-बिगड़ते परिवेश के प्रति टीस भी है, लेकिन अपने रचना-कर्म में अनेक उतार-चढ़ावों के बावजूद लेखक हमेशा लोक की तरह सहज आस्थाशील बना रहता है। ❑

संदर्भ-सूची :

1. लोकभारती बृहत् प्रामाणिक हिंदी कोश, मूल सम्पा. आचार्य रामचंद्र वर्मा, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, ग्यारहवाँ संस्करण - 2004 ई., पृष्ठ संख्या - 814
2. श्रीरामचरितमानस, टीकाकार - हनुमान प्रसार पोद्दार, गीता प्रेस, गोरखपुर, संस्करण - संवत् 2072, पृष्ठ संख्या - 18
3. काका के कहे किस्से, अमित कुमार मल्ल, शिल्पायन बुक्स प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण - 2018 ई.
4. बोल रहा हूँ (कविता संग्रह), अमित कुमार मल्ल, बोधि प्रकाशन, जयपुर, संस्करण - 2018 ई.
5. लिखा नहीं एक शब्द (कविता-संग्रह), अमित कुमार मल्ल, बोधि प्रकाशन, जयपुर, द्वितीय संस्करण - 2021 ई. , पृष्ठ संख्या - 19
6. लिखा नहीं एक शब्द, पृष्ठ संख्या - 35
7. लिखा नहीं एक शब्द, पृष्ठ संख्या - 49
8. लिखा नहीं एक शब्द, पृष्ठ संख्या - 124
9. फिर (कविता संग्रह), अमित कुमार मल्ल, शिल्पायन, दिल्ली, संस्करण - 2016 ई. , पृष्ठ संख्या - 71
10. फिर (कविता - संग्रह), पृष्ठ संख्या - 99
11. इश्क में नदी (कविता - संग्रह), अमित कुमार मल्ल, अंश प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण - 2021 ई., पृष्ठ संख्या - 103
12. इश्क में नदी, पृष्ठ संख्या - 30
13. इश्क में नदी, पृष्ठ संख्या - 56
14. इश्क में नदी, पृष्ठ संख्या - 63
15. इश्क में नदी, पृष्ठ संख्या - 68
16. इश्क में नदी, पृष्ठ संख्या - 70
17. इश्क में नदी, पृष्ठ संख्या - 101
18. इश्क में नदी, पृष्ठ संख्या - 112

सुभाष चंद्र बोस के विचारों में भारतीय राष्ट्रवाद का सांस्कृतिक स्वरूप : एक पुनरावलोकन

लकी शर्मा

शोधार्थी, इतिहास विभाग
जूनियर रिसर्च फेलो - यूजीसी
सप्त-सिंधु परिसर
हिमाचल प्रदेश केंद्रीय विश्वविद्यालय
धर्मशाला, हिमाचल प्रदेश 177101
मो. 91-8340284861
ई-मेल : luckysharma02@gmail.com

डॉ. कँवर चंद्रदीप सिंह

सह-आचार्य, इतिहास विभाग
सप्त-सिंधु परिसर
हिमाचल प्रदेश केंद्रीय विश्वविद्यालय
धर्मशाला, हिमाचल प्रदेश 177101
मो. 91-9531804179
ई-मेल : kanwar.chanderdeep@gmail.com

शोध-सार :

सुभाष चंद्र बोस के सांस्कृतिक विचारों के विकास के बारे में लिखना राजनीति करने के धार्मिक पक्षों तथा पद्धतियों पर बात करनी जैसी है, विशेष रूप से जब कोई स्वतंत्रता के लिए राष्ट्रीय आंदोलन में हिंदू विश्वदृष्टि को अंतर्निहित करने की बात करता है। सनातन संस्कृति ने महात्मा गांधी से लेकर वीर सावरकर तथा भगत सिंह से लेकर बोस तक, सभी अलग-अलग विचार व अवधारणाओं के प्रतिपादक राष्ट्रीय नेताओं को विभिन्न स्तरों पर प्रभावित किया है। बोस के विचारों में हिंदू संस्कृति की निहितता एक परंपरावादी हिंदू बंगाली घर में उनके पारंपरिक पालन-पोषण और गूढ़ धार्मिक और आध्यात्मिक अन्वेषणों के कारण थी। इसलिए यह देखा जा सकता है कि रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानंद और श्री अरबिंदो के साथ-साथ उपनिषद दर्शन और भगवद्गीता द्वारा प्रतिपादित मूल्यों और आदर्शों से बोस पूर्णरूपेण प्रभावित थे। प्रस्तुत शोध आलेख बोस के इन्हीं विचारों पर केंद्रित है।

संकेत शब्द : अंग्रेज, आंदोलन, धर्म, मुस्लिम, परंपरा, भारत, राष्ट्रवाद, संस्कृति, सुभाष चंद्र बोस, हिंदू।

परिचय :

सुभाष चंद्र बोस की पुत्री अनीता बी फाफ ने अपने पिता की 125वीं जयंती पर बोलते हुए कहा कि बोस की वैचारिकी आधुनिक एवं प्रबुद्ध थी और इतिहास व दर्शन के साथ-साथ भारत की धार्मिक परंपराओं में गहराई से निहित थी। वह एक धर्मनिष्ठ हिंदू थे, लेकिन अन्य धर्मों के प्रति उनके मन में सम्मान और सहिष्णुता थी।[1] एक पुत्री की दलीलें निश्चित रूप से प्रश्नों से परे सत्य सिद्ध होती हैं, जब कोई व्यक्ति बोस की अवधारणाओं तथा विचारों को निष्पक्ष रूप से समझने का प्रयास करता है। नेताजी के लेखन, भाषण और विचार-विमर्श को देखा जाए तो ये काफी हद तक सही सिद्ध होता है। उनके धार्मिक-सांस्कृतिक आदर्श न केवल इस भूमि के

दार्शनिक लोकाचार से प्रेरित थे, बल्कि स्वामी विवेकानंद, श्री अरबिंदो और रवींद्रनाथ टैगोर जैसे उनके समकालीन धार्मिक और सांस्कृतिक प्रतीकों से भी स्वार्थहीन तथा उदार अनुसंकेत लेते थे। कुछ विशेष बिंदुओं पर यह भी अनुभव किया जा सकता है कि गांधी द्वारा प्रतिपादित आदर्श भी बोस के आदर्शों के साथ अभिसारित होते हैं। गांधी के 'राम राज्य' की परिकल्पना को बोस के 'स्वतंत्र भारत' या 'आजाद हिंद' की अवधारणा की तुलना में रखा जा सकता है और यह निष्कर्ष भी निकला जा सकता है की इनमें कोई विशेष अंतर नहीं है।

सांस्कृतिक क्षेत्र की खोज:

बंगाली बौद्धिक वातावरण में निहित उन्नीसवीं सदी के भारतीय पुनर्जागरण की खोज करते हुए नेताजी ने कहा कि विभिन्न कारणों से बंगाल में पैदा हुए अधिकांश प्रमुख व्यक्तित्व हिंदू थे।[2] उन्होंने राजा राम मोहन राय (1772-1833), महर्षि देवेंद्र नाथ टैगोर (1818-1905) और ब्रह्मानंद केशव चंद्र सेन (1838-1884) को पुनर्जागरण और सुधार वाले सांस्कृतिक संरक्षण और पुनरुद्धार के अग्रदूत के रूप में प्रतिपादित किया।[3] इसी तरह उन्होंने पंडित ईश्वर चंद्र विद्यासागर की प्रशंसा की है और तर्क दिया कि नए प्रकार के भारतीय प्रगति के लिए तथा पश्चिम और पश्चिमी संस्कृति के संश्लेषण के लिए वे खड़े हुए और हिंदू समाज से अलग हुए बिना पश्चिमी देशों के अनुकरणीय भौतिक एवं वैचारिक सुधारों को स्वीकार किया। महर्षि, ब्रह्मानंद और पंडित जैसे विशेषणों का उपयोग बोस के ज्ञान में निहित हिंदू शब्दावली को एक विशेष सांस्कृतिक अवधि के भीतर, मिशेल फूको (Michel Foucault) ने जिसका सीमांकन किया है, उसके अनुरूप विशेष रूप से दर्शाता है। स्कूल और कॉलेज में अपने आरंभिक दिनों से ही, वह विशेष रूप से रामकृष्ण परमहंस और उनके शिष्य स्वामी विवेकानंद द्वारा प्रतिपादित वेदांत के विचारों से बहुत अधिक प्रभावित थे और उन्होंने अपने जीवन का एक हिस्सा योग और आध्यात्मिकता को समर्पित कर दिया था। 1912 में 15 वर्ष की आयु में उन्होंने भारत (जिसे वे माता के रूप में देखते थे) की निर्बल स्थिति पर विचार करते हुए भारत माता के पुत्रों को अपने स्वार्थ का त्याग करके इसके उत्थान के लिए संकल्प लेने का आह्वान किया। स्पष्ट रूप से वे भारत की उस स्थिति, जहाँ राजनीतिक निराशा के अतिरिक्त लोग सामाजिक और आर्थिक मोर्चे की भीषण वास्तविकताएँ, जहाँ हर तरफ गरीबी व्याप्त थी तथा लोग भूख और बीमारी से मर रहे थे, की ओर इशारा कर रहे थे। जाति व्यवस्था से विकृत हिंदू समाज का उन पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा और उन्होंने इसके दुष्परिणाम को स्पष्टता से महसूस भी किया। हालाँकि गांधी और सावरकर के विपरीत उन्होंने सुधारवादी क्षेत्र में प्रवेश नहीं किया और देश की राजनीतिक मुक्ति पर अधिक ध्यान केंद्रित किया, जो आगे चलकर सामाजिक और आर्थिक मुक्ति का मार्ग प्रशस्त कर सकता था। पारंपरिक हिंदू परिवार के लिए धर्म एवं संस्कृति स्वाभाविक रूप से संबंधित हैं तथा इसके रूपक उन्हें समाज में प्रचलित प्रथाओं की नैतिकता की याद दिलाते हैं। एक विशिष्ट हिंदू रीति-रिवाजों वाले परिवार में पले-बढ़े बोस पर वेदांत और भगवद्गीता का गहरा प्रभाव था। अपने बचपन के वर्षों को याद करते हुए बोस कहते हैं कि उन्होंने कालिदास, जिन्हें उन्होंने प्राचीन भारत का सबसे बड़ा कवि और नाटककार कहा है, की कविता में प्राकृतिक दृश्यों के वर्णन का आनंद लिया, और वे महाभारत से भी प्रभावित थे।[4] स्वामी विवेकानंद और श्री अरबिंदो के रूप में बहुप्रचारित भारतीय पुनर्जागरण और इसके बाद के प्रकाश

स्तंभों का बोस की विश्वदृष्टि पर अलग-अलग प्रकार से प्रभाव पड़ा तथा इसने ही उनके राजनीतिक जीवन के आरंभिक और बाद के चरणों में उनकी राजनीतिक सक्रियता को आकार दिया। स्वामी विवेकानंद के कथनों और लेखों का उनके विचारों और आदर्शों पर गहरा प्रभाव पड़ा, विशेष रूप से जब उन्होंने सार्वजनिक जीवन में प्रवेश किया और भारत की स्वतंत्रता के लिए खुद को समर्पित कर दिया। वह मात्र पंद्रह वर्ष के थे, जब स्वामी विवेकानंद ने उनके विचारों में प्रवेश किया। उन्होंने स्वामी जी की ऋग्वेदिक उक्ति 'आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च', को अपने उद्धार के लिए और मानवता की सेवा के लिए अपने जीवन का लक्ष्य बनाया।[5] बोस ने विवेकानंद तथा अरबिंदो के अनुनय की प्रशंसा की और अरबिंदो के बारे में उन्होंने कहा, 'उनमें आध्यात्मिकता राजनीति से जुड़ी हुई थी।'[6] यह महत्वपूर्ण कारक थे, जिससे की हिंदू धर्म और संस्कृति के आकर्षण से प्रेरित और निर्देशित राजनीतिक राष्ट्रवाद उनकी राष्ट्रवादी अवधारणा की आधारशिला बन गई। लियोनार्ड गॉर्डन (Leonard Gordon) अपनी पुस्तक 'ब्रदर्स अगेंस्ट द राज' में लिखते हैं कि 'आंतरिक धार्मिक अन्वेषण बोस के वयस्क जीवन का अटूट अंग बना रहा और उनके लिए देश के प्रति राजनीतिक उत्तरदायित्वों की पूर्ति धार्मिक कर्म के समान थी।'[7] इसने उन्हें नास्तिक समाजवादियों और कम्युनिस्टों की धीरे-धीरे बढ़ती संख्या से अलग कर दिया तथा उनके साथ खड़ा कर दिया, जिन्होंने भारतीय परिदृश्य को धर्म एवं संस्कृति के माध्यम से चित्रित किया। एक उदाहरण के रूप में ऐसा एक पत्र उन्होंने 26 दिसंबर, 1925 को बर्मा की मांडले जेल से अपनी भाभी को भेजा था, जो बोस की आध्यात्मिक और धार्मिक जीवन दृष्टि में उनके अटूट विश्वास को चित्रित करता है। वह लिखते हैं, 'कौन जानता है कि हमें कब तक जेल में रहना पड़ेगा? लेकिन हमारे सारे कष्ट सहने योग्य होंगे, यदि हमें वर्ष में एक बार माँ दुर्गा की पूजा करने का अवसर मिलता है। दुर्गा में हम माँ, मातृभूमि और ब्रह्मांड-सब देखते हैं। वह एक ही बार में माँ, मातृभूमि और सार्वभौमिक आत्मा है।'[8] इसलिए मांडले जेल में ध्यान प्रथाओं को आगे बढ़ाते हुए उन्होंने वैष्णव और शाक्त अभिविन्यासों के कीर्तन (भक्ति गीत) का प्रारंभ किया, जो उस समय के बंगाल की प्रमुख धार्मिक धाराएँ थीं।[9]

इसके अतिरिक्त 5 मार्च, 1933 को अपने एक घनिष्ठ मित्र दिलीप कुमार रॉय को लिखे उनके पत्र को पढ़ते हुए उनके व्यक्तित्व के गहरे आध्यात्मिक आयामों का स्पष्ट आभास होता है।[10] वह लिखते हैं कि कैसे वह शिव, काली और कृष्ण के प्रति अपने प्रेम के कारण अपनी आस्था का विभाजन देखते हैं। हालाँकि वह यह स्वीकार करते हैं कि वे मूल रूप से एक हैं, परंतु प्रतीकात्मक दृष्टि से एक के स्थान पर दूसरे को पसंद करते हैं। मनोदशा के अनुसार कभी एक को और कभी दूसरे को इन रूपों में से चुनते हैं। अर्थात कभी शिव, कभी काली और कभी कृष्ण। शिव और शक्ति के बीच के अपने चुनाव के द्वंद्व को स्वीकार करते हुए वह कहते हैं कि शिव के प्रति उनकी आसक्ति है तथा माँ काली के प्रति भी उनका मोह है। वह स्वीकार करते हुए कहते हैं कि वे यह पता लगाने में विफल रहें हैं, क्योंकि उनकी मनोदशा अलग-अलग है और वह कभी शैव हैं, कभी शाक्त और कभी वैष्णव।[11] बोस को नास्तिक प्रचारित करने वाले कई आधारों पर गलत सिद्ध होते हैं। उसी पत्र में बोस स्पष्ट करते हैं की कैसे पिछले चार-पाँच वर्षों से वह मंत्र शक्ति में विश्वास करने लगे हैं तथा यह मानने लगे हैं कि मंत्रों की अंतर्निहित शक्ति होती है, जबकि पहले वह सामान्य तर्कवादी विचार के थे और मंत्रों को केवल एकाग्रता में सहायक के रूप में देखते थे।[12] लियोनार्ड गॉर्डन के अनुसार आजाद हिंद फौज के गठन के बाद भी बोस ने अध्यात्म को नहीं छोड़ा, बल्कि विकट परिस्थितियों में वह ध्यान और अध्यात्म का सहारा लेते थे। गॉर्डन कहते हैं कि सिंगापुर के नारिस रोड स्थित रामकृष्ण मिशन के आश्रम में जाकर वह ध्यान कक्ष में घंटों ध्यान लगाते थे तथा मठ के संन्यासियों से प्रभावित रहते थे। वहीं अपने बर्लिन प्रवास के दौरान भी वह बम वर्षा के बीच देर रात्रि में ध्यान मग्न हो जाते थे।[13]

नीरद चौधरी बोस को बंगाल के उन नव हिंदुओं में से एक के रूप में सम्मिलित करते हैं, जिनका पारंपरिकता की ओर विशेष झुकाव था।[14] उन्होंने अपनी पुस्तक

'Thy Hand, Great Anarch!: India, 1921-1952' में बोस के बारे में उल्लेख करते हुए लिखा है कि– '.... हालाँकि वे किसी भी मायने में कट्टर या रूढ़िवादी हिंदू नहीं थे, लेकिन वे बीसवीं सदी के पहले दो दशकों के बंगाल में पले–बढ़े थे,जहाँ बंकिम चंद्र चटर्जी और स्वामी विवेकानंद के प्रभाव के कारण धर्म और राष्ट्रवाद का मेल था, जिससे राष्ट्रवादी भावना में एक स्पष्ट हिंदू रंग था और हिंदू धर्म का एक स्पष्ट राजनीतिक चरित्र। इस प्रकार उस युग के नव–हिंदूवाद ने बंगाली राष्ट्रवाद का एक हिस्सा होने के कारण बोस को प्रभावित किया।[15]

इसकी तुलना जवाहरलाल नेहरू से करते हुए चौधरी कहते हैं, 'सबसे गंभीर बात यह है कि उन्हें हिंदू धर्म का कोई प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष ज्ञान नहीं था और इसके अलावा वे इसके प्रति सहानुभूति भी नहीं रखते थे। इस प्रकार भारतीय मानस तक उनकी सीधी पहुँच नहीं थी और जैसा कि मुझे देखने का अवसर मिला, उनका पारंपरिक हिंदू विचारों और आदतों के प्रति एक दृढ़ विरोध था। उन्होंने भारत के लिए जिस प्रेम को अभिव्यक्त किया, वह किसी भी तरह से एक इंडोफाइल अंग्रेज से अलग नहीं था।'[16]

बोस एक सच्चे साधक थे। साधक विशेषण भारतीय संस्कृति और दर्शन की गैर–अनुष्ठानात्मक परंपराओं में निहित भारतीयों के लिए सबसे उपयुक्त शब्द है। अपने लेखन, 'द इंडियन स्ट्रगल' में उन्होंने भारत को एक विभाजित भूमि और निरंतर युद्धरत राष्ट्र के रूप में प्राच्यवादियों द्वारा किए गए चित्रण की आलोचना की। वह मानते थे कि भारत कि पौराणिकता को इब्राहीमी सभ्यताओं (Abrahamic civilizations) के विकास के संदर्भ में यूरोपीय लोगों के लिए अधिक बोधगम्य समय अवधि के बजाय हजारों वर्षों के कालखंड में गिना और समझा जाना चाहिए। बोस ने सुझाया, 'भौगोलिक, नृवंश–विज्ञान और ऐतिहासिक रूप से भारत किसी भी पर्यवेक्षक के लिए एक अंतहीन विविधता प्रस्तुत करता है और इस विविधता में अंतर्निहित मौलिक एकता भी कम नहीं है।' वे राधा कुमुद मुखर्जी की पुस्तक, 'द फंडामेंटल यूनिटी ऑफ इंडिया' के माध्यम से अपने विचारों को और स्पष्ट करते हैं और कहते हैं – 'सबसे महत्वपूर्ण जुड़ाव का कारक हिंदू धर्म रहा है। उत्तर हो या दक्षिण, पूर्व या पश्चिम, आप जहाँ भी यात्रा कर सकते हैं, आपको वही धार्मिक विचार, वही संस्कृति और वही परंपराएँ मिलेंगी। सभी हिंदू भारत को एक पवित्र भूमि के रूप में देखते हैं।' उन्होंने आगे कहा, 'हर जगह एक ही शास्त्र पढ़ा जाता है और उनका पालन किया जाता है। जहाँ भी आप यात्रा करते हैं, महाभारत और रामायण वहाँ समान रूप से लोकप्रिय हैं।'[17]

व्यावहारिक राजनीति में संस्कृति को सन्निहित करना:

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में सम्मिलित होने और यहाँ तक कि पार्टी के समाजवादी समूह से संबंधित होने के बाद भी उन्होंने छोटे–से–छोटे कथनों को कहने तथा जोड़ने के दौरान हिंदू प्रतीकों और रूपकों के उदार उपयोग को कभी नहीं छोड़ा। उन्होंने सनातन धर्म की अनिवार्यताओं से समझौता किए बिना पश्चिम से आधुनिक और प्रगतिशील चीजों को खुले मन से अपनाया और भारतीय संस्कृति और सभ्यता के आधार पर पूर्व और पश्चिम के विचारों का एक प्रचंड मिश्रण बनाया।[18] मई, 1928 में महाराष्ट्र प्रांतीय सम्मेलन के अपने संबोधन में उन्होंने भारतीय राष्ट्रवाद के बारे में जो कहा, वह पढ़ने योग्य है और यह साम्यवाद और सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के चरम के बीच मँडराते उनके विचारों में एक अंतर्दृष्टि देती है। उन्होंने कहा, 'यह मानव जाति के उच्चतम आदर्शों, सत्यम(सच्चे) शिवम (अच्छे) सुंदरम (सुंदर) से प्रेरित है... इसने उन रचनात्मक क्षमताओं को जगाया है, जो सदियों से हमारे लोगों में निष्क्रिय पड़ी थीं।'[19] त्रुटिपूर्ण रूप से यह माना गया कि नेताजी नास्तिक प्रवृत्ति के थे तथा यह दृष्टिकोण तब और भी पुष्ट हो जाता है, जब वह फॉरवर्ड ब्लॉक की स्थापना करते हैं, जो वैचारिक दृष्टि से वामपंथ की ओर झुकता था। ऐसे विद्वान बोस के आर्थिक एवं राजनीतिक विचारों को उनके सांस्कृतिक और धार्मिक विचारों का प्रतिबिंब समझ लेने की भूल करते हैं।[20] दोनों ही विचारों में मूलभूत अंतर है और यह अंतर तब स्पष्ट होता है, जब बोस के राष्ट्रवादी विचारों को संस्कृति तथा सभ्यता के ढाँचागत स्तर पर समझने का प्रयास किया जाए।

कम्युनिस्टों को हालाँकि बोस के क्रांतिकारी उत्साह से सहानुभूति थी, लेकिन उन्होंने धर्म और आध्यात्मिकता पर बोस के विशेष बल को खारिज कर दिया और आध्यात्मिकता को भौतिकवाद से बदल दिया, जिस प्रवृत्ति के साथ बोस असहज थे।[21] हिंदुत्व के आलोचकों के विचारों और आकांक्षाओं के विपरीत बोस और विनायक सावरकर ने 1940 में कलकत्ता निगम चुनावों के दौरान फॉरवर्ड ब्लॉक और हिंदू महासभा के बीच सहयोग की संभावनाओं को तलाशने के लिए 21 जून, 1940 को भेंट की थी।[22] उस समय सावरकर हिंदू महासभा के अध्यक्ष थे और बोस भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस छोड़ने के बाद फॉरवर्ड ब्लॉक का नेतृत्व कर रहे थे। चूँकि यह द्वितीय विश्व युद्ध की अवधि थी, सावरकर ने बोस को सलाह दी कि वे अंग्रेजों की कठिनाइयों का लाभ उठाएँ और खुद भारत से बाहर जाएँ और अंग्रेजों के शत्रुओं से सहायता लें।[23] राष्ट्रीय आंदोलन के लिए इस बैठक का बहुत महत्व था, क्योंकि सावरकर की सलाह पर बोस ने रास बिहारी बोस, जो की गदर युग के प्रवासी क्रांतिकारी थे, से मिलने की योजना बनाई। द्वितीय विश्व युद्ध में अंग्रेजों के दुश्मनों की सक्रिय सहायता से एक सेना जुटाने की योजना थी। अपनी भारत की मुक्ति सेना के लिए युद्ध के कैदियों की भर्ती करने का भी निर्णय लिया गया। 24–25 जून, 1944 को, जब अंग्रेजों का भाग्य अधर में लटक गया था, नेताजी ने सिंगापुर से आजाद हिंद रेडियो पर अपने संबोधन में सावरकर की सराहना की, जो सेना में हिंदू युवाओं को भर्ती करने पर बल दे रहे थे, जबकि कांग्रेस अपने असहयोग की नीति के तहत सशस्त्र बलों में भारतीयों की भर्ती की निंदा कर रही थी और यहाँ तक की ऐसे भर्ती सैनिकों को भाड़े के सैनिक कहने की हद तक चली गई थी।[24] बोस ने ऐसे सूचीबद्ध युवाओं को अपनी आजाद हिंद फौज के लिए प्रशिक्षित पुरुषों के रूप में देखा।[25] बोस व्यावहारिक प्रवृत्ति के व्यक्ति थे तथा देश की व्यावहारिक राजनीतिक आवश्यकतों की पूर्ती के लिए उन्होंने अपने राजनीतिक विचारों को काल तथा परिस्थिति के अनुसार ढाला। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से उन्होंने दो आक्रमणकारी शासन व्यवस्थाओं मुसलमानों और अंग्रेजों के बीच के अंतर को देखते हुए इस्लामी शासन के प्रति उदार थे, क्योंकि उन्होंने उन्हें शासक वर्ग के रूप में देखा, जिसने उन पर अधिकार कर एक मुस्लिम राज्य की स्थापना तो की, लेकिन इसमें महत्वपूर्ण पदों पर बैठे हिंदुओं का सक्रिय समर्थन था, जिसके कारण उन्होंने भारतीय राजनीतिक व्यवस्था पर शासन किया और उसे आकार दिया। इस प्रकार दोनों की बिना एक के दूसरे पर हावी हुए प्रशासन चलाने में समान सहभागिता थी। उनकी दृष्टि में आयरलैंड में कैथोलिक–प्रोटेस्टेंट विवाद की तरह ही भारत में हिंदू–मुस्लिम विभाजन एक ब्रिटिश रचना है।[26] बोस ने अकबर से लेकर सिराजुद्दौला और बहादुर शाह द्वितीय तक के उदाहरण देकर इन धारणाओं का मुकाबला किया, जिसमें उन्होंने धार्मिक–सांस्कृतिक गैर–अनुरूपताओं के बावजूद राजनीतिक उदारवाद का सुझाव दिया। उन्होंने यह विचार तात्कालिक राष्ट्रीय परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए प्रतिपादित किया। उन्होंने नए सांस्कृतिक संश्लेषण की ओर भी इशारा किया, जो संस्कृति की दो धाराओं के सुखद सम्मिश्रण के मद्देनजर आकार ले रहा था। हालाँकि उन्होंने इस बात को स्वीकार किया कि मुसलमानों ने हिंदुओं के धर्म को स्वीकार नहीं किया, लेकिन उन्होंने भारत को अपना घर मान लिया और यहाँ के लोगों के सामाजिक जीवन को साझा किया।[27] हालाँकि वह ब्रिटिश राज के स्पष्ट रूप से आलोचक थे, जिसके साथ एक नए संप्रदाय, संस्कृति और सभ्यता का आगमन हुआ, जिसने भारत की मूल के साथ मिश्रित होने से इनकार कर दिया और इसके बजाय पूरी तरह से इस पर हावी होने की इच्छा रखी।[28] उन्होंने मुस्लिम आक्रमणकारियों को अंग्रेजों से अलग करके देखा, क्योंकि अंग्रेजों ने भारत को अपना घर नहीं माना, बल्कि उन्होंने केवल इसकी लूट और अपना वर्चस्व स्थापित करने में रुचि रखी। ब्रिटिश शासन द्वारा राजनीतिक, सांस्कृतिक और आर्थिक आधिपत्य के कारण जो भावना और धारणा भारतीयों में पैदा हुई, वह संभवत: उनके विरुद्ध विद्रोहों की भयावहता के कारणों में से एक थी। नेताजी ने यह महसूस किया कि औपनिवेशिक नौकरशाही व्यवस्था भारतीयों को जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में अपनी स्वायत्तता का आनंद लेने के लिए बहुत

अधिक गुंजाइश नहीं छोड़ती थी। हालाँकि वे मुस्लिम शासकों को इस तरह के आरोपों से मुक्त रखते हैं, क्योंकि उन्होंने यह अनुभव किया कि यद्यपि मुस्लिम शासन के दौरान बेलगाम निरंकुशता थी, लेकिन जब तक वित्तीय विनियोग बरकरार रहा, वे शायद ही कभी आंतरिक और परिधीय क्षेत्रों के मामलों में हस्तक्षेप करते थे।

मुस्लिम और ब्रिटिश राज की तुलना में नेताजी के विचार और उनकी समझ से उनके द्वारा निकाले गए निष्कर्ष शायद उस काल की आवश्यकताओं को पूरा करते थे। उनका अर्थ-स्थापना का दृष्टिकोण एक आम भारतीय की पहचान के निर्माण पर आधारित था, भले ही सांप्रदायिक जुड़ाव और ऐतिहासिक आधार कुछ भी हो। इसलिए वे दो आक्रांत-शासनों के उनके विपरीत ऐतिहासिक सटीकता की तुलना में वर्तमान व्यवहार्यता से अधिक प्रेरित थे। वह अनिवार्य रूप से एक सुसंगत और सर्व स्वीकार्य भावना पैदा करने की कोशिश कर रहे थे, जिससे पुनरावलोकन को निरस्त करके एक एकीकृत उपनिवेशवाद-विरोधी संघर्ष को आकार दिया जा सकता हो।

इसलिए मुस्लिम समुदाय को स्वतंत्रता के लिए राष्ट्रीय संघर्ष में समान हितधारक मान कर उन्होंने तत्कालीन मुस्लिम शासन के बिल्कुल विपरीत ब्रिटिश के इतरत्व की कल्पना विकसित की। ऐसा इसलिए भी हुआ था, क्योंकि राष्ट्रीय आंदोलन में कई लोगों ने यह अनुभव किया था कि मुसलमान पैन-इस्लामवाद (Pan-Islamism) के विचार से बहुत अधिक जुड़े हुए थे और मातृभूमि को दर्शाने वाले सामान्य प्रतीकों के साथ खुद को पहचाने जाने में कुछ सीमा तक अनिच्छा रखते थे। बोस अपनी सामाजिक-राजनीतिक पारंपारिकता के कारण सहज ज्ञान युक्त होने के साथ-साथ व्यावहारिक भी रहे और उन्होंने मुसलमानों में व्याप्त इस द्वंद्व को महसूस किया।

उनके अपरंपरागतवाद को संभवत: फूको द्वारा प्रतिपादित अर्थ-निर्माण में समझा जा सकता है, जो एक विशिष्ट सांस्कृतिक अवधि के लिए गठन के हित में निहित हैं और जिसका महत्व केवल उसी ऐतिहासिक-सांस्कृतिक परिवेश में परिगत है। इस प्रकार मुसलमानों को अपनी योजना में शामिल करने की प्रक्रिया में उन्होंने कुछ नियमों और सिद्धांतों की स्थापना की, ताकि उन्हें सांप्रदायिक दरारों से घिरे देशभक्त समुदायों के लिए सुगम बनाया जा सके। मध्ययुगीन काल के हिंदू-मुस्लिम संबंधों की इस प्रकार की व्याख्या और सांझे 'अन्य' के विरुद्ध देशभक्तों के सम्मिलन के द्वारा उन्होंने सीमित करने वाले कारकों को मिटाने का प्रयास किया और समावेशन के कुछ सामान्य बिंदुओं और जुड़ाव के नियमों को भी विकसित किया।

निष्कर्ष :

देश की मुक्ति के लिए प्रयास करना बोस के लिए कर्मयोग था, क्योंकि वे इसे व्यक्तिगत मुक्ति या मोक्ष के मार्ग के रूप में भी देखते थे। ये विचार उनके पूर्ववर्तियों जैसे कि अरबिंदो और बंकिम के साथ-साथ भगवद्गीता जैसे ग्रंथों के अनुरूप थे। बोस के लिए आध्यात्मिक ज्ञान राष्ट्र के लिए किसी भी प्रकार की प्रभावी सेवा के लिए एक आवश्यक पूर्वापेक्षा थी, विशेष रूप से यदि वह सेवा राजनीति के माध्यम से होनी हो। बोस के धार्मिक और आध्यात्मिक अन्वेषणों ने एक लंबा सफर तय किया, जिसने आरंभिक काल से ही भारत की पीड़ित राजनीतिक और सामाजिक परिस्थितियों के प्रति उनके दृष्टिकोण को परिभाषित करने में योगदान दिया। समाजवाद के कई रूप और आयाम हैं और निश्चित रूप से समाजवादी होना साम्यवाद में विश्वास को व्यक्त नहीं करता है। बोस भी कुछ ऐसे ही थे तथा कई अवसरों पर उन्होंने स्वयं को साम्यवाद से अलग किया था।

विवेकानंद ने कहा था कि मैं समाजवादी हूँ, इसलिए नहीं कि यह एक सिद्ध प्रणाली है, बल्कि इसलिए कि मेरा मानना है कि आधी रोटी भूखे पेट से बेहतर है। बोस का समाजवाद भी ऐसा ही था, जो स्वामी विवेकानंद के विचारों के अनुरूप ही संस्कृति एवं धर्म से प्रेरित और पोषित था और मानव तथा राष्ट्र के कल्याण पर केंद्रित था। कई बार वह साम्यवाद को राष्ट्रवाद के विरुद्ध अपराध के जैसा देखते हैं, क्यूँकि समाजवाद के वर्ग संघर्ष की विचारधारा राष्ट्रीय एकात्मता के मूल्यों के

विपरीत जाती थी। वह अपनी व्यावहारिक राजनीति में एक अंतर्राष्ट्रीयवादी थे, क्योंकि वे समय की माँगों को समझते थे, लेकिन जब भारत को समझने की बात आई तो वे प्रगाढ़ राष्ट्रप्रेमी थे। उनके विचारों की सूक्ष्म उदारता उन्हें भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन का एक आकर्षक व्यक्तित्व बनाती है। ❑

संदर्भ :

1. जीशान जावेद, प्रियंका दासगुप्ता : 'नेताजी वाज डीवोट हिन्दू, बट रेस्पेक्टेड ऑल फेथ्स : डॉटर', द टाइम्स ऑफ इंडिया, 24,जनवरी, 2021 https://timesofindia.indiatimes.com/india/netaji-was-devout-hindu-but-respected-all-faiths daughter/articleshow/80429343cms
2. सुभाष चंद्र बोस : नेताजी'ज लाइफ एंड राइटिंग्स, पार्ट वन-ऐन इंडियन पिलग्रिम, पृ.22 222.hindustanbooks.com
3. वही, पृ. 21-22
4. वही, पृ. 46
5. वही, पृ. 25
6. वही, पृ. 25
7. लियोनार्ड ए. गॉर्डन : ब्रदर्स अगेंस्ट द राज: अ बायोग्राफी ऑफ इंडियन नॅशनलिस्ट्स सरत एंड सुभाष चंद्र बोस, रूपा प्रकाशन, नई दिल्ली, 2015, पृ. 132
8. नेताजी कलेक्टेड वर्क्स : वॉल्यूम IV, नेताजी रिसर्च ब्यूरो, कलकत्ता, पृ. 84
9. लियोनार्ड ए. गॉर्डन, पृ. 124
10. नेताजी कलेक्टेड वर्क्स : वॉल्यूम VIII, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, पृ. 2
11. वही
12. वही
13. लियोनार्ड ए. गॉर्डन पृ. 502
14. नीरद चौधरी : दाई हैंड, ग्रेट अनार्क। : इंडिया 1921-1952, पृ. 32 https://archive.org/details/ThyHandGreatAnarch
15. वही, पृ. 502
16. वही, पृ.32
17. सुभाष चंद्र बोस : द इंडियन स्ट्रगल, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 2007, पृ. 2 https://ia800703.us.archive.org/9/items/indianstruggle1902subh/indianstruggle1902subh.pdf
18. अमिता घोष : नेताजी : ए रियलिस्ट एंड विजनरी, विजयश्री इंटरप्राइजेज, हैदराबाद, 1986, पृ.31
19. सुभाष चंद्र बोस: सिलेक्टेड स्पीचेज ऑफ सुभाष चंद्र बोस, पब्लिकेशन डिवीजन, मिनिस्ट्री ऑफ इनफार्मेशन एंड ब्रॉडकास्टिंग, गवर्नमेंट ऑफ इंडिया, 1962, पृ. 33
20. इरफान हबीब, 'दोज हु सीक टू एप्रोप्रियेट बोस एंड भगत सिंह वुड डु वेल टू लर्न अबाउट देयर पॉलिटिक्स', स्क्रॉल.इन, 19 जून, 2016. अक्सेस्सेड फ्रॉम https://scroll.in/article/809668/those-who-seek-to-appropriate-bose-and-bhagat-singh-would-do-well-to-learn-about-their-politics
21. मारेक मोरो, 'फॉर हूम इज द इंडिपेंडेंट नेशन स्टेट ? सुभाष चंद्र बोसेज व्यूज इन द 1920ज एंड 1930ज', द पोलिश जर्नल ऑफ द आर्ट्स एंड कल्चर, न्यू सीरीज 2, वॉल. 2, 2005, पृ. 67 https://www.ejournals.eu/PJACNS/2015/2(2015)/art/6462/
22. प्रणब कुमार चटर्जी : 'बोस-लीग पैक्ट इन द कलकत्ता कारपोरेशन इन 1940', प्रोसीडिंग्स ऑफ द इंडियन हिस्ट्री कांग्रेस, वॉल्यूम 41, 1980, पृ. 549
23. नारायण भास्कर खरे : माई पोलिटिकल मेमॉयर एंड ऑटोबायोग्राफी, नक्षत्र प्रेस, ओगले रोड, मुंबई, 1959, पृ. 60-61 https://archive.org/details/in.ernet.dli.2015.263305
24. वही, पृ. 61
25. वही, पृ. 61-62
26. सुभाष चंद्र बोस : द इंडियन स्ट्रगल, पृ. 21
27. वही, पृ. 22
28. वही, पृ. 7

कथा साहित्य

निशी समुदाय के कटु यथार्थ को अभिव्यक्ति करता 'जंगली फूल'

डॉ. उपमा शर्मा

6 माइल तादोंन
गंगटोक, सिक्किम-737201
मो. 8101629551
ई-मेल : upamasharma64@gmail.com

भारतीय संस्कृति विविध लोक एवं जनजातीय संस्कृतियों का जैविक समुच्य है, जिसके निर्माण में न जाने कितने विविध जन समुदायों की सहयोगी भूमिका चली आ रही है। जनजातीय समुदाय से उनकी संस्कृति, परंपरा और कला रूपों का रिश्ता इतना नैसर्गिक और जीवंत है कि उनके बीच विभाजन रेखा खींच पाना कठिन है। अरुणाचल प्रदेश में मुख्य रूप से 26 जनजातीय समाज हैं, जिनमें से निशी एक प्रमुख जनजातीय समुदाय है, जो प्राचीन युग से अपने संस्कृतिमय जीवन का निर्वाह कर रहा है। देखा जाए तो जनजातीय संस्कृति, परंपरा और कला की दृष्टि से निशी समुदाय अत्यंत समृद्ध व प्रभावशाली है। इसका स्पष्ट प्रभाव सभ्यता और संस्कृति पर देखा जा सकता है। जंगल, वन, पहाड़ों के बीच रहते हुए भी आदिवासी समुदाय अपनी संस्कृति को संरक्षित किए हुए हैं, जिसे देखने के लिए आज भी गैर-आदिवासी समुदाय के लोग लालायित दिखाई देते हैं। भारतीय संस्कृति एक ऐसी संस्कृति है, जो घटना प्रधान न होकर विचार प्रधान है और जिसमें धारावाहिक प्रवाह निरंतर बना रहा है। किसी भी देश की संस्कृति वहाँ की पहचान ही नहीं, बल्कि उसकी प्राणशक्ति भी होती है। भारतीय संस्कृति अपने आप में अद्‌भुत संस्कृति है। भारत प्राचीनकाल से ही विभिन्न कबीलों और जनजातियों का केंद्र रहा है और यहाँ की पारिवारिक तथा सामाजिक परिस्थितियाँ और प्रथाएँ हमेशा से ही अलग-अलग रही हैं, जिसके कारण यहाँ की संस्कृति समय-समय पर स्वतंत्र रूप में परिवर्तित होती रही। संस्कृति मानव के सामने उच्च आदर्शों और लक्ष्यों को प्रस्तुत करती है, जो मानव जीवन में समाहित होकर उसके सकारात्मक पक्ष को मजबूती प्रदान करती है तो वहीं नकारात्मक प्रवृत्ति पर नियंत्रण भी। समाज को व्यवस्थित रूप से चलाने के लिए जिस पद्धति और सिद्धांत की आवश्यकता होती है, वह है - संस्कृति। संस्कृति वह प्रक्रिया है, जिसके माध्यम से व्यक्ति अपना विकास करता है।

अत: हम कह सकते हैं कि संस्कृति साधन और साध्य दोनों है। संस्कृति व्यक्ति जनित मानसिक पर्यावरण से संबंध रखती है, जिसमें सभी अभौतिक

वस्तुएँ को एक पीढ़ी से दूसरे पीढ़ी को हस्तांतरित होती हैं। संस्कृति किसी भी समाज के वे सूक्ष्म संस्कार होते हैं, जिसके माध्यम से लोग परस्पर संप्रेषण करते हैं और जीवन में अपनी अभिवृत्तियों, विचारों एवं ज्ञान को नई दिशा देते हैं तो वहीं संस्कृति एक समाज से दूसरे समाज में एक देश से दूसरे देश में बदलती नजर आती है। अगर विहंगम दृष्टि से विचार किया जाए तो हम देख सकते हैं कि किसी भी देश के लोग अपनी विशिष्ट संस्कृति और परंपराओं के द्वारा ही पहचाने जाते हैं।

योराम मालाम कृत 'जंगली फूल' अरुणाचल प्रदेश के निशी समुदाय पर केंद्रित एक उपन्यास है, जो एक कबीले के संगठित होने की यात्रा है, जिसका नेतृत्व 'तानी' करता है। तानी इस उपन्यास का मुख्य पात्र है, जिसके इर्द-गिर्द संपूर्ण कहानी चलती है। तानी से जुड़े ढेरों लोक कथाएँ इस समुदाय में मौजूद हैं, लेकिन लोक कथाओं में जो रूप सामने आया है, वह सकारात्मक नहीं है, बल्कि तानी की छवि एक नकारात्मक भूमिका में दिखाई देती है। वहाँ तानी स्त्री लोलुप और बलात्कारी के रूप में दिखाई पड़ता है, जिसका उद्देश्य केवल अपने वंश को आगे बढ़ाना है तथा अपने समुदाय को शक्तिशाली बनाकर अपने समुदाय के लोगों को जीविकोपार्जन एवं सुरक्षा प्रदान करना है। लेखिका अपने उपन्यास में तानी की इस छवि को अस्वीकृत करती है। लेखिका की जिज्ञासा है कि 'क्या वंश बढ़ा लेने मात्र से ही कोई अमर हो जाता है? कोई तो वजह रही होगी, जिसके कारण आज तक लोग उसके नाम को भूल नहीं पाए हैं। कोई तो ऐसी वजह रही होगी, जिसके चलते लोगों ने उसे पिता कहा होगा।'[1](पृ.3)

तानी इस उपन्यास का नायक होने के नाते अपने समुदाय के प्रति जो उसकी जिम्मेदारी है, उन जिम्मेदारियों को वह बखूबी निभाता है। वह अपने पिता की मृत्यु के उपरांत इस जिम्मेदारी को पूरी लगन से निभाते हुए दिखाई देता है। तानी से अधोतानी बनने की प्रक्रिया शुरू होती है, उसकी माँ द्वारा उसे दी गई जिम्मेदारी से। तानी की माँ की हालत जब अपने पति के शरीर के टुकड़ों को देखकर बिगड़ने लगती है, तब वह इशारे से बुलाकर तानी से कहती है कि 'सुनो, मेरे प्यारे! अब से तुम पर सारे तानी कबीलों वालों की जिम्मेदारी होगी। तुम्हारा अपना निजी जीवन नहीं होगा, जब तक हमारे लोग दर-दर भटकना छोड़कर किसी स्वर्ग से स्थान में नाचते-गाते न ठहर जाएँ, हमेशा के लिए तानी वह है, जो सूरज की गैर-मौजूदगी में भी चमकता और जलता रहता है। सूर्य से पैदा हुई अग्नि जिसके भीतर अंधकार में जलती रहती है। अपने बल...और पौरुष से तुझे...खुद को साबित करना होगा...तेरे पिता कुछ...बोल नहीं पाए...मेरी सुनो...अपने लोगों का ख्याल रखना, जैसे खुद का रखोगे!'[2] (पृ.13-14) इस प्रकार तानी को तानी वंश का सरदार बना दिया गया। तानी में वह सारे गुण मौजूद थे, जो एक सरदार में होने चाहिए। अपनी माँ द्वारा सौंपी गई जिम्मेदारी को तानी जीवन पर्यंत निभाता रहता है और पेट भरने के लिए स्थान बदलता रहता है। समय-समय पर अच्छी उपजाऊ जमीन के लिए अन्य कबीलों से भी भिड़ता है। एक ही स्थान पर झूम खेती नहीं की जा सकती है। उसमें फिर से पेड़-पौधों को उगने तथा बड़े होने में समय लगता है। सूरज की सीधी प्रबल प्रकाश से मिट्टी सख्त रहती है और उसमें झूम खेती के लिए उपयुक्त खार नहीं होते। एक बार उस स्थान का उपयोग हो गया तो उसे छोड़कर फिर नया स्थान खोजना अनिवार्य हो जाता है, लेकिन इतनी मेहनत के बावजूद लोग भूखों मरते हैं। धान की खेती तो होती नहीं है सिर्फ मकई, मडुआ, तिल, ककड़ी, कच्चू इत्यादि ही होते हैं, उनसे कितने दिन और कितनों का पेट भर सकता है।

तानी अपने समुदाय को सुरक्षित एवं उनकी संपूर्ण आवश्यकताओं को पूरा करने के उद्देश्य से संपूर्ण जीवन दर-दर भटकता रहता है। तानी का अर्थ है - जिसमें माँ और पिता दोनों के गुण विद्यमान हों। निशी समुदाय की एक खासियत है कि ये लोग सूर्य को माँ और चंद्रमा को पिता मानते हैं, जो अन्य समुदाय में ठीक इसका उल्टा है। तानी एक वंश का नाम है। तानी के जन्म का नाम दोन्यी था, जिसे बदलकर उसकी माँ ने तानी रखा था, क्योंकि वह बाल्यावस्था से ही शक्तिशाली एवं कुसाग्र बुद्धि का बालक था।

निशी समुदाय में लूटने की परंपरा है। ये लोग

छोटे-छोटे वर्गों में बँटे हुए होते हैं। इनके रहने के लिए कोई स्थायी स्थान नहीं होता है। ये लोग दूसरे समुदाय में जाकर लूटपाट करते हैं। लूटपाट के दौरान जो भी सामान उन्हें प्राप्त होता है, उसी से वह अपना जीविकोपार्जन करते हैं। यही कारण है कि इनके समुदाय में एक पुरुष कई-कई स्त्रियों से विवाह करते हैं और अधिक से अधिक बच्चे को जन्म देते हैं ताकि ये लोग अपने समुदाय को बढ़ा सकें। जिसके समुदाय में जितने अधिक व्यक्ति होंगे, वे उतना ही शक्तिशाली होंगे तथा अपने समुदाय को भी वह उतना ही सुरक्षित रख सकेंगे। इसी उद्देश्य को तानी पूरा करने के लिए कई महिलाओं के साथ संभोग करता है।

तानी की बहन दोलियांग है, जो तानी के साथ हमेशा साये के समान रहती है। तानी जानवरों की सवारी करता है तो बहन वहीं पौधे का निरीक्षण करती है। निशी समुदाय की स्त्रियाँ भी उतनी ही शक्तिशाली और कुशाग्र बुद्धि की हैं जितने कि पुरुष। 'जंगली जड़ी-बूटियों की जानकारी में उसने जल्दी महारत हासिल कर ली थी। पौधों के करीब जाकर जाने क्या बुदबुदाती रहती थी, मानो पौधे भी उससे कुछ कह रहे हों। पूरे तानी वंश की बेहद प्यारी-सी छोटी चमत्कारी पुजारिन थी वह! जंगलों में ही जब देखो घूमती रहती। लोग उसे सूर्य देवी कहकर पुकारा करते थे। सबका इलाज उसके पास था। अगर कोई इलाज नहीं था तो निरंतर कुलकुलाते पेट की आग को बुझाने का।'[3] (पृ.12) अधिकांश आदिवासी भारत के वन क्षेत्रों में सदियों से सभ्य समाज से दूर आपस में मिल-जुलकर पूरे विश्वास और सुरक्षा के वातावरण में रहते आए हैं। आदिवासियों का जंगल के साथ सहजीवी संबंध है। जनजातीय अर्थव्यवस्था और संस्कृति के साथ वनों का संबंध बहुत गहरा है। भोजन, ईंधन, लकड़ी, घरेलू सामग्री,जड़ी-बूटी, औषधियों, पशुओं के लिए चारा और कृषि औजारों की सामग्री के लिए वे वनों पर आश्रित रहते हैं। निशी समुदाय की संस्कृति भी जंगलों से इतर नहीं है।

आदिवासी समाज में भुखमरी की समस्या एक ज्वलंत समस्या है, जिसको नकारा नहीं जा सकता है। आदिवासी समुदाय में 54 फीसदी बच्चे कुपोषण के शिकार हैं, जिसका मुख्य कारण है पर्याप्त अन्न का उत्पादन न होना। जो कुछ उत्पादित भी होता है, उसका सही स्थान पर वितरण न होना भी एक कारण है। निशी समुदाय की मूल समस्या जड़, जंगल और जमीन में निहित है। उनके जीवन की अन्य समस्याएँ इन्हीं तीन समस्याओं के परिणामस्वरूप जन्म लेती हैं। जड़ से तात्पर्य है आदिवासियों का निवास, जहाँ वे अपने जन्म से रहते हैं। जंगल से तात्पर्य है आदिवासियों के वे जंगल, जिनके द्वारा वे अपना जीवन यापन करते हैं। जमीन से तात्पर्य आदिवासियों के रहने के स्थान व जंगल की जमीन से है। दूसरे शब्दों में यदि कहें तो आदिवासियों को अपनी जड़ों को छोड़कर विस्थापित होना पड़ा है। वे जंगल, जिनका आदिवासियों से अन्योन्याश्रय संबंध है। आदिवासी सदा से ही वनों में रहते आए हैं। इसलिए आदिवासियों एवं वनों के बीच अत्यंत घनिष्ठ संबंध है। ईंधन, पशुओं के लिए चारा, फल-फूल, जड़ी-बूटियों, कृषि औजार और लकड़ी आदि के लिए वे वनों पर ही आश्रित रहते हैं, जिसका चित्रण 'जंगली फूल' उपन्यास में देख सकते हैं। 'जंगली होने का अर्थ मेरे लिए प्रकृति से जुड़ना है। उनके साथ स्वयं को अभिन्न अंग जान कर चलना।....चाँद न छिटकाए चांदनी, सूरज काली चादर ओढ़े सो जाए, जंगली फूल फिर भी खिलता और महकता रहता है। उन स्थानों पर भी खिलता है, जिसकी कल्पना हम नहीं कर सकते। यह एक सतत् यात्रा होती है। बिल्कुल नदी की तरह। नवीनतम चाल से चलने का साहस। भय का सामना करने का साहस यही जंगलीपन है।'[4] (जंगली फूल, प्राक्कथन)

इस उपन्यास में जो जंगलीपन है, वही हकीकत में आदिवासी दृष्टिकोण है । जीवन, मनुष्यता, स्वभावविकता, मानवीयता अपने नियमों से अनुशासित खुद को और सबको मुक्त देखने वाला दृष्टिकोण इत्यादि गुणों के आधार पर लेखिका ने जंगलीपन के रूप में रेखांकित किया है। ''जंगली फूल उपन्यास ने यह दर्शाया है कि तानी और उनके कबीले वाले जमीन की उर्वरता बनाए रखने के लिए झूम खेती किया करते थे जिसके अंतर्गत फसल की कटाई के पश्चात उस सारे इलाके को आग

के हवाले कर जला दिया जाता था, जिससे उसकी उर्वरता दुबारा वापस आ जाए।''[5](पृ.15)

इस उपन्यास में तीन सबसे सशक्त पात्र हैं- तानी, सियांग और जीत। इन्हीं पात्रों के माध्यम से लेखिका ने निशी समुदाय की सांस्कृतिक विरासत को कलात्मक रूप से सँजोया है। तानी के संदर्भ में जोराम यालाम लिखती हैं कि ''तानी जंगली फूल था। तभी तो वह पिता कहलाया। तभी तो उसने प्रेम को जीया। कोई रुकावट, कोई नियम, कोई डर उसे रोक नहीं पाया।''[6] (पृ.4) इसी तरह आगे के प्रसंगों में तानी को 'पागल और जंगली'[7](पृ.60) शब्दों से नवाजता है। जीत जो इस 'जंगली फूल' उपन्यास की सबसे महत्वपूर्ण नारी पात्र है, जो अंतत: तानी की पत्नी बनती है। वह भी जंगली के संदर्भ में तानी से कहती है कि ''हम प्रेम की संतान हैं । प्रेम ही सांस लेते हैं ।.....बनावटीपन से दूर हम जंगली फूल हैं। सहज स्वाभाविक''[8](पृ.182) जीत का यह वक्तव्य आदिवासी नजरिए को और भी स्पष्ट कर देता है। इस प्रसंग में आदिवासी समुदाय निश्च्छलता से कोसों दूर नजर आते हैं ।

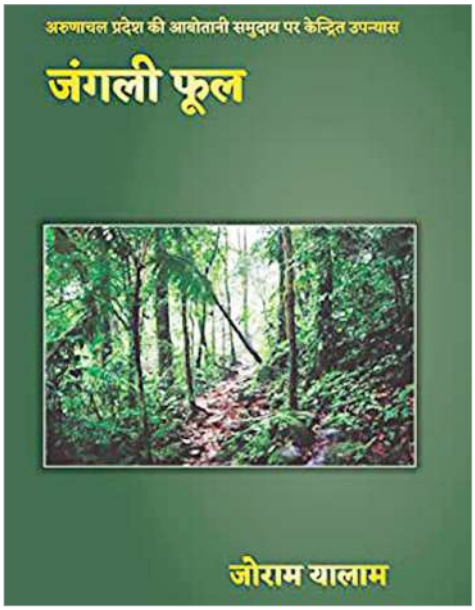

'जंगली फूल' उपन्यास में स्त्री पक्ष पर एक विहंगम दृष्टि डाला जाए तो स्त्रियों की स्थिति बहुत ही दयनीय नजर आती है। इस उपन्यास में आसीन से लेकर रूंगीया, सियांग, याई, जीत, दोलियांग आदि के माध्यम से अलग- अलग रूप, उनका शक्ति-सामर्थ्य, उनकी पीड़ा, उनके संघर्ष आदि को लेखिका ने प्रस्तुत किया है। आदिवासी समुदाय मातृ सत्तात्मक समुदाय है। आदिवासी समुदायों में स्त्री और पुरुष दोनों समान रूप से श्रम करते हैं। दोनों को सामाजिक तौर पर समान अधिकार दिए गए हैं। परिवार और कबीलाई पंचायत के स्तर पर लिए जाने वाले फैसलों में स्त्री स्वर का सम्मान किया जाता है तो वहीं आदिवासी समुदाय की औरतें परिस्थितियों के समक्ष विवश होकर अपना शरीर तक बेचने को मजबूर हो जाती हैं। वस्तुत: देखा जाए तो आदिवासी समुदाय की औरतों का दोहरा शोषण होता है। इनके शोषण व उत्पीड़न की गाथा घर से आरंभ होती है और जमींदारों, ठेकेदारों व पूँजीपतियों के बिस्तर पर खत्म।

जोराम यालाम कृत 'जंगली फूल' पूर्वोत्तर केंद्रित उपन्यास है। इस उपन्यास में सभी स्त्री पात्र सशक्त रूप में दिखाई देते हैं। यूँ तो ऊपरी तौर पर पूर्वोत्तर की आदिवासी महिलाएँ बहुत ही आधुनिक व स्वतंत्र दिखाई देती हैं, पर वह भी तमाम बंदिशों से बंधी हुई हैं। पूर्वोत्तर के आदिवासी समुदाय की स्त्रियाँ भी पुरुषवाद से कमोबेश उसी तरह से पीड़ित हैं, जिस तरह से अन्य राज्य की आदिवासी स्त्रियाँ। पूर्वोत्तर के समाज में परिवार की पूरी जिम्मेदारी स्त्री के ऊपर होती है। इतना ही नहीं, विवाह की असफलता और विवाह-विच्छेद की समस्या भी पूर्वोत्तर राज्य में अधिक दिखाई पड़ती है। विवाह-विच्छेद के उपरांत बच्चों की जिम्मेदारी भी स्त्रियाँ को ही उठानी पड़ती है। पुरुष इन जिम्मेदारियों से ज्यादातर मुक्त रहते हैं और कई बार विवाह-विच्छेद के बाद बच्चों की जिम्मेदारी से दोनों (पति-पत्नी) मुँह मोड़ लेते हैं। ऐसी स्थिति में उनके बच्चे किसी दूसरे के घर में काम करके जीवन-यापन करते हैं या वे बेच दिए जाते हैं। कई बार इस तरह के बच्चे देख-रेख और प्यार के अभाव में एब्नॉर्मल भी हो जाते हैं। विवाह-विच्छेद के पश्चात मासूम बच्चे सबसे अधिक मानसिक रूप से प्रभावित होते हैं।

लेखिका स्वयं एक निशी समुदाय से हैं, जिसकी वजह से निशी समुदाय के अंदर विद्यमान तमाम कुप्रथाओं

व रूढ़ियों आदि का यथार्थ और प्रामाणिक दस्तावेज प्रस्तुत किया है। जोराम के उपन्यास 'जंगली फूल' में बहुपत्नी प्रथा का जिक्र बार-बार हुआ है। इस बहुपत्नी प्रथा के कारण स्त्रियों को कई तरह की प्रताड़ना को सहना पड़ता है। सियांग अपने पति की तीसरी पत्नी है। दूसरी, तीसरी पत्नी होने का दर्द सियांग के माध्यम से इस उपन्यास में व्यक्त किया गया है।

निशी समुदाय की स्त्रियों की बात करें तो इस जनजाति की महिलाएँ अन्य समुदाय से ज्यादा शोषित व पीड़ित दिखाई पड़ती हैं। इस जनजाति के एक पुरुष अनेक विवाह कर सकते हैं और अन्य महिलाओं से भी संबंध बना सकते हैं, पर स्त्रियों के पास यह अधिकार नहीं है। स्त्री चाहे कोई भी जाति, समुदाय से क्यों न हो उसके शोषण व उत्पीड़न की प्रक्रिया कहीं बाहर से नहीं, घर से ही आरंभ होती है और घर में ही आकर अंत होता है। अंतर बस इतना है कि समाज में स्त्री शोषण के रूप अलग-अलग हैं। अरुणाचल प्रदेश की निशी जनजाति में महिलाओं के साथ हर कदम पर दुर्व्यवहार होता है । 'जंगली फूल' उपन्यास के संदर्भ में स्वतंत्र रूप से कहूँ तो यह उपन्यास स्त्री शोषण व उत्पीड़न की कथाओं व प्रसंग से परिपूर्ण दिखाई पड़ता है। संक्षिप्त रूप से कहा जा सकता है कि यह उपन्यास स्त्री विमर्श पर केंद्रित एक महत्वपूर्ण उपन्यास है।

इस उपन्यास की एक और महत्वपूर्ण स्त्री पात्र 'जीत' है, जो तानी की प्रेमिका से पत्नी बनती है। जीत तानी से प्रेम करती है एवं विवाह से पहले ही वह गर्भवती हो जाती है, लेकिन उसे इस बात से कोई फर्क नहीं पड़ता और वह न ही इसे अनैतिक मानती है। उसे तानी पर पूरा भरोसा होता है। उसे अपने प्रेम पर भरोसा होता है। यहाँ वह सामंतवादी-पितृ सत्तात्मक नैतिकता और झूठी मर्यादा को ललकारती हुई प्रतीत होती है, जो इस उपन्यास की सबसे बड़ी खासियत है, जो समसामयिकता का बोध कराती है, जो इनके समाज में बहुत पहले से ही रहा है। वह अपने पिता से कहती है कि 'विवाह तो बस एक औपचारिकता है। वह सही है, लेकिन प्रेम से बड़ा नहीं।'[9] (पृ.181) वह अपने चाचा का उदाहरण देती है, जो अपनी पत्नी को प्रताड़ित करता था तथा उसे आत्महत्या करने पर विवश कर दिया था। जीत कहती है कि क्या इन सब कार्यों से कबीले की इज्जत नहीं जाती? जैसे प्रश्नों का बौछार करती है व रूढ़ियों का खंडन करती हुई कहती है कि 'मैंने सुना है - चाची जब मरी थी, अपने सीने से चाचा जी के कपड़े को लगाकर बच्चों का नाम लेती हुई मरी थी! वह उसी आदमी के प्रेम में मरी! उसी के यादों को लेकर मरी।'[10] (पृ.181)। लेकिन फिर भी चाचा का व्यवहार चाची के प्रति नहीं बदला था, तब यह समाज कहाँ था? इसके लिए चाचा जी को समाज ने क्यों नहीं दंडित किया? निष्कर्षत: कह सकते हैं कि समाज में जो भी नियम, नीति, रीति-रिवाज हैं, वे सब केवल महिलाओं पर ही लागू करने के लिए हैं, पुरुषों के लिए कोई नियम नहीं है, जिससे उसकी पशुता प्रवृत्ति पर नियंत्रण किया जा सके। यह केवल आदिवासी समाज की समस्या मात्र नहीं है। यह समाज के प्रत्येक उच्च वर्ग की दर्दनाक कहानी भी है, जो सफेद कमीज के पीछे छिपा दुखद दस्तावेज है। जहाँ कोई-न-कोई स्त्री आए दिन प्रताड़ित होती है एवं इस दंश से गुजरती है। यह उपन्यास आधुनिक दौर के प्रत्येक समाज की स्त्री जीवन की दर्दनाक कहानी को उजागर करता हुआ प्रतीत होता है।

जीत ने जाने कितने उदाहरण अपने पिता के समक्ष प्रस्तुत किए और हर प्रसंग के माध्यम से केवल इतना ही समझाने की कोशिश की कि पुरुष चाहे कितना ही निक्कमा क्यों न हो जाए, लेकिन पत्नी को उसकी पत्नी ही बनकर रहने के लिए यह समाज क्यों बाध्य करता है? उसे उस रिश्ते में क्यों नहीं जीने देता, जिस रिश्ते में उसे प्रेम मिलता हो। सम्मान मिलता हो। सामाजिक रूढ़ियों-रिवाजों, परंपराओं की बेड़ियों को तोड़ने पर ही स्त्री को मुक्ति मिलेगी और इसे समय रहते तोड़ना भी आवश्यक है। इसी से किसी भी समाज का कल्याण हो सकता है और नैतिक उन्नति भी।

इस उपन्यास के माध्यम से जोराम यालाम ने स्त्री मुक्ति पर विशेष जोर दिया है तथा प्रेम के प्रति एक नवीन दृष्टिकोण को प्रस्तुत भी किया है।

'जंगली फूल' उपन्यास की रूंगिया भी एक सशक्त स्त्री पात्र के रूप में उभरकर सामने आती है। रूंगिया

देखने में बहुत ही कुरूप है, जिसकी वजह से उसे कोई देखना या छूना नहीं चाहता है। वह स्वयं भी भूल चुकी है कि वह भी स्त्री है। रूंगिया के माध्यम से निशी समुदाय में विद्यमान अंधविश्वासों को देखा जा सकता है या यूँ कहा जा सकता है कि शोषण व उत्पीड़न का दूसरा रूप है- जैसे, किसी को डायन घोषित कर देना और उसके बाद उसे समाज से बहिष्कृत कर मानसिक व शारीरिक यातनाएँ देना। रूंगिया की गलती बस इतनी होती है कि वह कुरूप दिखती है, इसीलिए लोगों ने उसे डायन घोषित कर दिया और उसे तरह-तरह से प्रताड़ित करते हैं। समाज उसे कभी ये महसूस ही नहीं होने देता कि वह भी एक स्त्री है। कोई डायन या भूत नहीं। उसके पास भी आंतरिक तौर पर शरीर में एक सुंदर व पवित्र काया है, जो अपने जीवन को बहुत ही खूबसूरती के साथ जीना चाहती है। इस समाज में विद्यमान सुंदरता को स्पर्श करना चाहती है। जीवन केवल एक बार मिलता है और इस छोटे से जीवन में वह भी प्रेम का रंग भरना चाहती है, लेकिन उसकी कुरूपता इन सब पर इतना हावी है कि वह इस परिधि से कोसों दूर जा चुकी है, लेकिन जब तानी उसे सामाजिक प्रताड़नाओं से मुक्ति दिलवाता है तो वह तानी से प्रेम कर बैठती है। तानी का प्रेम रूंगिया को तमाम कुंठाओं से निजात दिलवाता है। तानी के छूने मात्र से ही उसका शरीर प्रफुल्लित हो जाता है, लेकिन वह तानी को शरीर से नहीं, आत्मा से प्रेम करती है। उसे कभी भी किसी बंधन में नहीं बांधती है और न ही उससे भविष्य में कुछ पाने की इच्छा रखती है। प्रेम का पवित्र रूप यहाँ रूंगिया के माध्यम से देखने को मिलता है।

अरुणाचल राज्य के निशी समुदाय में सामंतवाद, स्त्री शोषण एवं पुरुषों के विशेषाधिकार को 'जंगली फूल' उपन्यास के माध्यम से बखूबी देखा जा सकता है। इस उपन्यास में कई जगह पर लेखिका स्वयं बताती है कि 'विवाहित महिला किसी गैर मर्द के साथ पकड़ी गई तो नर्क से भी बदतर सजा उसे मिलती थी। या तो उसे ऐसे आदमी के हाथ बेच देते थे, जो उसको पसंद नहीं होते या फिर कई-कई दिनों तक उसे भारी-भरकम लकड़ी के साथ बांध दिया जाता था और उसकी मर्जी के खिलाफ उसके शरीर के साथ कई तरह से खिलवाड़ किया जाता। मददगार को कई तरह के जुर्माने लगते थे। कभी-कभी मारपीट और खून-खराबे तक की नौबत आ जाती। मर्द कई-कई पत्नियाँ रख सकते हैं। उनके लिए कोई खास सजा तय नहीं है।'[11] (पृ .18)

इस उपन्यास में सभी स्त्री पात्रों (रूंगिया, सियांग, याई, जीत, दोलियांग आदि) के माध्यम से स्त्री के अलग-अलग रूप, उनका शक्ति-सामर्थ्य, शोषण, उत्पीड़न, तमाम यातनाएँ, उनके संघर्ष को लेखिका ने बहुत ही मार्मिक रूप में प्रस्तुत किया है। जोराम के इस रचना के माध्यम से निशी समुदाय की स्त्रियों की दयनीय दशा को स्पष्ट रूप में समझा जा सकता है।

अरुणाचल प्रदेश के आदिवासी समाज में विशेषकर निशी जनजाति समुदाय में स्त्री जन्म लेने से पहले ही बेच दी जाती है। कोई भी व्यक्ति ढेर सारे मिथुन व अन्य बहुमूल्य वस्तु देकर लड़की पैदा होने से पहले ही विवाह के लिए खरीद लेता है। इस खरीदे हुए रिश्ते में हर कदम पर केवल एक स्त्री ही शोषित है। इस अनचाहे रिश्ते से वह मुक्ति चाहती है, पर चाहकर भी स्वेच्छा से मुक्त नहीं हो पाती है। लोक व समाज के भय से वह इस रिश्ते को न चाहते हुए भी ढोती रहती है। इस उपन्यास की स्त्री पात्र सियांग भी इसी स्थिति से गुजरती हुई नजर आती है, जिसका एक दृष्टव्य इस प्रकार है - 'अगर वह खुद पति को छोड़ देती है तो उसको वे सारे मिथुन और सर-सामान वापस करना होगा, जो उन लोगों ने उसके माँ-बाप को दिए थे।'[12](पृ.66)

किसी पुरुष के हाथों बिक चुकी औरत किसी की पत्नी होती हुई भी वह आदर-सम्मान से जीवन भर वंचित रहती है, जिसकी वह अधिकरिणी होती है। वह उसे जीवन पर्यंत नहीं मिल पाता है । औरतें हमेशा पुरुष के लिए एक भोग-विलासिता की वस्तु होती है, इससे अधिक कुछ नहीं। उसका सौंदर्य, उसके गुण भी एक समय के बाद फीके पड़ जाते हैं। स्त्री सिर्फ एक गौशाला में बंधी हुई गाय के समान है, जिसका मालिक जो चाहे वह कर सकता है । उसी तरह इस उपन्यास की नारी पात्र भी दिखाई देती हैं। शौर्य-शक्ति में पुरुष से कई कदम आगे होते हुए भी, वह हर मोड़ पर नि:सहाय ही

नजर आती है। इसका जिक्र इस प्रसंग में देखा जा सकता है कि पिंज की पत्नी युद्ध में जीतकर लाई गई थी, इसलिए वह पति प्रेम की अधिकारी कभी नहीं हुई। इस संदर्भ में लेखिका कहती है कि 'उसके शरीर का काम सिर्फ पति की शारीरिक प्यास को ही बुझाने का होता था।'[13](पृ.17) स्त्रियों का समग्र जीवन केवल यौनिकता पर आकर थम जाता है, चाहे वह इज्जत का मामला हो, चाहे उसके आदर-सम्मान का हो, अपमान का, चाहे अधिकार का हो या पहचान का। सब कुछ केवल यौनिकता के केंद्र में ही पुरुषों की सोच सिमटी हुई दिखाई पड़ता है। यही पित्रात्मक समाज का प्रधान व नकारात्मक मूल्य है, जिससे हर महिला हर पल झेलती है।

दिन-रात मेहनत करने के बाद भी वह केवल दासी थी, उसे केवल भोग मात्र की वस्तु माना गया था। पति की मर्जी के बिना किसी गैर पुरुष से बात तक करने की अनुमति नहीं थी। एक दिन रूंगिया किसी गैर पुरुष से केवल बात करती हुई पकड़ी गई थी, जिसकी वजह से उसे 'पिंज के खानदान वालों ने धर दबोचा। दूसरे दिन उसे उसके खानदान के सारे पुरुषों ने रस्सी से एक पेड़ के साथ बांध दिया। बारी-बारी से लात-घूँसे मारे। तीन दिनों तक भूखी-प्यासी रखी गई और चौथे दिन उसकी योनि में सूखी मिर्ची का पाउडर डाल दिया गया।'[14](पृ.17)

रूंगिया का जीवन नर्क से भी बदतर बना दिया गया। उसकी पीड़ा, दर्द, चिल्लाने की आवाज किसी के भी कान तक नहीं पहुँची। सभी लोग निर्दयतापूर्वक इस घटना को देखते रहे। नारी चाहे किसी भी समाज से क्यों न हो उसे सम्मान तभी मिलता है, जब वह किसी की पत्नी बनकर मौन धारण करके रहे और उसकी हाँ में हाँ मिलाती रहे। अगर इस परिधि से बाहर निकलने की कोशिश करती है तो उसके चरित्र पर तमाम तरह के लाँछन लगाए जाते हैं।

रूंगिया जब इस दर्द में तानी का नाम लेती है तो रोबो कहता है कि 'थूह चरित्रहीन औरत! इस वक्त तो किसी मर्द का नाम न लेती।'[15] (पृ.18) औरत के लिए विपरीत परिस्थितियों में सहयोग के लिए किसी पुरुष का नाम लेना, उसे पुकारना गुनाह होता है।

इस उपन्यास की लेखिका जोराम यालाम ने निशी समुदाय की स्त्रियों का बहुत ही दयनीय व मार्मिक चित्र प्रस्तुत किए हैं। इस प्रसंग को आगे बढ़ाते हुए देखा जा सकता है कि जब तानी से मिलने के अपराध में सियांग का पति सियांग और तानी दोनों को कैद कर लेता है। वह सियांग को धमकाता है- 'मेरी खरीदी हुई औरत तेरी इतनी हिम्मत?'[16] (पृ.69) यहाँ पत्नी का दर्जा केवल एक खरीदी हुए निर्जीव वस्तु से अधिक कुछ नहीं। इन प्रसंगों के मध्यम से लेखिका ने निशी जनजाति समुदाय की स्त्रियों की दयनीय स्थिति का बहुत ही मार्मिक व यथार्थ चित्रण किया है।

सियांग की माँ उसे स्त्री धर्म की शि क्षा देती है कि 'औरत की जिम्मेदारी है परिवार और समाज की सेवा करना। अपने पति के लिए उसकी मनपसंद की औरतें खरीद कर ला देना। ऐसी औरतों ने ही पुरुषों से सदा इज्जत पाई।'[17] (पृ.66) सियांग की सौतन भी उसे समझाती है कि 'मर्द क्या करते हैं और क्या नहीं करते उसके पीछे जाओगी तो खुद कहीं की नहीं रहोगी। पत्नी हो उसकी! अपना सम्मान करना सीखो! ऐसी कई औरतों के साथ वह सोए, उससे क्या फर्क पड़ता है? तुम्हारा तो घर बच रहा है न? समाज इज्जत पत्नी को ही तो करता है।'[18] (पृ.109) इन प्रसंगों के माध्यम से कहा जा सकता है कि पति बाहर जाकर कुछ भी करे, लेकिन घर में आकर वह अपनी पत्नी को पत्नी का आदर-सम्मान दे देता है तो इतना ही पर्याप्त है। सियांग इन बातों से संतुष्ट नहीं हो पाती है। वह अपने पति से उतना ही प्रेम की अपेक्षा करती है, जितना वह करती है। वह सिर्फ उसकी पत्नी बनकर घर के अंदर तक ही पत्नी का दर्जा प्राप्त करना नहीं चाहती है। वह तानी के हृदय पर भी अपना अधिकार चाहती है। इस अकेलेपन में पति प्रेम से वंचित सियांग को एक दोस्त मिलता है, जिसका नाम हर्ष है। एक दिन तानी और सियांग का आमना-सामना होता है, लेकिन तानी व सियांग के रिश्ते को तापिक गलत ढंग से देखता है और वह दोनों को कैद कर लेता है। सियांग नैतिकता की बेड़ियों को तोड़ देती है और अपनी मुक्ति की राह स्वयं तलाश

करती हुई दिखाई देती है।

निष्कर्षत: कह सकते हैं कि लेखिका ने 'जंगली फूल' उपन्यास के माध्यम से निशी जनजातीय समुदाय की नारी जीवन की दशा और दिशा को बहुत ही मार्मिक ढंग से रेखांकित किया है। यह उपन्यास न केवल यहाँ के लोक जीवन को अभिव्यक्त करता है, बल्कि पहाड़ों की दास्ताँ को भी बयाँ करने में सफल दिखाई पड़ता है। इस कृति के माध्यम से पूर्वोत्तर की जनजातियों में प्रचलित कुछ अंधविश्वासों, विवेकहीन परंपराओं और स्त्रियों पर हो रहे अत्याचारों के खिलाफ संघर्ष करते हुए सुख-शांति से जीने वाले एक नए समाज का चित्रण यथार्थ के धरातल पर किया गया है। वीर भारत तलवार का कहना है कि 'लेखिका के प्रगतिशील मानवतावादी दृष्टिकोण ने इस उपन्यास के माध्यम से जनजातीय समाजों में एक नवजागरण लाने का प्रयास किया है।' प्रेम की महिमा का गुणगान करने वाले इस उपन्यास में कई शक्तिशाली स्त्री चरित्र हैं, जिनकी नैसर्गिकता से प्रभावित हुए बिना हम नहीं रह सकते। इसमें कोई संदेह नहीं है कि आदिवासी समुदाय में अन्य समुदाय के अपेक्षाकृत प्रेम, नारी की स्वतंत्रा और भाईचारे की भावना अधिक नैसर्गिक है। लेखिका एक तरफ जहाँ निशी समुदाय में विद्यमान रूढ़ियों और कुप्रथाओं को उजागर करती है तो वहीं दूसरी तरफ इस समुदाय के माध्यम से निशी समुदाय के सकारात्मक गुणों को भी प्रामाणिक रूप से पाठकों के समक्षा उजागर करती है। ❑

संदर्भ-सूची :

1. यालाम जोराम (2019) जंगली फूल, दिल्ली, अनुज्ञा प्रकाशन, पृ.सं. 3
2. वही, पृ . 13-14
3. वही, पृ .12
4. जंगली फूल, प्राक्कथन
5. वहीं , पृ .15
6. वहीं , पृ .4
7. वहीं , पृ .60
8. वहीं , पृ .182
9. वहीं , पृ .181
10. वहीं , पृ .181
11. वहीं , पृ .18
12. वहीं , पृ .66
13. वहीं , पृ .17
14. वहीं , पृ .17
15. वहीं , पृ .18
16. वहीं , पृ .69
17. वहीं , पृ .66
18. वहीं , पृ .109

आलेख

मानवीय राग के रचनाकार : फणीश्वर नाथ 'रेणु'

डॉ. अरुण कुमार पाण्डेय

सह आचार्य, हिंदी विभाग
राजीव गांधी विश्वविद्यालय
(केंद्रीय विश्वविद्यालय)
रोनो हिल्स, दोईमुख
अरुणाचल प्रदेश-791112
मो. 9612540643
ई-मेल : arunpandey1975@gmail.com

रेणु जीवन की गहरी अनुभूतियों के पारखी रचनाकार रहे। उनकी रचनात्मकता की जड़ें लोक-जीवन की मिट्टी से जकड़ी हुई थीं और यही जकड़न उनके हृदय में अपने लोक के प्रति राग उत्पन्न करता रहा। इसलिए वे कभी उखड़ नहीं सके, बल्कि उतरोत्तर लोक से उनका संबंध गहरा होता गया। इसका प्रत्यक्ष दर्शन उनकी रचनाओं में होता है। अपने जैसे अपनी मिट्टी और लोक संस्कृति से प्यार करने वाले मनुष्यों की जीवन गाथा के प्रस्तोता बनकर अपनी कहानियों-उपन्यासों के माध्यम से स्वयं को विलीन करते हैं। उनके साहित्य-रचना में मानवीयता, करुणा मानवीय राग और प्रेम की एक शीतल धारा बहती हुई दिखाई पड़ती है। जनता की मुक्ति के लिए कठोर यंत्रणा में जीने के बावजूद उनमें अंत तक जीवन का रस सूखा नहीं।

रेणु ने उपन्यास कहानी के अतिरिक्त रिपोर्ताज, कविता, नाटक आदि अनेक विधाओं में रचना की है। इन सभी को पढ़ते-चिंतन करते हुए एक बात स्पष्ट होती है कि रेणु ऊपर से जितने सरल दिखाई पड़ते हैं, अंदर से उतने जटिल भी हैं। वे अपनी कथाओं में मानवीय संवदेना के अनेक रंग उत्पन्न करते हैं, जिससे नीरस भावभूमि भी सरसता से संचित हो जाती है। अपनी मानवीय रागात्मकता के कारण ही रेणु अपनी कहानियों में पात्र रूप में ऐसे मनुष्य की तलाश करते हैं, जो साधारण हो, जिसमें अच्छाइयाँ और बुराइयाँ दोनों हों, गुण के साथ अवगुण भी हो। परंतु वह अपनी सांस्कृतिक चेतना से लबालब भरा हो। यही सांस्कृतिक चेतना उसे गरीबी, अभाव महामारी और प्राकृतिक आपदाओं से लड़ने में संजीवनी देती है। इस सांस्कृतिक चेतना के कारण ही रेणु के पात्र जीवन की आखिरी साँस तक लड़ते हैं। मर जाते हैं, पर हार नहीं मानते हैं। स्थानीयता के प्रभाव के कारण रेणु की कहानियों या उपन्यासों को आंचलिक कहा गया। लेकिन वह जितनी आंचलिक हैं, उतनी ही राष्ट्रीय।

रेणु की कहानियों में ग्राम केंद्र में है। प्रेमचंद के बाद ग्रामीण परिवेश का सर्वाधिक चित्रण रेणु की कहानियों में हुआ है। उनकी कहानियाँ भारत के गाँव के उस जीवन का जीवंत चित्रण करती हैं, जो हाशिए पर पड़ा हुआ

है। वह मानवीय राग ही है, जो रेणु को ग्रामीण जीवन से बांधकर रखता है। आजादी के बाद टूटते-बिखरते ग्राम जीवन को रेणु निकट से देखते हैं। वे महसूस करते हैं कि विभिन्न कारणों से गाँव का सामाजिक ताना-बाना टूटा है। अब एक गाँव में एक पंचायत नहीं, बल्कि हर जाति की अपनी पंचायत बन गई है और सबके पंचलाइट भी अलग हो गए हैं। गाँव की सामूहिकता भंग हुई है। लोक गीतों की जगह फिल्मी गाने गाए जा रहे हैं। लोक-कलाकार जो लोगों के हृदय में बसते थे अपने लोक गीतों के कारण, वे दाने-दाने को मोहताज मारे-मारे फिर रहे हैं। मजदूर खेतों में काम न कर शहरों के होटलों में प्लेट माँजना या रिक्शा चलाना अच्छा समझते हैं। रेणु ने टूटन की इस गंभीर समस्या को अपनी कहानियों में उठाया है। रेणु कहानियाँ लिखते नहीं, उसे बुनते हैं। यह बुनावट की ही पहचान है कि उनकी कहानियों को पढ़ते समय शब्द अदृश्य होने लगते हैं और पाठक के मन में वे वर्णित परिवेश सजीव होकर उभरने लगते हैं। रेणु की कहानियाँ अपनी संरचना, स्वभाव, शिल्प और स्वाद में पूर्व प्रचलित हिंदी कहानी परंपरा में अलग और नई पहचान के रूप में उभरती हैं। इस आधार पर रेणु को प्रेमचंद की परंपरा का कहानीकार घोषित किया गया। परंतु सूक्ष्मता से देखने पर इनकी कहानियाँ प्रेमचंद की कहानियों की भावभूमि से एकदम अलग दिखाई पड़ती हैं और यही अलगाव रेणु को कहानी परंपरा के विकास में अलग बनाता है। इनके विशिष्ट योगदान को उनके प्रख्यात समीक्षकों ने स्वीकारा है। प्रसिद्ध आलोचक डॉ. शिव कुमार मिश्र अपने प्रसिद्ध निबंध 'प्रेमचंद की परंपरा और फणीश्वरनाथ रेणु' में लिखते हैं-''रेणु उन कथाकारों में हैं, जिन्होंने आधुनिकतावादी फैशन की परवाह न करते हुए, कथा साहित्य को एक लम्बे अर्से के बाद प्रेमचंद की उस परम्परा से जोड़ा जो बीच में मध्यवर्गीय नागरिक जीवन की केन्द्रीयता के कारण भारत की आत्मा से कट गई थी'' (रेणु का है अन्दाजे बयां और, भारत यायावर, राजकमल प्रकाशन, पृ. 105)। डॉ. नामवर सिंह भी रेणु की कहानियों को प्रेमचंद की कहानियों से अलग मानते हैं। रेणु की कहानी की नई धारा की प्रशंसा करते हुए कहते हैं - ''नि:सन्देह इन विभिन्न अंचलों या जनपदों के लोक-जीवन को लेकर लिखी गई कहानियों में ताजगी है और प्रेमचंद की गाँव पर लिखी कहानियों से एक हद तक नवीनता भी'' (कहानी पत्रिका, अंक 1956, विशेषांक)। रेणु के मानवीय राग से पूर्ण व्यक्तित्व के कायल निर्मल वर्मा भी थे। रेणु जी के निधन पर श्रद्धांजलि के रूप में उन्होंने एक लेख लिखा था- ''वे समकालीन हिंदी साहित्य के संत लेखक थे। यहाँ मैं संत शब्द उनके सबसे मौलिक और प्रथामिक अर्थों में इस्तेमाल कर रहा हूँ- एक ऐसा व्यक्ति जो दुनिया के किसी चीज को त्याज्य और घृणास्पद नहीं मानता- हर जीवित तत्व में पवित्रता और सौंदर्य और चमत्कार खोज लेता है - इसीलिए नहीं कि वह इस धरती पर उगने वाली कुरूपता, अन्याय, अन्धेरे और आंसुओं को नहीं देखता, बल्कि इन सब को समेटने वाली अबाध प्राणवत्ता को पहचानता है, दल-दल से कमल को अलग नहीं करता, दोनों के बीच रहस्मय और अनिवार्य रिश्ते को पहचानता है'' (ब्लग, 4 मार्च 2011)। ऐसे दुर्लभ व्यक्तित्व को अज्ञेय 'धरती का

धन' कह कर संबोधित करते हैं।

रेणु अपनी कहानियों में बिखरते मानवीय मूल्यों और विघटन के कारणों को 'विघटन के क्षण' में तलाश करते हैं और उसकी पीड़ा को शब्द देते हैं। रेणु जब इन परिस्थितियों का चित्रण करते हैं तो उनका राग भाव जाग्रत हो जाता है और मन करुणा से आद्र हो जाता है। 'पहलवान की ढोलक' कहानी से, जो 1944 में लिखी गई थी, ग्राम जीवन की भयावहता का चित्र उपस्थित होता है। लुट्टन सिंह पहलवान है और उसकी ढोलक से निकलने वाली आवाज मृत्यु को ललकारती है। रेणु लिखते हैं – ''मलेरिया और हैजे से पीड़ित गाँव भर्यात शिशु की तरह थर-थर काँप रहा था और पहलवान की ढोलक मृत्यु को ताल ठोककर ललकारती रहती-चट-था-गिन-धा, चट्-धागिन-धा अर्थात आजा भिड़ जा, आजा भिड़ जा और बीच-बीच में वह दूसरा ताल बजाता-चटाक-चट-था, चटाक-चट-धा यानी उठा पटक दे, उठा पटक दे। ग्रामीणों में उसके ढोलक की थाप से रोग और बीमारी से लड़ने का जोश पैदा होता है और वे अपनी मृत्यु से पंजा लड़ाकर उसको पछाड़ने की कोशिश करते हैं और वह पहलवान मर भी गया तो 'चित' नहीं हुआ।''

रेणु की कहानियों का कथ्य और परिवेश बहुस्तरीय है। वे ग्राम जीवन से लेकर शहरी अभिजात वर्ग के संघर्षों, आपदाओं-विपदाओं और उनके दु:ख-दारिद्रय को 'नित्य लीला' के रूप में उजागर करते हैं। रेणु एक ऐसे कहानीकार हैं, जो मनुष्य के राग-विराग, प्रेम और घृणा, दु:ख और करुणा तथा उल्लास और पीड़ा को एक शिल्पी की भाँति उसकी भित्तिका का निर्माण करते हैं। जीवन और प्रकृति के सूक्ष्म-से-सूक्ष्म सूत्रों से निर्मित उनकी कथाएँ संगीत की तरह पाठकों के अंत:करण में गूँजती रहती हैं। 'टेबुल', 'विकट संकट', 'जलवा', 'रेखाएँ', 'वृत्तचक्र', 'अग्निखोर' आदि कहानियों में शहरी परिवेश का यथार्थ चित्रण मिलता है। इसके साथ ही 'रसप्रिया', 'आत्मसाती', 'विघटन के क्षण', 'उच्चाटन' आदि कहानियाँ ग्रामीण जीवन के यथार्थ को एक नए स्वरूप में उद्घाटित करती हैं।

कहानियों के साथ-साथ रेणु के उपन्यासों में भी जन-जीवन के साथ राग गहरा है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण रेणु के इलाके में जाने से मिलता है। रेणु और उनकी रचनाओं से उस इलाके के आम और खास लोग परिचित हैं। लोगों की जुबान पर 'मैला आँचल' और 'परती परिकथा' के पात्र नाचते हैं। शायद यही कारण है कि 'मैला आँचल' के प्रकाशनोपरांत धर्मवीर भारती ने यह उद्घोषणा की थी कि ''गद्य में भी मिथिला की भूमि विद्यापति पैदा कर सकती है, यह मुझे विश्वास हो गया है।'' आधुनिक समय में रेणु की छवि मैथिल क्षेत्र में विद्यापति की तरह ही है। लोक का वही जनकवि या रचनाकार हो सकता है, जिसका रागात्मक भाव आम जन के हर्ष-विषाद से जुड़ा हो। 'मैला आँचल' का उद्देश्य भी तो यही है 'मिट्टी और मनुष्य से प्रेम'। और ''आँसू से भीगी हुई धरती पर प्यार के पौधे लहलहाएँगे। मैं साधना करूँगा, ग्रामवासिनी भारत माता के मैले आँचल तले। कम-से-कम एक ही गाँव के कुछ प्राणियों के मुरझाए ओठों पर मुस्कुराहट लौटा सकूँ, उनके हृदय में आशा और विश्वास को प्रतिष्ठित कर सकूँ।''

'भारत माता का आँचल' मैला हो गया है, जैसे भाव के बीच रेणु आजादी के बाद के भारत के उस परिदृश्य को उभारते हैं, जहाँ लोग अशिक्षा, अज्ञान, सांप्रदायिकता, जातिवाद, रूढ़िवादिता के गहरे अंधकार में भूखे, बदहाल और विपन्न होकर जी रहे हैं। आदमी जानवर से भी बदतर जीवन जीने के लिए अभिशप्त है। 'मैला आँचल' के पात्र डॉक्टर को सभी रोगों की जड़ में भूख और गरीबी दिखाई देती है। इसलिए वह कहता है कि सबसे पहला काम है जानवर को आदमी बनाना। रेणु ने 'मैला आँचल' उपन्यास के द्वारा अपनी रागात्मकता का परिचय देते हुए भारत माता का चित्र उकेरा है। इसमें गाँवों की जिन समस्याओं की चर्चा रेणु करते हैं, यह समस्या संपूर्ण भारत की है। इसलिए वे 'मैला आँचल' में इस वाक्य का बार-बार प्रयोग करते हैं कि – ''भारत माता जार-जार रो रही है। ऐसा क्यों है?'' यह उसी तरह का प्रश्न है जिसे भारतेन्दु हरश्चिंद्र ने 'भारत दुर्दशा' में उठाया था। कुछ स्वार्थी तत्वों के सत्ता पर काबिज हो जाने के कारण गुलामी से मुक्ति के बाद सुनहरे दिनों के जो सपने थे वह चकनाचूर हो गए हैं। रेणु आजादी की इस निर्थकता को रेखांकित करते हैं। इसलिए रेणु का

'मैला आँचल' जितना आंचलिक है, उतना ही राष्ट्रीय भी है। 'मैला आँचल' के अतिरिक्त 'परती परिकथा', 'पल्टूबाबू रोड', 'दीर्घतपा' जैसे उपन्यासों की भावभूमि की एक जैसी है। रेणु की इस रचनधर्मिता से प्रभावित होकर कथाकार निर्मल वर्मा कहते हैं- ''रेणु का महत्व उनकी आंचलिकता में नहीं है, आंचलिकता के अतिक्रमण से निहित है। बिहार के एक छोटे भूखण्ड की हथेली पर उन्होंने समूचे उत्तरी भारत के किसान के नियति रेखा को उजागर किया था। यह रेखा किसान की किस्मत और इतिहास के हस्तक्षेप की बीच गूँथी हुई थी।'' (रेणु का है अंदाजे-बयां और, भारत यायावर, पृ. 119)

रेणु ग्राम्य जीवन में रचे-बसे रचनाकार हैं। ग्राम्य जीवन की एक विशेषता संवेदनशीलता भी है। रेणु का मानवीय राग ही उन्हें अत्यंत संवेदनशील बनाता है। उनकी राग से भरी संवेदनशीलता हमें उनके संस्मरणों में भी दिखाई पड़ती है ।

उनकी 'स्टिल लाइफ' संस्मरण में गहरी संवेदना उजागर होती है। इसमें एक ऐसे रोगी की कहानी है, जो लावारिस है। दरअसल, बात तब की है, जब रेणु अस्वस्थ थे और अस्पताल में भर्ती थे । तभी रोज की भाँति एक नया मरीज वार्ड में आया। नए मरीज का भर्ती होना या पुराने मरीज की अस्पताल से छुट्टी होना कोई नई या आश्चर्य की बात नहीं। परंतु इस मरीज के साथ कुछ अलग था। वह जब भर्ती हुआ तो बिल्कुल सन्नाटे में, न कोई चीख-पुकार न ही हल्ला-गुल्ला। बस अस्पताल के कर्मचारी आए और उसे बेड पर लिटा दिया। इसी मरीज ने रेणु के अंतर्मन को हिला कर रख दिया । इसको याद करते हुए रेणु अपने संस्मरण में लिखते हैं, ''बेड नंबर-4 एक्सपायर्ड! मर गया 4 नम्बर! वह सिर्फ मर गया। किसी का सुहाग नहीं लुटा और न किसी की आँखों का तारा ही टूटा। उसके मरने के बाद किसी प्रकार के सामूहिक रूदन का भी कोई आयोजन नहीं हुआ। वह सिर्फ मर गया। सिर्फ मरने में अंतर है।'' रेणु को उस 4 नम्बर बेड वाले पेशेंट का मरना जैसे मानवता का दम तोड़ने जैसा लगा। एक व्यक्ति मर गया। उसके लिए कोई रोने वाला नहीं। किसी को कोई परवाह नहीं। उसके मरने-जीने का किसी पर कोई असर नहीं। एक इंसान मर के जाने पर किसी के चेहरे पर सिकन तक नहीं। यह क्या है? हमारी मृतप्राय: संवेदना का ही प्रतीक है। या कि हमारे स्वार्थी स्वभाव का। वह लावारिस था, मर गया। पर वह जो सिर्फ मर गया, वह रेणु की स्मृतियों में सदैव जीवित रहा। अब वह लावारिस बेड नम्बर 4 उनके संस्मरणों में सदा-सर्वदा के लिए जीवित है। यह रेणु के मानवीय राग का उद्दात पक्ष है । रेणु के ऐसे बहुत सारे संस्मरण हैं, जिसमें उनका संवेदनशील मन खुलकर झाँकता है। 'ईश्वर रे, मेरे बेचारे!', 'एक स्मृति : एक पत्र', 'टूटते बिखरते सपनों की दास्तान', 'एक रात', 'अपनी कथा', 'पुरानी याद' आदि कुछ ऐसे ही संस्मरण हैं, जिनमें रेणु का सहज, सरल और संवेदनशील व्यक्तित्व स्पष्ट झलकता है।

निष्कर्षत: हम कह सकते हैं कि रेणु का कथा साहित्य हो, उपन्यास हो या संस्मरण- सभी में उनकी राग युक्त मानवीय संवेदना मुखरता से अभिव्यक्त हुई है। उनकी सभी रचनाओं में मानवीय संवेदना का सहज प्रवाह, परंपराबोध, संस्कृतिबोध, अस्मिताबोध, अतीत के प्रति गौरव का भाव और विचारधाराओं के अंधानुकरण का प्रतिकार दिखाई पड़ता है। ❑

तुलनात्मक साहित्य की प्रविधि-प्रक्रिया : एक आलोचनात्मक दृष्टि

राजीब कुमार बेज

शोधार्थी, हिंदी विभाग
पांडिच्चेरी केंद्रीय विश्वविद्यालय
पुदुच्चेरी – 605014
मो. 8456065033
ई-मेल : rajeebkumarbej@gmail.com

तुलनात्मक साहित्य शैक्षिक अनुशासन के रूप में पहले अंग्रेजी, फ्रांसीसी अथवा जर्मन में स्वतंत्र अध्ययन के रूप में आया, तत्पश्चात् आधुनिक भारतीय भाषाओं में इसका आगमन हुआ है। इस तरह हम देखते हैं मैथ्यू अर्नाल्ड ने सन् 1848 में अपने एक पत्र में सबसे पहले 'कम्पेरेटिव लिटरेचर' पद का प्रयोग किया था।

'सन् 1598 में फ्रांसीसी मेयर्स ने A comparative discourse of English poets with the Greek, Latin and Italian poet's पुस्तक में इस शब्द का प्रयोग किया था।' [1]

विद्वानों में इस शब्द को लेकर काफी विवाद रहा है, क्योंकि तुलनात्मक की वैविध्यता के विषय में विद्वानों में एकमत नहीं हैं। कहा जा सकता है कि तुलनात्मक साहित्य अपनी कोई निर्दिष्ट प्रविधि का निर्माण नहीं कर पाया है। प्रविधि के अभाव में किसी विद्यानुशासन का स्वतंत्र रूप से प्रतिष्ठित होना असंभव नहीं तो संभव होना भी सरल नहीं है। इस संदर्भ में फ्रांकाय जोस्ट ने तो बड़े ही स्पष्ट शब्दों में कहा है कि–

'विश्व के पुस्तकालयों में एक भी पुस्तक या निबंध' प्रायोगिक तुलनात्मक साहित्य विज्ञान' निबंधों एवं पुस्तकों में किए गये दावों को प्रभावित किया जा सके।'[2]

इस तरह रेने वेलेक, हाल्डेन, टिगहोग, कारें आदि विद्वान भी ऐसा विचार रखते हैं, क्योंकि माना जाता है किसी भी सिद्धान्तों का अंतिम होना संभव नहीं, हर वस्तु परिवर्तनशील है। सभी अपूर्णताओं से अभाव से संपूर्णता की ओर बढ़ने की चेष्टा करते हैं। यह तो देखा भी गया है कि अनेक विद्वानों तुलनात्मक साहित्य की कोई पद्धति या प्रविधि होने से इनकार करते हैं,

लेकिन साथ ही इसकी अनेक पद्धतियों या प्रविधियों का निर्माण भी किया गया है। अब ये कहां तक तार्किक है या इनमें और कितना संशोधन किया जाना है, ये अलग बात है, क्योंकि मूक फिल्मों का विकास ही बोलती रंगीन फिल्में टी.वी. आदि का परिणाम हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि Landline के बाद ही cellphone प्रचलन में आया।

भूमिका :

तुलनात्मक साहित्य नाम से ही पता चलता है कि इसमें साहित्य की साहित्य से तुलना की जाती है। अब वह साहित्य भिन्न भारतीय भाषाओं का हो, अंतरराष्ट्रीय भाषाओं का हो या चाहे आदिकाल से भक्ति काल का भक्ति काल से रीतिकाल का तथा रीतिकाल से आधुनिक काल का आदि। वर्तमान समय में तुलनात्मक साहित्य की भूमिका की महत्वता को दृष्टि में रखते हुए। तुलनात्मक साहित्य की प्रविधि प्रक्रिया क्या-क्या है और किस तरह हमें यह तुलनात्मक साहित्य अध्ययन को अध्ययन करने में सहायक होता है। इसके बारे में हम इस आलेख में विश्लेषण निम्नलिखित रूप में किए हैं।

बीज शब्द : साहित्य, आलोचना, तुलनात्मक, अध्ययन दृष्टि, परम्परा, प्रविधि-प्रक्रिया।

प्रविधि-प्रक्रिया :

तुलनात्मक साहित्य में जिन मुख्य प्रविधि-प्रक्रियाओं का विकास हुआ है वे निम्नलिखित हैं -

सादृश्य, संबंधात्मक प्रविधि :

अंतर्राष्ट्रीय या विश्व का संदर्भ लेकर जहां दो कृतियों का साहित्य गत शैली, संरचना, मूड या विचार का सादृश्य संबंधात्मक अध्ययन होता है। सभी पक्षों की अपेक्षा किसी एक पक्ष को लेकर इस प्रकार का अध्ययन संभव हो सकता है। इस प्रविधि में साम्यमूलक एवं वैषम्यमूलक दोनों ही प्रकारों के अध्ययन को अंजाम दिया जा सकता है। तुलनीय कृतियां परस्पर प्रभाव से मुक्त होती हैं, तथा उनमें कोई कार्य-कारण संबंध नहीं होता है। उदाहरणस्वरूप-जेम्स जे.वाई. लिउ ने 'एलिजाबेथ' तथा यांन' (1955) पुस्तक एलिजाबेथीय युग के नाटकों के साथ सुदूर-पूर्व के नाटकों का सादृश्य मूलक, विवेचन करते हुए,यह स्पष्ट किया है कि -

'सादृश्य, संबंधात्मक प्रविधि दोनों में ही 'मायावाद' का विरोध है तथा जीवन का यह यथार्थ भी नहीं जो रंगमंच से 'चैथी दीवार' को हटाकर दिखाया जाता है। इसलिए इस प्रकार के अध्ययन का विशेष महत्व है, क्योंकि यहां प्रभाव-सूत्र के विवेचन के स्थान पर समानांतरता के आश्रय से नाटकों में अंतर्निहित उसकी संभाव्य शक्ति तथा उस प्रक्रिया को उद्घाटित किया गया है, जिसके द्वारा जीवन एक कलारूप में परिवर्तित हो जाता है।' [3]

इस प्रकार इस पद्धति प्रविधि प्रक्रिया को समझने के लिए सादृश्यमूलक अध्ययन का एक और रूप हैं, जहां एक जैसी ऐतिहासिक तथा सामाजिक पृष्ठभूमि के आश्रय से दो लेखकों या कृतियों का विवेचन किया जाता है।

झिरमुशंकी ने 'फ्रांसीसी chansons de geste (हंसी के गीत) तथा रूसी लोक गाथाओं के नायकों का सादृश्यमूलक अध्ययन किया है। यहां किसी प्रकार के कार्य कारण संबंध के बिना ही सामाजिक संरचना की सादृश्यता के आधार पर 'ऐतिहासिक प्रारूपिक सादृश्यता' प्रकट हुई है।'[4] अर्थात् इससे साहित्य अध्ययन का स्वरूप संकुचित नहीं होता है, बल्कि इस तरह के अध्ययन से साहित्य के बारे में एक विस्तृत दृष्टिकोण बन पाता है। और साहित्य अध्ययन से संबंधित नए-नए प्रश्न उभरते हैं, जिनके अध्ययन से तुलनात्मक साहित्य की स्वकीयता का परिचय मिलता है।

अत: इस प्रविधि के विरोध में कहा गया है कि इसमें व्यक्तिवादिता तथा प्रतिवादिता को महत्व दिया जाता है और यह कोई पद्धति ही नहीं हो सकती, लेकिन यदि यह इसका विकासशील रूप है, तो संभवत: यह पद्धति विकसित हो सकती है।

अध्ययन की परंपरा प्रविधि :

परम्परा अध्ययन में भी कृतियों का सादृश्यमूलक अध्ययन होता है, कृतियां एक वर्ग का भाग होती है। जो समान ऐतिहासिक, कालानुक्रमिक तथा रूपात्मक बंधनों से बंधी होती है। इनमें मौजूद राष्ट्रीय चेतना का अध्ययन होता है। इस संदर्भ में प्रावर का कहना है कि–

'इस प्रकार का अध्ययन तभी लाभदायक हो सकता है, जब अध्ययन के क्षेत्र को सीमित करके किसी एक ऐतिहासिक काल अथवा ऐतिहासिक दृष्टि से उभरते हुए किसी एक काव्य रूप दो साहित्यों के संदर्भ में किया जाता है।'[5] अर्थात् भारतीय साहित्य की भारतीयता एवं अमरीकी ब्लैक पोयट्री की मूल चेतना के अध्ययन के स्थान पर दूसरे महायुद्ध (ऐतिहासिक काल) के समय रचित भारतीय एवं पोयट्री का अध्ययन निश्चित ही अधिक तात्पर्य पूर्ण हो सकता है। अथवा जैसे विश्व साहित्य के संदर्भ में रवींद्रनाथ ठाकुर या सालबेलो जैसे बहुज्ञता युक्त लेखकों का अध्ययन करते हुए, विभिन्न सामाजिक तथा सांस्कृतिक परंपराओं का प्रभाव–विवेचन भी महत्वपूर्ण हो सकता है। लेकिन अध्ययन से पता चलता है, रेने वेलेक ने इस प्रकार के अध्ययन का विरोध करते हुए कहा है कि –

'इस तरह की प्रविधि प्रक्रिया से गुजरने के लिए इसकी कीमत साहित्यिक पांडित्य को सामाजिक, मनोवैज्ञानिक और साहित्यिक इतिहास में विलीन करके अदा करनी पड़ती है।'[6]

इस कथन का आशय यह है कि तुलनात्मक साहित्य की दृष्टि से इस प्रकार के अध्ययन से साहित्य में वर्णित नाना राष्ट्रीय परम्पराओं के बारे में सही अथवा गलत धारणाओं का पता लग पाता है।

प्रभाव प्रविधि :

तुलनात्मक अध्ययन की प्रभाव प्रविधि विवेचन में दो धाराएं होती हैं। एक शक्तिशाली व्यक्तित्व का प्रभाव दूसरा व्यक्तित्व का प्रभाव। शक्तिशाली व्यक्तित्व का प्रभाव ⁼इसमें प्रभावशाली व्यक्तित्व अपने प्रवाह में प्राप्त लेखक को बहा ले जाता है।

व्यक्तित्व का प्रभाव : इसमें प्रभाव प्रभावित की प्रतिभा को चार चांद लगा देता है। इस बात को उदाहरण के माध्यम से समझ सकते हैं, अर्थात् इस बात को दूसरे शब्द में इस तरह समझ सकते हैं कि एक ही प्रभाव के दो रुप हैं। उदाहरणस्वरूप –

'शक्तिशाली व्यक्तित्व का प्रभाव–सलीम जावेद की फिल्म शोले जो 'रामगोपाल वर्मा की आग को बहा ले गया। व्यक्तित्व का प्रभाव– सलीम जावेद की फिल्म शोले का प्रभाव संतोषी की फिल्म 'China Gate' जिसने उनकी प्रतिभा को चार चांद लगा दिए।'[7] परन्तु अधिकतर आलोचकों के लिए प्रथम प्रभाव ही ठीक बैठता है, लेकिन लेखक अप्रधान होने के कारण यह नकारने योग्य है। इसका विरोध भी हुआ है। इसमें कार्य नहीं कारण मुख्य होता है।

इस तरह से देख सकते हैं कि एक साहित्यिक परम्परा का प्रभाव कवियों की सामूहिक साझेदारी है। दरअसल प्रत्यक्ष वादियों की कार्य–कारणवादिता के आश्रय से लिए गए प्रभाव सूत्रों के अध्ययन में 'कारण' मुख्य हो जाता है। यह निश्चित है कि कोई भी कृति दूसरी कृति के 'कारण' निर्मित नहीं होती। इसलिए क्लांद गुइएं प्रभाव सूत्रों के अध्ययन को मनोवैज्ञानिक प्रतिभास कहा है। इसको स्पष्ट करने के लिए गुइएं ने प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष की बात उठाते हुए, कहते हैं कि–

'पेट्रार्कीय सानेट पेट्रार्क के अप्रत्यक्ष प्रभाव को अमान्य ठहराया नहीं जा सकता। एक साहित्यिक परम्परा में जीते हुए, 'कवियों के द्वारा ग्रहण किया गया यह प्रभाव' सामूहिक साझेदारी प्रभाव है।'[8]

इस तरह और एक उदाहरण देख सकते हैं, जिसमें फ्लेचर का कहना है कि–

'यदि हम प्रापक को ऋणी प्रमाणित कर सकें तो उसमें उत्सर्जक थोड़ा ही परिचय मिलता है। मगर प्रापक

की मनोशरीरी दृष्टि के बारे में हमें विस्तार से पता लग सकता है। और उसकी सृजन प्रक्रिया से भी हम परिचित हो पाते हैं।'[9]

इसे सरल और स्पष्ट रूप से समझने के लिए यदि हम एक दफा यह पता लगा सकें कि निराला की कविता में ऐसे बहुत सारे तत्व हैं, जो रविंद्र की कविता से मेल खाते हैं तो हम यह प्रमाणित कर सकेंगे की निराला बंगाली रचनाकारों की काव्य स्थितियों एवं चरित्रों को स्वीकारते थे तथा उन्हें उद्धृत करते थे, निराला पर रवीन्द्र के माध्यम से उपनिषद का प्रभाव पड़ा था। इस तरह रवीन्द्रनाथ ठाकुर को उत्सर्जक तथा निराला को प्राप्त। प्रमाणित करने पर भी इस प्रकार का अध्ययन रवींद्रनाथ की अपेक्षा निराला की काव्य प्रतिभा को ज्यादा उजागर करना होगा, क्योंकि यह पद्धति यांत्रिक ढंग से मात्र तथ्यों का हवाला नहीं देगी, मगर गहराई से रवीन्द्र की पट भूमिका पर निराला की सृजन प्रक्रिया की आलोचना भी करेगी। अत: जहां लेखकों की काव्य क्रिया के विश्लेषण के साथ-साथ युग की विशिष्ट शैली, जिसे बार्थ ने एक्रीचर (Ecriture) कहा है, उस पर ध्यान दिया जाता है।

अध्ययन की स्वीकृति तथा संचालन प्रविधि :

प्रभावसूत्रों के अध्ययन के साथ-साथ तुलनात्मक पद्धति के अंतर्गत स्वीकृति का भी प्रसार हुआ है। जिसे हम देख सकते हैं, उलरिच वाइस्टाइन के अनुसार -

'प्रभावसूत्रों का अध्ययन मूलत: परिपूर्ण दो साहित्यिक कृतियों को लेकर किया जाता है, मगर स्वीकृत अध्ययन का क्षेत्र काफी विस्तृत है, जहां कृतियों के पारस्परिक संबंधों से लेकर उनके आस-पास की परिस्थितियों, लेखक, पाठक, समीक्षक प्रकाशक तथा प्रतिवेशी परिवेश सब कुछ अध्ययन का विषय बन जाता है।'[10]

स्वीकृति अध्ययन साहित्यिक समाजशास्त्र अथवा मनोविज्ञान की दिशा में ही अग्रसर होता है। वाइस्टाइन और एक उदाहरण लेते हुए, काफ्का के संदर्भ में कहते हैं कि-

'उनकी चिट्ठियां अथवा डायरियां पढ़ने से यह पता चलता है कि काफ्का का गुस्तव फ्लोबर के साथ व्यक्तिगत संबंधों के कारण एक मनोवैज्ञानिक निकटता थी।'[11]

स्वीकृति अध्ययन में प्रभाव सूत्रों की खोज के स्थान पर इस दिशा में अध्ययन का प्रसार होता है। जैसे हम पढ़ते हैं कि जापानी हाइकु का विश्लेषण स्वीकृति अध्ययन के अंतर्गत ही किया जा सकता है। द्विवेदी युग की खास मनोदृष्टि को लेकर भी अध्ययन किया जा सकता है। द्विवेदी नैतिकता केवल रीतिकाल की प्रतिक्रिया नहीं थी, वरन् संपूर्ण विक्टोरियन युग के साहित्य की स्वीकृति भी थी, जिसके फलस्वरूप जीवन के प्रति हमारी पारम्परिक स्वरूप धारणा पलट गई। 'फ्रेडरिक गडोल्फ ने जर्मनी के द्वारा शेक्सपियर की स्वीकृति को लेकर विस्तार से विवेचन किया है। किस तरह जर्मन के लेखक लेसिंग,गोयते, शीलर आदि की विचारधाराओं को शेक्सपियर ने प्रभावित किया,गडोल्फ ने अपने अध्ययन में कहा है कि जर्मनी में शेक्सपियर की स्वीकृति के लिए उत्तरवादी अनुवादकों और मध्यस्थों अर्थात अंग्रेजी हास्य अभिनेतागण, जिन्होंने 17 वीं शती में शेक्सपियर की कॉमेडियों के जर्मन रूपांतरणों में अभिनय करके शेक्सपियर की स्वीकृति में विशेष योगदान दिया। आजकल मध्यस्थों अध्ययन भी महत्वपूर्ण हो रहा है। आज विश्वविद्यालय के विद्वान या अनुवादक मध्यस्थ का काम कर रहे हैं। विदेश में आर्थर वेले ने यूरोपीय तथा सुदूर पूर्व साहित्य का अध्ययन द्वारा समाजशास्त्रीय एवं सांस्कृतिक, ऐतिहासिक दृष्टि से भी लाभान्वित होते हैं। इस संदर्भ में रेमंड विलियम्स कहते हैं-

'संचारण संस्थाओं एवं रुपों के सदृश है, जिसके माध्यम से विचार, सूचना तथा अभिवृत्तियां स्थानांतरित अथवा स्वीकृति होती है।'[12]

उपरोक्त वर्णन विवेचन से स्पष्ट होता है कि स्वीकृति एवं संचारण अध्ययन से समाजशास्त्री तथा सांस्कृतिक ऐतिहासिकों को भी लाभ मिलता है।

अध्ययन की सौभाग्य प्रविधि :

स्वीकृति या संचारण प्रविधि अध्ययन के अंतर्गत किसी एक लेखक या कृति का सौभाग्य विश्लेषण भी किया जाता है। किसी एक विदेशी लेखक या कृति की दूसरे देश में किन्हीं कारणों से, नोबेल पुरस्कार मिलने से या आकस्मिक मृत्यु होने से, सत्ता का विरोध करने से ख्याति के बढ़ जाने पर वह कैसे दूसरे लेखकों या साहित्यिक परिवेश को प्रभावित करता है, इसका अध्ययन करना ही सौभाग्य प्रविधि अध्ययन कहा जाता है। उदाहरणस्वरूप–

'जैसे किन्हीं कारणों से तसलीमा नसरीन का सौभाग्य विश्लेषण हो रहा है। चाहे तसलीमा नसरीन के लिए वो अभाग्य ही क्यों न हो। इस प्रकार के अध्ययन में दोनों लेखकों को पहले उनकी जमीन पर तथा उनकी राष्ट्रीय परम्परा में परखना होता है। बाद में प्रभाव सूत्रों की खोज करते हुए, प्राप्त को दूसरी जमीन तथा परम्परा की सहायता से विश्लेषण करना होता है।'[13]

तुलनात्मक अध्ययन में कल्पनाहीनता या यांत्रिकता की संभावना को देखते हुए, इस पद्धति की काफी आलोचना हुई है, मगर सही दिशा में प्रसारित इस प्रकार के अध्ययन की संभाव्य शक्ति को नकारना संभव नहीं है। डिमत्री शाइजवेस्की ने इसे 'जननिक पद्धति' कह कर इसके प्रति आलोचकों के उदासीन होने की बात की है और हेनरी पेयर ने प्रभाव सूत्रों की अपेक्षा सादृशय संबंधों के अध्ययन को ज्यादा प्रभावशाली ठहराया है। इस तरह से देखा जा सकता है तुलनात्मकतावादी आलोचक के लिए इस पद्धति का प्रयोग करते हुए, प्रभाव और मौलिकता के इस सूक्ष्म संतुलन से परिचित होना बहुत जरूरी है।

संबंधात्मक द्वंदात्मक प्रविधि :

यह प्रविधि अंतरराष्ट्रीय द्वंदात्मक साहित्य को मानवीय ज्ञान के दूसरे क्षेत्रों के साथ भी जोड़ती है। जैसे दर्शन, इतिहास, मनोविज्ञान, राजनीति शास्त्र, धर्म, समाज शास्त्र तथा ललित कलाएं आदि। हम देख सकते हैं, हिंदू पौराणिक तथा संस्कृत साहित्य का प्रभाव रवि वर्मा की चित्रकला में स्पष्ट दिखाई पड़ता है, और इस आधार पर इसका अध्ययन किया जा सकता है। अध्ययन की इस कार्य-पद्धति को 'संबधात्मक द्वंदात्मक पद्धति' एक क्षेत्र माना जाता है। जो अंतर्राष्ट्रीय संदर्भवाद पर आधारित है। रेमाके के अनुसार –

'यह पद्धति समस्तरीय क्षमता की जगह आंशिक रूप से अनुलंबीय सक्षमता को स्वीकारती है। इस प्रकार के अध्ययन के प्रसार के लिए निश्चय ही कार्य पद्धति में परिमार्जिन आवश्यक हो जाता है।'[14] अत: इस तरह साहित्य और ज्ञान के दूसरे क्षेत्रों के आपसी संबंधों, पारस्परिक प्रभाव तथा समांतरीय अध्ययन का प्रसार हो पाता है, इस आधार पर इसका विश्लेषण भी किया जा सकता है।

अध्ययन की आलोचना की प्रविधि :

अंतर्राष्ट्रीय संदर्भवाद के साथ तुलनात्मक आलोचना के आश्रय से तुलनात्मक पद्धति का निर्माण होता है। तुलनात्मकतावादी आलोचक सुव्यवस्थित ढंग से तुलनात्मक आलोचना के अंग रुप में तुलना के तकनीकी का प्रसार करता है और व्यक्तिगत लेखकों के द्वारा किए गए प्रयासों का अध्ययन करता है। इसके अतिरिक्त तुलनात्मक आलोचना एक विस्तृत साहित्यिक अध्ययन से जुड़ी होती है और मानवीय ज्ञान के दूसरे क्षेत्रों को अपने में समेट कर एक वृहत परिप्रेक्ष्य को प्रकट करती है। उदाहरणस्वरूप –

'जाइटगाइस्ट' इस बात के लिए उत्तरदायी है कि जिन लोगों ने कभी फ्रायड की पुस्तक 'द इंटरप्रिटेशन आफ ड्रीम्स' नहीं पढ़ी वे भी युग चेतना के कारण फ्रायडीय प्रतीकों से परिचित हो सके। यह आलोचना दूसरी और काव्यशास्त्रीय सौंदर्यपरक सिद्धांत की और भी ले जाती है।' [15] *हम देख सकते हैं, आलोचनात्मक विश्लेषण के लिए तुलनात्मकवादी आलोचक इस कोशिश में हैं कि वे अपनी ही तुलनात्मक आलोचना का प्रसार तथा 'अधिभाषा' का निर्धारण करें। आलोचना की प्रविधि*

को स्पष्ट रूप से समझने के लिए और एक उदाहरण ले सकते हैं, जो इस प्रकार है–

'संस्कृत तथा पाश्चात्य काव्यशास्त्र के तुलनात्मक पर्यवेक्षण के द्वारा ही एक लाभदायक सर्वभारतीय आलोचनात्मक सिद्धांत भाषा का निर्माण किया जा सकता है। जिससे ऐतिहासिक समाजशास्त्रीय तथा काव्यशास्त्रीय सौंदर्यपरक दृष्टि की सहायता से तुलनात्मक भारतीय साहित्य के नाना आयामों का मूल्यांकन संभव है।'[16]

निष्कर्ष :

वस्तुत: हम देख सकते हैं, मूल्यांकन के लिए तुलनात्मक पद्धति का अंतर्विद्यावर्ती होना जरूरी है। इस पद्धति विज्ञान का यह विश्वास है कि औचित्य ही सर्वमान्य सिद्धांत है। अत: कहा जा सकता है, तुलनात्मक साहित्य की इस पद्धति ने सांस्कृतिक वरिष्ठता को चुनौती दी है और साहित्य को एक सार्विक धरातल पर ला खड़ा किया है। इसी दृष्टि से आलोचना प्रविधि की सार्थकता स्पष्ट है, भले ही विभिन्न कार्यपद्धतियों के अपखंडनों की सहायता से इसका निर्माण हुआ हो। ❑

संदर्भ सूची :

1. सं. क्रांति मुदिराज – तुलनात्मक साहित्य की चुनैतियाँ– पृ–28
2. वही
3. डॉ. इंद्रनाथ चौधुरी तुलनात्मक साहित्य की भूमिका, पृ.–47–48)
4. वही, पृ–48
5. वही, पृ–49
6. वही
7. (सं. क्रांति मुदिराज – तुलनात्मक साहित्य की चुनैतियाँ– पृ–31)
8. डॉ. इंद्रनाथ चौधुरी तुलनात्मक साहित्य की भूमिका, पृ–51
9. वही
10. वही, पृ–52
11. वही
12. वही, पृ–53
13. स. क्रांति मुदिराज – तुलनात्मक साहित्य की चुनैतियाँ– पृ–32–33
14. डॉ. इंद्रनाथ चौधुरी तुलनात्मक साहित्य की भूमिका, पृ–55
15. वही, पृ–56
16. डॉ. इंद्रनाथ चौधुरी तुलनात्मक साहित्य की भूमिका, पृ–57

हिंदी-मणिपुरी कहानियों में चित्रित मूल्य संबंधी समस्याएँ

नोङथोमबम गुणचंद्र सिंह

अनुसंधानकर्ता, हिंदी विभाग
मणिपुर विश्वविद्यालय, काँचीपुर
मो. 7630834730
ई-मेल : gunachandra.nongthombam30@gmail.com

परिवर्तनशील संसार क्षण-क्षण बदल रहा है। इसी परिवर्तन के कारण कल तक जो मान्यताएँ और रीति-रिवाज समाज में प्रचलित थे, वे भी आज बदल रहे हैं और समय के साथ हमारे जीवन मूल्य भी बदल रहे हैं, जिसके कारण व्यक्ति की दृष्टि व विचारधारा भी बदल रही है। इस तरह के बदलाव व्यक्ति के व्यवहार में स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है। ऐसा लगता है जैसे हमारा जीवन मूल्य आधुनिकीकरण, शहरीकरण, निजीकरण आदि प्रगति के लक्षण कहे जाने वाले तत्वों के कारण पीछे छूट रहा है। आज मानव में मानवता के गुण जैसे- त्याग, बलिदान, क्षमा, सहानुभूति तथा प्रेम जैसे मूल्य प्राय: विलुप्त होते जा रहे हैं। परिणामत: मनुष्य स्वार्थी, असवरवादी, आत्मकेंद्रित होता जा रहा है। समय के साथ परिवर्तन का आना स्वाभाविक है, पर इसके परिणामस्वरूप मूल्यों में जो बदलाव आ रहे हैं, वे किस दिशा में आ रहे हैं और उसका व्यक्ति और समाज पर किस तरह प्रभाव पड़ रहा है, इसकी जाँच-पड़ताल हिंदी-मणिपुरी कथाकारों ने की है।

'मूल्य' मानव जीवन के साथ जुड़ा शब्द है। चिंतन-मनन के हर क्षेत्र में इस शब्द का प्रयोग प्राय: किया जाता है। इस शब्द की व्याख्या करते हुए वुड्स लिखते हैं- ''मूल्य दैनिक जीवन में व्यवहार को नियंत्रित करने का सामान्य सिद्धांत है। मूल्य केवल मानव व्यवहार की दिशा निर्धारण ही नहीं करते, बल्कि अपने आप में आदर्श और उद्देश्य भी होते हैं।'' इसी तरह अर्बन का कथन है- ''ऐसी कोई भी वस्तु मूल्य हो सकती है, जो जीवन को आगे बढ़ाती है और सुरक्षित करती है।'' इन कथनों से यह स्पष्ट होता है कि मनुष्य के जीवन में भौतिक विकास के साथ जीवन मूल्यों का विकास भी बहुत आवश्यक है। बदलते परिवेश के साथ जीवन मूल्य भी परिवर्तित होते हैं। पुराने मूल्यों को छोड़कर परिस्थिति के अनुरूप हमेशा नित नवीन मूल्यों को स्वीकारा जाता है। आज के संदर्भ में देखा जाए तो मूल्यों का निर्माण स्वयं आदमी अपने लिए करता है।

पर कुछ ऐसे मूल्य भी हैं, जो चिरंतन शाश्वत रहे हैं।

व्यक्तिगत स्तर पर भी मूल्य का बहुत महत्व है। व्यक्ति अपने स्तर पर अपने व्यक्तित्व या आचरण में समाज के मान्य मूल्यों को घुला-मिला देने का प्रयास करता है, जिससे कि उसका व्यवहार भी ठीक उसी तरह का हो जाए, जिस तरह का व्यवहार अन्य व्यक्तियों का है। डॉ. राधा कमल मुखर्जी के शब्दों में, ''मूल्य समाज द्वारा प्राप्त इच्छाएँ हैं, जिनका अंतरीकरण सीखने या समाजीकरण की प्रक्रिया के माध्यम से होता है, जो कि अतीतिक अधिमान्यताएँ, मान तथा अभिभावनाएँ बन जाती हैं।''

साहित्य में अभिव्यक्त भिन्न मानवीय मूल्यों की चर्चा से यह स्पष्ट होता है कि व्यक्ति की मौलिक चिंतन शक्ति का विकास होता रहता है। वह परंपरा से चले आ रहे और जड़ हो चुके उन मूल्यों को छोड़ता जाता है और उन मूल्यों के स्थान पर नवीन मूल्यों को स्वीकार करता है या नवीन मूल्यों का निर्माण करता है। चिंतन शक्ति का प्रयोग कर व्यक्ति ने अंधानुकरण करने के स्थान पर मूल्यों और मान्यताओं को तर्क के आधार पर खंडित करना शुरू किया। जो मान्यताएँ समय अनुकूल नहीं लगीं, उन्हें छोड़ते गए और उनके स्थान पर नए मूल्य स्थापित होते रहे। यह सिलसिला निरंतर चलता रहा। इसका संदर्भ रचनात्मक साहित्य की विभिन्न विधाओं की तरह कहानी विधा में भी परिलक्षित होता हैं।

कहानी विधा विभिन्न विधाओं में से एक सशक्त विधा मानी जाती है। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगा कि कहानी विधा से हमें जीवन पथ पर सफर करने हेतु आदर्श और मूल्य भी मिलते हैं। कहानी सामाजिक वास्तविकताओं को अभिव्यक्त कर समाज को आईना भी दिखाती है। नई कहानी और मूल्यों के संदर्भ में डॉ. इंद्रनाथ मदान ने लिखा है- ''पहले कहानी अधिकांशत: कल्पना पर आधारित होती थी। अब यथार्थ को लेकर चलती है। अत: पहले की कहानी पुरानी है और आज की कहानी नयी है। नयी कहानी में तलाश पात्रों की नहीं यथार्थ की है, पात्रों के माध्यम से यथार्थ की अभिव्यक्ति की। पहले कहानी कला मूल्यों को लेकर लिखी जाती थी, अब जीवन मूल्यों को लेकर।'' कथा सम्राट प्रेमचंद की पीढ़ी का जो वर्चस्व था, उसका मुख्य कारण कहानियों में व्यक्त यथार्थता के माध्यम से जीवन की तमाम विसंगतियों, कुरूपताओं, भ्रष्टाचार, आर्थिक, विषमताओं, बनते-बिगड़ते रिश्तों और नए विमर्शों को माना जा सकता है। समय के साथ तमाम सामाजिक मूल्यों में जिस तरह गिरावट आई, उन्हें कथाकारों ने अलग अंदाज में दिखाने का प्रयास किया है।

20वीं सदी के अंतिम दो दशक तक पहुँचते-पहुँचते तेजी से बदल रही परिस्थितियों ने हिंदी और मणिपुरी समाज को गहराई से प्रभावित किया है। यह हिंदी-मणिपुरी की चयनित कुछ कहानियों के माध्यम से जानने का प्रयास करेंगे।

बदलते मूल्यों के संदर्भ में हिंदी कथाकारों की अभिव्यक्ति में समाज के प्रति उत्तरदायित्व और रचना सृजन की कुशलताएँ परिलक्षित होती हैं। संजय खाती की कहानी 'पोस्टर' में कहानी का नायक विरप्पा गरीबी के कारण दो विपक्षी नेताओं के चुनावी पोस्टर चिपकाने का काम करता है। उन दो विपक्षी नेताओं को वह कभी यह पता नहीं चलने देता था कि उनके चुनाव पोस्टर को लगाने वाला और फाड़ने वाला कोई अज्ञात व्यक्ति नहीं, वह स्वयं है। उसके लिए मालिकों के प्रति ईमानदारी कोई खास मायने नहीं रखती है। उसके लिए ईमानदारी जैसे मूल्यों से ज्यादा पैसा ही महत्वपूर्ण है, क्योंकि भूख के आगे हर आदर्श बेमानी है। कहानी के एक प्रसंग में- ''यार, कुछ भाई-बन्द है, जो हमारा काम आसान करेले है...अभी कल यहाँ सिरपत बाबू का पोस्टर लगाएला और आज किसी ने अक्खा पोस्टर लगा सकता है?... पहले-पहल दीवारें खाली मिलती थीं, पर अब दीवारें पोस्टरों से पट गई है। एक कागज की चिंदी चिपकाने भर को जगह नहीं बची है। इधर कुछ रातों से वे देख रहे हैं, पोस्टर अब उखड़े हुए मिल रहे हैं। पहले तो सिरपत बाबू की मूँछों से भरे पोस्टर उखाड़े गए, पर अब- तो मोरे की घूरती आँखें भी नोची जाने लगी है। जहाँ ऐसा नहीं है, वहाँ वे यह मान लेते हैं कि दीवार एकदम साफ है और काम करते चले जाते हैं। उन्हें इस

बात से जरा भी लेना-देना नहीं हैं कि कौन दिख रहा है और कौन छिप रहा है। उनके लिए हर पोस्टर की कीमत पाँच पैसे है। उनका सोचना भी तो वाजिब है कि आखिर रोज-रोज पोस्टर लगाने का तो और क्या करने का ?''

उसकी प्रवृत्ति परिस्थिति अनुसार बदल रही है। परिवार के लिए वह एकमात्र कमाने वाला व्यक्ति था। उसे वह काम करना था, जिससे उसका और उसके परिवार का पेट पलता रहे, जिसके पेट में भूख की आग लगी हो वह व्यकित पहले उस आग के निवारण के लिए ही सोचेगा न कि कोई आदर्श की बात सोचेगा। विरप्पा के लिए सबसे बड़ी समस्या गरीबी की है, भूख की है। आर्थिक तंगी के कारण व्यक्ति को क्या कुछ नहीं करना पड़ता है। हालात व्यक्ति को अपने आदर्श, आत्मसम्मान, स्वाभिमान और अस्मिता के साथ समझौता करने के लिए मजबूर करते हैं।

उपर्युक्त तथ्यों संबंधित उदाहरण मणिपुरी कथाकार एलाडबम दिनमणी की कहानी 'ऑटोरिक्शा ड्राइवर' में देखा जा सकता है। इसमें दिखाया गया है कि जूली एक संपन्न परिवार में पैदा होने के बावजूद एम.ए. की पढ़ाई छोड़कर ऑटोरिक्शा चलाने के लिए मजबूर होती है, क्योंकि पिता की मौत के बाद तीनों भाइयों ने कोई आर्थिक सहयोग नहीं दिया। जूली ने अमीर भाइयों के आगे कभी हाथ नहीं फैलाया। उसके सारे भाई अपनी पत्नी और बच्चों को ही परिवार समझने लगे थे। भाइयों के पास पैसों कोई कमी नहीं थी फिर भी उन्होंने विधवा माँ और छोटी बहन के साथ गैरों जैसा बर्ताव किया। सुनयना ने ऑटो चलाकर अपनी कमाई से एम.ए. की पढ़ाई जारी रखी। संपन्न परिवार में पैदा होने के कारण उसका बचपन तमाम सुख-सुविधाओं के बीच बीता था। मगर बदलते हालात ने जो चुनौती दी, सुनयना ने उसे हमेशा स्वीकार किया। सुनयना के इस संघर्ष व प्रयास से रोजगार से संबंधित कार्यों में लिंगवाद और जो भी परंपरागत मान्यताएँ रही हैं, उसे बदलने का प्रयास ही नहीं किया है, बल्कि एक मिसाल के रूप में भी समाज के समक्ष उपस्थित हुआ है।

इस तरह बदलते मूल्यों से संबंधित तथ्य व संदर्भ कहानी की नायिका जूली द्वारा भाइयों के बारे में दिए गए कथन से स्पष्ट होता है। जैसे- '' पिताजी के देहांत के बाद लगभग तीन महीने पैसे भेजने के बाद पैसे भेजना बंद कर दिया। माँ किसी से उधार लेकर मुझे घर लौटने के लिए पैसे भेज पाई। वे केवल अपने परिवार के लिए सोचने लगे। माँ के साथ झगड़े के बाद, परिवारों का आना-जाना पहले से ही बंद था। जब माँ दो महीने अस्पताल में रहीं तो कोई नहीं आया, मेरी माँ ने भी उनके घर आना बंद कर दिया।''

इसके साथ जूली की ऑटोरिक्शा में बैठा ग्राहक द्वारा अपनी साली के साथ शारीरिक संबंध बनाना और गर्भपात करवाते समय उसकी मृत्यु होना, फिर परिवार के मान-सम्मान की बदनामी के डर से मामले को दबाना पवित्र रिश्तों आदि के बदलते मूल्यों को दर्शाता है। इस तथ्य का उचित संदर्भ है- ''जूली को कहानी सुनाते समय मैंने जिसे अपनी बहन कहा, वह असल में मेरी पत्नी की छोटी बहन यानी मेरी साली थी...। साथ रहते-रहते जरूरत से ज्यादा नजदीकियाँ बढ़ जाने के कारण गर्भवती हो गई। समाज के डर से गर्भपात करवाते समय मृत्यु हो गई थी।''

विपरीत परिस्थिति को चुनौती मानते हुए हर व्यक्ति संघर्ष के रास्ते को अपनाएगा, ऐसा नहीं कहा जा सकता। व्यक्ति कमजोरियों का पुतला है और अक्सर संघर्ष की बजाय सरल रास्ते की ओर आकर्षित होता है। यह सृंजय की कहानी 'लक्ष्मी का पाँव' में देखने को मिलता है। नायक जीवराज अपनी कमाई से परिवार वालों के अरमानों को पूरा करने में असमर्थ है। नौकरी लगने के शुरुआती दिनों में वह पूरे जोश और उत्साह के साथ कार्यालय और यूनियन के कामों में बढ़-चढ़कर हिस्सा लेता था। मगर चंद सालों के बाद उसके सारे जोश और उत्साह ठंडा पड़ने लगे। कुछ सालों के बाद उसकी स्थिति भी उन पुराने कर्मचारियों जैसी होने लगी थी। घरेलू समस्या, बढ़ती उम्र और आर्थिक विषमताओं के बोझ से वह सामाजिक व यूनियन के कार्यों में निरंतर भाग लेने में असमर्थ होने लगा। दफ्तर, घर और बाजार के कुछेक लोग ही उनकी दुनिया होते गए। आर्थिक तंगी के कारण उसके चरित्र में ऐसा बदलाव आया कि

एक दिन बाजार में राह चलते उसे एक पर्स पड़ा दिखाई दिया। पर्स में मिले रुपयों से उसने खरीददारी की। रुपयों के साथ मिले लॉटरी टिकट के परिणाम जानने के लिए लॉटरी एजेंसी के पास तक पहुँच गया।

जरूरतें मुँह बाए खड़ी थीं, ऐसे में उससे एक सभ्य, शिक्षित और दायित्वपूर्ण नागरिक होने की अपेक्षा कहाँ तक की जा सकती थी। चाहता तो उस अनजान पर्स के बारे में ईमानदारीपूर्वक पता लगा सकता था या पुलिस की मदद ले सकता था, मगर उसने इस तरह का कोई सराहनीय कार्य नहीं किया। इससे यह स्पष्ट होता है कि कई बार परिस्थिति व्यक्ति के जीवन और उसके चरित्र को बदल देते हैं। यह उसके जीवन में आए मूल्यों में परिवर्तन को दर्शाता है।

सोरोकखाईबम देवेन्द्र की कहानी 'इरोम्बा का स्वाद' में भी परिस्थिति के अनुसार मूल्यों में कैसे और किस तरह बदलाव आता है, इसका खुलासा किया गया है। कहानी में दिखाते हैं कि निलो संयुक्त परिवार से अलग होने के बाद मासिक वेतन से गृहस्थी चलाने में असमर्थ हो जाता है। वह उधार ले-लेकर जुआ भी खेलता है और परिवार की जिम्मेदारियाँ नहीं निभाता है। गरीबी और उधारी के कारण पत्नी इतनी विवशता का अनुभव करती है कि व्यापारी के पहल को इनकार नहीं कर पाती और दोनों के बीच शारीरिक संबंध बन जाता है। उधारी न चुकाने का फायदा व्यापारी ने उठाया, वहीं पत्नी सुभाषिनी ने कोई विरोध या शिकायत न कर मौन समर्पण व समझौता ही किया। इससे सुभाषिनी के चरित्र पर तो प्रश्न चिह्न लगता ही है, साथ ही पति-पत्नी के बीच विश्वास की डोर को भी कमजोर होते देखा जा सकता सकता है। पति में कोई आत्मसम्मान या स्वाभिमान नजर नहीं आता, वहीं पत्नी भी परिवार की जरूरतों को पूरा करने हेतु समझौतावादी बन जाती है।

स्त्री-पुरुष संबंधों का एक अलग स्वरूप रवींद्र कालिया की कहानी 'नया कुर्ता' में दिखाया गया है। आबिद अपनी पत्नी और बेटे साहिल को बिना तलाक दिए और बिना बताए छोड़कर चला जाता है और किसी अज्ञात शहर में दूसरी औरत के साथ जीवन व्यतीत करने लगता है। गरीबी के कारण अकेली माँ साहिल को अच्छी शिक्षा दिलाने में असमर्थ है। इससे बेटे को पढ़ा-लिखाकर एक अच्छा आदमी बनाने का ख्वाब अधूरा ही रह जाता है। यहाँ आबिद का पति और पिता होने की तमाम जिम्मेदारियों को अनदेखा करके दूसरे शहर में भाग जाना यह सिद्ध करता है कि उसके लिए इन रिश्तों का कोई महत्व नहीं है। न ही उसे समाज, समुदाय, धर्म-संस्कृति की कोई परवाह है। यह आधुनिक जीवन की एक बड़ी समस्या है, जिसे लेखक ने बखूबी चित्रित किया है। साथ ही साहिल की लाचारी को देखकर जिस तरह मोहल्ले वालों ने हमदर्दी दिखाई थी, वह तब परिवर्तित हो जाती है, जब इस्त्री की दुकान से कुछ मुनाफा कमाने लगा था। चंद आमदनी से साहिल को उधार व सहयोग देने वाले लोग जलने लगे थे। लालच व ईर्ष्या के कारण मानवीय मूल्य भी प्रभावित होकर परिस्थिति अनुसार परिवर्तित होने लगता है। इस कहानी में नसरीन आपा उसे उधारी में कोयला देती थी। मगर उससे भी साहिल की तरक्की देखी नहीं गई। उधारी बंद करने के उद्देश्य से अच्छाई के विपरीत वह साहिल को चेतावनी देते हुए कहती है -''साहिल के बच्चे, तूने पहले के पैसे अभी तक लौटाये नहीं और अब और उधार माँगने चला आया है? लगता है, तू अपना धंधा तो चौपट कर ही देगा, मुझे भी कहीं का न छोड़ेगा! जा जा, कहीं दूसरी जगह जाकर हाथ फैला! तूने शाम तक मेरे पैसे न लौटाये तो तेरा लोहा उठा लाऊँगी, जिस पर तुझे बहुत गुमान है!'' साहिल ने सोचा था कि नसरीन आपा उसकी मलमल कुर्ता को देखकर मुबारकबाद देंगी। मगर आपा के बदलते तेवर देखकर वह पूरी तरह टूटकर निराश हो जाता है।

जैदी साहब की मानसिकता भी ठीक ऐसी ही थी। ''क्यों भाई इस्त्री की औलाद, आपकी दुकान का किराया माशाअल्लाह आपकी इस्त्री चुकायेगी या आपका यह मलमल का कुरता।'' '' जैदी साहब की नजर साहिल के नये कुरते पर पड़ी तो वह आपे से बाहर हो गये, यह कुरता सिलवाने के पहले नहीं सोचा था कि जैदी साहब का किराया बाकी है? मालूम हुआ है, मेरी गैरमौजूदगी में तुम बच्चों को खूब परेशान करते हो...। आज तुम्हें

किराया देना ही होगा, वरना मैं। तुम्हारा कुरता उतरवा लूँगा।'' अगर नसरीन आपा और जैदी साहब अपनी ओर से दिए जाने वाला सहयोग जारी रखते तो साहिल ज्यादा हताश नहीं होता और मोहल्ले छोड़कर चला नहीं जाता। साहिल की छोटी-सी तरक्की को देखकर वे खुदगर्ज होकर अच्छाई और भलाई भूल गए।

इसी तरह का चित्रण मणिपुरी लेखक कुंजमोहन सिंह की कहानी 'एक टुकड़ा कागज के लिए' में किया गया है। रोड मोहरी की भर्ती के समय नायक की नौकरी पक्की करवाने हेतु अक्सर उसकी प्रेमिका भर्ती बोर्ड में शामिल इंजीनीयर से मिलने जाया करती थी। मगर कुछ दिन बाद नायक को पता चलता है कि उसकी प्रेमिका अनिता और इंजीनियर की शादी होने वाली है। विश्वास की जिस नींव पर नायक और अनिता की प्रेम कहानी बुनी गई थी, उसका त्रासद अंत हुआ। नायक अपनी प्रेमिका पर जरूरत से ज्यादा विश्वास करता था। इसी विश्वास का फायदा अनीता ने उठाया है। मौका मिलते ही उसने अपने प्यार की बलि चढ़ाकर अपने सुरक्षित भविष्य को चुना। उसके चरित्र में अवसरवादी मानसिकता दिखाई देती है, जिसकी कोई निश्चित मूल्य, आत्मसम्मान व स्वाभिमान नहीं होता। हमारे समाज में कई आदर्श प्रेम कथाएँ प्रचलित हैं, जिसमें एक-दूसरे के प्रति विश्वास, त्याग-बलिदान, समर्पण, आपसी समझदारी, आदर-सम्मान की भावनाएँ देखने को मिलती हैं, पर यहाँ नायिका के चरित्र में वह गायब है। यहाँ वह अपने रिश्ते का नाप-तौल करती दिखाई देती है।

इन बदलते मूल्यों के संदर्भ में कहानी में एक संदर्भ प्रयुक्त किया गया है कि ''अनिता, हम दोनों ने जो सोचा है वह शायद अधूरा रह जाएगा।'' अनिता की दोनों हाथों को कसकर पकड़ता है। इस तरह समय बीत गया। अनिता से जब भी मिलते तो आशा की किरण जगाती है। बीच में कुछ दिन अनिता से मिलना बंद हुआ। मेम्मा से पूछा तो कहा कि उसे मिले हुए बहुत दिन हो गए हैं। उसके बाद एक दिन मेम्मा ने समाचार लाया कि- 'अनिता, हमारे पड़ोसी इंजीनियर के साथ भाग गई...।'

व्यक्तिगत स्तर पर जब मूल्यों को ताक पर रखकर लोग व्यवहार करने लगते हैं, तब समाज का समस्याओं से घिरना स्वाभाविक हो जाता है। राकेस वत्स की कहानी 'एक बुद्ध और' में शहर में तेजी से फल-फूल रही सामाजिक बुराइयों के प्रति मास्टर कपिलदेव की प्रतिक्रिया लेखक की गंभीर चिंता को व्यक्त करती है। कहानी में मास्टर लोगों की लापरवाही, गैर-जिम्मेदाराना रवैया व अजीबोगरीब मानसिकता से परेशान है। उसे लगता है, बदलते परिवेशानुसार तमाम सुविधाओं के बीच जीकर अपने आप को सबसे सभ्य और विकसित सिद्ध करने वाला यह वर्ग ही वास्तव में समाज को खोखला बनाने वाली समाजिक बुराइयों का समर्थक व संरक्षक है। इसी संदर्भ में कहानी के नायक के मन में आने वाले विचार को देखा जा सकता है - ''दर्द महसूसने के साथ ही उसके दिमाग में यह सवाल पता नहीं कहाँ से उभर आया कि जब दूसरे लोग गंदगी को गंदगी नहीं समझते तो वही कौन सा स्वर्ग से उतरा हुआ देवता है कि उसे ही गंदगी देखकर रोटी अच्छी नहीं लगती।'' मास्टर कपिलदेव सामाजिक व व्यावहारिक मूल्यों को अच्छी तरह समझता था। इसलिए कई यातनाएँ देने के बाद भी वह हार नहीं मानता और लगातार संघर्ष करता रहता है। आत्मसम्मान और स्वाभिमान की भावनाएँ उसे बुराइयों से संघर्ष करने के लिए आत्मविश्वास और बल प्रदान करती थीं। कथाकार ने महात्मा बुद्ध की तरह एक समाज सुधारक की अपेक्षा को कहानी के शीर्षक के माध्यम से अभिव्यक्त किया है।

व्यक्ति के जीवन को सही दिशा की ओर बढ़ाकर देश और समाज को प्रगति के पथ पर अग्रसर करने का माध्यम शिक्षा को माना जाता है। आज समय के साथ चारों ओर जो परिवर्तन हो रहे हैं, उसके प्रभाव से शिक्षा भी अछूता नहीं है। थोइबी देवी की कहानी 'अध्यापक नहीं हैं तो अध्यापक न बनें' में शिक्षा के क्षेत्र में हो रहे नैतिक पतन को कहानी का विषय बनाया गया है। इसमें अध्यापक तोमबा और छात्रों के अभिभावकों की विचित्र मानसिकता और बदलते मूल्यों को उद्घाटित किया गया है। तोमबा फर्जी प्रमाण पत्रों के आधार पर अध्यापक बनकर छात्रों व उनके

अभिभावकों को ठगने का काम करता है। कमजोर विद्यार्थियों से बड़ी रकम वसूलकर नकल करवाता है। वह शिक्षण व्यवसाय से जुड़कर भी छात्रों को गलत दिशा दिखाकर गुमराह करते हुए उनके भविष्य को खराब करता है। पारंपरिक शिक्षा-दीक्षा में आस्था, ईमानदारी जैसी विशेषता तोमबा के चरित्र में देखने को नहीं मिलती है। आत्मसम्मान, ईमानदारी, स्वाभिमान से रहित व्यक्तियों की विचारधारा और मूल्य परिस्थिति अनुसार बदलते रहते हैं। वह लोगों की भावना और अरमानों के साथ खिलवाड़ करने से जरा-सा भी नहीं हिचकिचाते। अध्यापक के नाम पर पैसे के लिए काम करने वाले और कामयाबी के लिए विद्यार्थी जीवन में शॉर्ट कट का रास्ता प्रयुक्त करने वालों की मानसिकता व बदलते मूल्यों को उजागर करने हेतु कहानी का यह प्रसंग उल्लेखनीय है - ''सारे अध्यापक परीक्षा की सुरक्षा या उत्तरपुस्तिका जांचने अवश्य ही जाएगा...।'' ''उससे परीक्षा हॉल में नकल करने पर नहीं पकड़ेंगे, पकड़ना तो दूर, जो उत्तर नहीं जानते वह भी बताते हैं। अगर जाँच दौरान कम नंबर मिलने पर भी अंक डाल देता है, अगर फेल भी हुआ तो पास करवाएँगे।'' इस तरह शिक्षा के क्षेत्र में गुरुकुल परंपरा के विपरीत बदलते मूल्य परिलक्षित होते हैं।

इसी तरह जवाहर सिंह की कहानी 'जाल' में कथाकार द्वारा यह दिखाने का प्रयास किया गया है कि सरकारी कर्मचारी किस तरह लोगों को लूटते हैं। अधिकांश कर्मचारियों के बेईमान होने कारण ही सरकारी योजनाओं के लिए आने वाले पैसे और सुविधाएँ जनता तक पहुँचने नहीं देते हैं। वे अपने फायदे को ही देखकर काम करते हैं, लोगों के जीवन से उन्हें कोई लेना-देना नहीं है। कहानी में प्रखंड विकास कार्यालय में आने वाला नया बी.डी.ओ. को कार्यालय के मुख्य कर्मचारी बड़े बाबू जैसे लोग अपने द्वारा किए जाने वाले भ्रष्टाचार के कामों में किसी भी तरह शामिल करना चाहते हैं। उनके लिए समाज और देश के विकास से कोई लेना-देना नहीं है। ये धन प्राप्ति के लिए किसी भी हद तक जा सकते हैं।

बदलते नैतिक मूल्यों अभाव या पतन से देश व समाज समयानुसार विकसित नहीं हो पाता है, क्योंकि देश व समाज को लूटने व बरबाद करने वाले और कोई नहीं, स्वयं भारतीय होता है। इस तथ्य का छोटा-सा उदाहरण ऑफिस के बड़े बाबू द्वारा नए बी.डी.ओ. को कहा गया कथन से स्पष्ट हो जाता है- ''आप भी हुजूर खूब आदमी हैं.... कार्यालय में सात-सात चपरासी हैं और आप पैसे देकर प्राइवेट नौकर रखेंगे ? आखिर वे सब किस काम आएँगे ? वे सरकारी नौकर हैं और आप सरकार हैं, इसलिए आपका काम सरकारी काम हुआ कि नहीं। इसमें प्राइवेट और सरकारी क्या। एक-एक महीने की ड्यूटी लगा देंगे। पहले वाले साहब के यहाँ तो पाँच-पाँच की ड्यूटी रोज लगती थी। कोई सब्जी लाता, कोई धोता, कोई उनके बच्चों को खिलाता, कोई रसोई बनाता तो कोई झाड़ू-बुहारी करता।''

एंलांबम दिनमणी की दूसरी कहानी 'एक हॉटल एक मीटिंग और तीन गिलास' में समाज सुधारक नेता, कार्यकर्ता, संगठन व संस्थानों के बदले तेवर और मूल्यों का पर्दाफाश करती है। जन सभाओं में नेता नशाबंदी की घोषणा करते हुए नशाखोर और उनके व्यापारियों के खिलाफ सख्त कार्रवाई करने का वादा करते हैं। मगर हर सभा के बाद उनके कार्यकर्ता छोटे-छोटे दारूखानों में बैठकर देसी दारू पीते हुए नशाबंदी, भ्रष्टाचार और मंत्रियों के बारे में व्यंग्यात्मक ढंग से विचार-विमर्श करते हैं। इन भ्रष्ट अवसरवादी चरित्र वालों का कोई धर्म, ईमान, वफादारी नहीं होता है। वे अपनी निजी लाभ के लिए अपने चरित्र बदलते रहते हैं। नेताओं के कार्य केवल वोट बैंक लिए ही होते हैं। और अन्य कार्यकर्ताओं का उद्देश्य केवल अर्थ और यश प्राप्ति के साथ ऐय्याशी करना ही होता है।

आज व्यक्ति अपने में इतना सिमट गया है कि रिश्तों के मायने बदल गए हैं। अगर ऐसा नहीं होता तो चिल्ड्रेन होम या ओल्ड एज होम बनाने की नौबत नहीं आती। माता-पिता अपना सर्वस्व देकर अपनी संतान को हरसंभव सुख देने का प्रयास करते हैं, पर वहीं जब संतानों पर माता-पिता की जिम्मेदारी आती है तो जरूरी नहीं कि संतान भी उतना ही ख्याल माता-पिता का रखे

जैसा कि माता-पिता ने उनका रखा।

समाज की विकट होती इस समस्या को मंजुल भगत ने अपनी कहानी 'मरने की जगह' में दिखाया है। तेजी से बदल रहे परिवेशानुसार परिवर्तित जीवन मूल्यों को प्रस्तुत करने का प्रयास कथाकार ने किया है। परिवार में बुजुर्ग माता-पिता या अभिभावकों के प्रति शिक्षित युवा पीढ़ियों के बदलते तेवर य मूल्य का पर्दाफाश किया है। जिस पिता ने बेटों को पढ़ा-लिखाकर सफल आदमी बनाया, उन्होंने पिता के प्रति जो जिम्मेवारियाँ हैं, उसे ईमानदारीपूर्वक नहीं निभाया है। बेटा और बहू को बीमार पिता-ससुर से ज्यादा चिंता अपनी यूरोप यात्रा की है। इसके संदर्भ में कमजोर वृद्ध पिता के बारे में बड़े बेटे का यह वक्तव्य देखा जा सकता है- ''जैसे मैंने ही ठेका ले रखा है, सब बातों का, बेटा भी बड़बड़ा दिया।... इसके साथ बड़े बेटे की पत्नी का यह कथन भी देखा जा सकता है-''निकल जाते तो निकल ही जाते। अब तो फँस गये, तेरहवीं तक।'' पिता के प्रति उसका यह असभ्य व्यवहार देखने को मिलता है, यह भारतीय परंपरा के विपरीत है। इस तरह का व्यवहार बदलते समय की देन है। आज के बदलते परिवेश में अपने को छोड़कर दूसरों का कोई मूल्य नहीं समझा जाता है।

कहानी में इस तरह परिवर्तित मूल्यों से संबंधित दूसरे संदर्भ भी देखे जा सकते हैं। लेखक की पत्नी अपने नालायक बेटे के संदर्भ में कहती है- ''मैंने इस बेटे को जन्म दिया तो यह केवल डेढ़ किलो का था। रात-रात जागकर इसके पोटड़े बदले, गर्म पानी की बोतल को कंबंल में लपेट-लपेटकर, इसे सेंका-सुलाया और अब यह खा-खाकर हाथी हो गया है तो, मुझ पर चिंघाड़ना सीख गया है।''

बेटे के संदर्भ में दूसरा कथन है- ''जब तू मेरी कोख में था तो, चिड़िया के चैंचले जितना था। यूं ही धरती में से फूटकर उगता नहीं चला गया था। रात-रात जागकर सेंका-पोसा था, मुझे तभी न, आज बांस-बराबर हो गया है। मेरा बेटा, ऐसी बातों का एहसान नहीं माना करता। उसके अहम् को चोट लगती है कि वह पैदा होने और बढ़ने के लिए हम जैसों पर आश्रित था।''

खाइदेम प्रामेदीनी की कहानी 'तोल्लपीशक ताऊजी के पेनसन लीला' में 73 वर्ष के तोलपिशक ताऊजी के नौकरी से सेवानिवृत्त हुए 15 साल हो गए हैं। मगर इतने सालों के बाद भी उसे पेंशन नहीं मिली। जो लोग सेवानिवृत्त होने से पहले उसके आगे-पीछे घूमने वाले जो सहयोगी कर्मचारी थे, उन्होंने ईमानदारी से काम करना छोड़ दिया। वे यह भूल जाते हैं कि कभी वे तोलपिशक ताऊजी के मार्गदर्शन में ईमानदारीपूर्वक काम किया करते थे। एक ही विभाग व अनुशासन के अंदर रहकर जिन आदर्श मूल्यों का निर्वाह किया था, वह अब लालच व भ्रष्ट प्रवृत्तियों के संपर्क में आकर बदल गया है। कहानी में प्रयुक्त इससे संबंधित तथ्य है, ''जब कमिशनर थे तब सारे कर्मचारी उसके आगे-पीछे रहते थे।... मगर पेंसन मिलने के बाद तो कोई भी सर के घर नहीं आया।''

एच. बेनूबला की कहानी 'छोटा काम' में तयाइमा एक सरकारी विभाग में प्यून है। तयाइमा को उसका अफसर 'निङोल चाक्कौबा' त्योहार के दिन अपने निजी कामों में व्यस्त रखता है। वह लाचार और विवश होकर अफसर को मना भी नहीं कर पाता। लोगों की तरह वह भी इस त्योहार का कई महीनों से इंतजार कर रहा था। वह परिवार के साथ भोजन तक नहीं कर पाया। पर उसके त्याग और परिश्रम को अफसर न ही पहचानता, न ही महत्व देता है। एक शिक्षित अफसर में जिन गुणों की आवश्यकता होती है, उसके अभाव में तयाइमा को कई कष्टों को झेलना पड़ता है। अफसर के चरित्र में स्वार्थी और अवसरवादी मूल्य दिखाई देते हैं, जो आधुनिक परिवेश का उपहार है। इस बदलते परिवेश में कमजोर, लाचार का कोई मोल नहीं है। व्यक्ति की ऐसी मानसिकता है कि वह केवल अपने आपको ही महत्व देता है। उनमें प्रेम, पछतावा, करुणा, दया, क्षमा, मनुष्यता जैसे मानवीय गुण का अंश मात्र भी मौजूद नहीं है। उनके स्वाभिमान पर अहंकार का दुष्प्रभाव साफ देखा जा सकता है। अर्थात बदलते परिवेशानुसार लोगों की विचारधारा और मानवीय मूल्य भी बदल रहे हैं।

कैशाम प्रियोकुमार की कहानी 'बुझ चुकी चमकती बिजली' में नायक के ऑफिस में काम करने वाले

अधिकांश कर्मचारी अपने मासिक वेतन के अतिरिक्त घूस लेकर पैसा कमाते हैं। कहानी में नायक की पत्नी चाहती है कि नायक (पतिदेव) भी उन लोगों की तरह घूस लेकर पैसे कमाए। नायक पर पत्नी की बातों और सहयोगी कर्मचारियों के व्यक्तित्व का दबाव पड़ता है। इसका यह प्रभाव पड़ा कि न चाहते हुए भी अपने आपको बदलकर भ्रष्ट कर्मचारी बनने का असफल प्रयास करता है।

विडंबना की बात यह है कि नायक बदलते परिवेशानुसार अपने सिद्धांतों के साथ समझौता करके अपने आपको बदलने का प्रयास करता है, मगर लोग उसे बदलने नहीं देते हैं। भ्रष्ट सहयोगी कर्मचारी और अफसर उसे भ्रष्टाचारी बनने नहीं देते हैं। इस स्थिति में भी उसे केवल बेइज्जती के आलावा कोई सफलता हाथ नहीं मिली। साथ ही उसने अपना आत्मसम्मान भी खोया। इस तरह बदलते परिवेश का मनुष्य के व्यक्तित्व पर पड़ने वाले प्रभाव और परिणामों पर यह कहानी प्रकाश डालती है। कहानी यह भी दिखाने का प्रयास करती है कि जीवन के उतार-चढ़ाव में किस तरह जीवन मूल्य बदलते रहते हैं।

कैशाम प्रियोकुमार की दूसरी कहानी 'इंतजार' में दो दोस्त नौकरी पाने की कई कोशिशें करते हैं, बावजूद कोई सफलता नहीं मिलती। नौकरी के लिए मंत्री को पैसे देने बावजूद एक दोस्त को नौकरी नहीं मिली। दूसरे दोस्त का पिता मजदूरी करता था। वह जीते जी बेटे को नौकरी करते हुए देखना चाहता था, मगर वह भी अधूरा रह जाता है। लाचारी की स्थिति में विवश होकर वे दोनों रोजगार के मानवीय विकल्पों को छोड़कर अमीरों को लूटने का मार्ग अपनाते हैं। उन्होंने यह कभी नहीं सोचा कि पैसे कमाने के लिए जो मार्ग चुना है, वह सही है या गलत। उसे पाप-पुण्य की कोई चिंता नहीं है। पैसे कमाने के लिए वे कोई भी विकल्प अपनाने के लिए तैयार रहते थे। इस तरह मानवीय मूल्यों के बदलते रहने की प्रवृत्तियों के कारण जो अस्थिरता है, उसे कथाकार ने अभिव्यक्त किया है।

इस तरह बीसवीं सदी के अंतिम दो दशक के चयनित हिंदी और मणिपुरी कहानियों में बदलते परिवेश व परिस्थिति अनुसार बदलते विभिन्न सामाजिक मूल्यों को अभिव्यक्त करके पर्दाफाश किया गया है। उक्त दो दशक का दौर एक ऐसा दौर था, जिसमें मनुष्य नवीन अति आधुनिक सदी में प्रवेश करने की होड़ की लगा हुआ था। आधुनिकीकरण का सीधा प्रभाव देश, समाज, व्यक्तिगत जीवन आदि पर बुरी तरह से पड़ रहा था। रोजगार, व्यापर, उद्योग, खेती-बारी आदि पर आधुनिकीकरण का प्रभाव पड़ने से बेराजगारी की समस्या और अन्य चुनौतियाँ भी बढ़ने लगीं। आर्थिक विषमताओं का सीधा असर तमाम व्यवस्थाओं और आम लोगों के जीवन पर पड़ने से प्रत्येक व्यक्ति की विचारधारा, सिद्धांत, आदर्श, सामाजिक मूल्य आदि बदलने लगे। इस तरह के बदलते मूल्यों में जो असभ्य प्रवृत्ति, अमानवीय प्रवृत्ति, कर्तव्यहीन, संस्कारहीन आदि असामाजिक तत्वों व नकारात्मक बिंदु आदि हैं, उन्हें प्रभावशाली ढंग से भिन्न कथ्य और शिल्पों के द्वारा कथाकारों ने अपनी कहानियों में अभिव्यक्त किया है। तुलनात्मक अध्ययन की दृष्टि से हिंदी-मणिपुरी के कथाकारों ने जिन विभिन्न बदलते मानवीय मूल्यों पर प्रकाश डाला है, उसमें समरूपता के तत्व ही मिलते हैं।

बदलती जीवन शैली, परिवर्तित सामाजिक परिवेश, आर्थिक-राजनीतिक हलचल आदि से मानवीय मूल्यों का प्रभावित होना स्वाभाविक व सामान्य ही परिलक्षित होता है, क्योंकि मनुष्य की प्रवृत्ति बहती जलधारा की तरह है, जो कभी रुकती नहीं, वह सब प्रकार के जल के साथ मिल कर बहती जलधारा के साथ आगे बढ़ती चली जाती है।

स्वतंत्रता प्राप्ति से लेकर इस सदी के अंतिम दशक तक औद्योगीकरण और भूमंडलीकरण आदि के कारण हर क्षेत्र में भारतीय समाज विकसित होता गया है। इस काल में देश का कई क्षेत्रों में विकास हुआ है, लेकिन राजनीतिक उथल-पुथल और सामाजिक विषमताओं ने प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से प्रत्येक भारतीय की विचारधारा, चरित्र, व्यवहार, दृष्टिकोण, अभिव्यक्ति आदि को नकारात्मक और सकारात्मक रूप से प्रभावित किया है। ❑

संदर्भ सूची :

1. अविनाश महाजन, उषा प्रियंवदा की कहानियों में टूटते जीवन मूल्यों का यथार्थ चित्रण, प्र. शैलजा प्रकाशन, कानपुर, पृष्ठ- 34
2. अविनाश महाजन, उषा प्रियंवदा की कहानियों में टूटते जीवन मूल्यों का यथार्थ चित्रण, प्र. शैलजा प्रकाशन, कानपुर, पृष्ठ- 34
3. डॉ. रानी वर्मा, डॉ. मंगला मिश्रा, समकालीन हिन्दी कहानी और नैतिक मूल्यों के बदलते मानदंड
4. डॉ. इन्दुमती सिंह, सह-संपादक- डॉ. ज्योति किरण, समकालीन हिन्दी कहानी और इक्कीसवीं सदी की चुनौतियाँ, प्र. आशीष प्रकाशन, कानपुर, सं. 2011 ई., पृष्ठ 173
5. डॉ. इंद्रनाथ मदान, हिंदी कहानी अपनी जुबानी, पृष्ठ- 31
6. संजय खाती, पोस्टर, पिंटी का साबुन, प्र. किताबघर 24, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-110002, सं. प्रथम संस्करण 1996, पृष्ठ- 73
7. एलांबम दिनमणी, ऑटोरिक्शा ड्राइवर, ईपाक (सागर), प्र. डॉ. युमनाम इबेहायबी देवी, दिनेश्वर एलांबम और कारतर एलांबम, शींजमै लैशांथेम लैकाइ, इंफाल- 795008, सं. 2000, पृष्ठ- 99-100
8. एलांबम दिनमणी, ऑटोरिक्शा ड्राइवर, ईपाक(सागर), प्र. डॉ. युमनाम इबेहायबी देवी, दिनेश्वर एलांबम और कारतर एलांबम, शींजमै लैशांथेम लैकाइ, इंफाल- 795008, सं. 2000, पृष्ठ- 99-100
9. एलांबम दिनमणी, ऑटोरिक्शा ड्राइवर, ईपाक(सागर), प्र. डॉ. युमनाम इबेहायबी देवी, दिनेश्वर एलांबम और कारतर एलांबम, शींजमै लैशांथेम लैकाइ, इंफाल- 795008, सं. 2000, पृष्ठ- 99-100
10. रवीन्द्र कालिया, नया कुरता, संग्रह-काला रजिस्टर, प्र.लोकभारती प्रकाशन, पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद-211001, सं.1986, 2007, पृष्ठ- 85
11. रवीन्द्र कालिया, नया कुरता, संग्रह-काला रजिस्टर, प्र.लोकभारती प्रकाशन, पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद
12. जवाहर सिंह, जाल, प्र. नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 23, दरियागंज, नई दिल्ली - 110002, सं. 1991, पृष्ठ- 124
13. मंजुल भगत, मरने की जगह, संग्रह- चर्चित कहानियां, प्र. सामयिक प्रकाशन, 3543 जटवाड़ा, दरियागंज, नई दिल्ली-110002, सं.1994, पृष्ठ -123
14. मंजुल भगत, मरने की जगह, संग्रह- चर्चित कहानियां, प्र. सामयिक प्रकाशन, 3543 जटवाड़ा, दरियागंज, नई दिल्ली-110002 ,सं.1994, पृष्ठ-125
15. मंजुल भगत, मरने की जगह, संग्रह- चर्चित कहानियां, प्र. सामयिक प्रकाशन, 3543 जटवाड़ा, दरियागंज, नई दिल्ली-110002 , सं.1994, पृष्ठ-125

सहायक ग्रंथ/ पुस्तक :

1. सत्यकेतु विद्यालंकार, सामजशास्त्र, प्र. श्री सरस्वती सदन, ए:1/32, सफदरजंग इन्क्लेव, नई दिल्ली- 110029, सं. 2007,
2. अनिता रानी, प्रेमचंद की कहानियों का समाजशास्त्रीय विश्लेषण, प्र. प्रकाशन संस्थान 4715/21, दयानन्द मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली- 110002, सं. 2007
3. आर.जे.मैतै, पोस्टकॉलोनियल मैतैलोन साहित्य, प्र. एन.आर. पब्लिकेशन इंफाल, सं. 2008
4. श्यामाचरण दुबे, अनुवाद-वंदना मिश्र, प्र. राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत नेहरू भवन, 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया, फेज-2, वसंत कुज, नई दिल्ली - 110070, सं. 19985, 2014
5. नहाकपम अरूना, नोंथालैमा अमशुं ताइबं, प्र. लमयानबा प्रिंटर्स, कोनूं लम्पाक, इंफाल, सं. 2001

आलेख

असम और असमीया साहित्य में महात्मा गांधी

डॉ. परिस्मिता बरदलै

हिंदी विभाग
कॉटन विश्वविद्यालय, गुवाहाटी-1
मो. 9864753226
ई-मेल : hindiakash@gmail.com

भूमिका :

महामानव महात्मा गांधी, नाम ही जिनका परिचय है। एक साधारण परिवार में जन्म ग्रहण करने वाले मोहनदास करमचंद गांधी अपनी कर्म साधना के बल पर समग्र विश्व में महामानव के रूप से परिचित हुए। महात्मा गांधी के अहिंसा आंदोलन का केवल भारतीय जनता ही नहीं, बल्कि विश्व के विभिन्न देशों की जनता ने भी स्वयं को गुलामी से मुक्ति पाने के लिए एक ब्रह्मास्त्र के रूप से प्रयोग किया। देश जब अंग्रेजों का गुलाम था, अर्थात 19वीं और 20वीं शताब्दी में समग्र विश्व के उपनिवेशवादियों के लिए महात्मा गांधी एक चुनौती स्वरूप हो गए थे। देश-विदेश की जनता के बीच प्रभाव विस्तार करने वाले महात्मा गांधी भारत की हर एक जनता के हृदय में स्थान लाभ करने में सक्षम हुए।

भारत के विभिन्न प्रांतों की जनता ने महात्मा गांधी को जिस प्रेम के साथ अपने हृदय में बिठाया, असम की जनता भी इससे दूर नहीं थी। यहाँ एक बात उल्लेख करना चाहूँगी कि महात्मा गांधी का पदार्पण असम में पहली बार सन 1921 में हुआ था, किंतु इससे पहले ही असम की जनता ने महात्मा गांधी को एक ईश्वरीय व्यक्तित्व संपन्न व्यक्ति के रूप में स्वीकार कर लिया था। सन 1917 में बिहार प्रांत में महात्मा गांधी के नेतृत्व में चंपारण सत्याग्रह के फलस्वरूप नील खेती करने वाले किसानों को अन्याय शोषण एवं दमन से मुक्ति मिली थी। इस आंदोलन के दौरान सत्य, अहिंसा और न्याय की प्रतिष्ठा दृढ़ रूप से हुई। कर्म की तलाश में बिहार से आए हुए व्यक्तियों के मुँह से असम के गाँव-गाँव तक महात्मा गांधी के अद्भुत व्यक्तित्व की चर्चा फैल गई थी। असम की जनता ने महात्मा गांधी को एक अलौकिक शक्ति संपन्न व्यक्ति के रूप में स्वीकार कर लिया था। असमीया साहित्य के आलोचक डॉ. सूर्य दास ने इस विषय में कहा है कि ''सन 1921 तक महात्मा गांधी को असम की जनता ने देखा नहीं था। बिहार से आए हुए श्रमिकों के मुँह से सुनकर उन्हें एक अलौकिक शक्ति संपन्न व्यक्ति की जानकारी मिलती है। कुछ लोग यह सोचते थे कि महात्मा को गोली मारने से भी नहीं लगती और

उनको जेल में रखना भी असंभव है।''

असमीया समाज में महात्मा गांधी :

सन 1921 में महात्मा गांधी पहली बार असम आए थे। ट्रेन से असम प्रांत में प्रवेश करने के बाद हर एक स्टेशन पर विशाल जनसभा आयोजित की गई। अमनीगांव स्टेशन तक ट्रेन से आने के बाद ब्रह्मपुत्र के पांडू घाट तक गांधीजी जहाज में आए थे। गुवाहाटी में वह भरलुमुख स्थित तरुण राम फूकन के घर में ठहरे। पांडू घाट से भरलुमुख तक लगभग 10 किलोमीटर रास्ता, रास्ते के दोनों ओर गांधी का स्वागत करने के लिए या कहें तो उनकी एक झलक देखने की लालस से असम के विभिन्न प्रांतों से हजारों लोग गुवाहाटी पहुंचे थे। उस विशाल जनसमुद्र के विषय में अतुल चंद्र हजारिका ने अपने स्मृति लेखा नामक ग्रंथ में लिखा है कि ''उस दिन हमारे किसी के भी शरीर और मन में होश नहीं था। स्कूल के दंड, अभिभावक की गाली किसी पर भी ध्यान ना देकर गांधी का स्वागत करने के लिए हम पांडू घाट पहुंचे। श्री कृष्ण के दर्शन के लिए 'कुण्डिलर नगरी एरिलन्त घर वारी' की तरह ही उस दिन गुवाहाटीवासी की अवस्था थी। भरलुमुख के तरुण राम फूकन के घर से पांडू घाट के रास्ते के दोनों तरफ लोग, केवल लोग। गुवाहाटी में उस समय इतने लोग नहीं थे, फिर भी गुवाहाटी से बाहर और गाँव से लोग भागकर गांधी जी को देखने के लिए आए थे।''

उस दिन शाम को तरुण राम फूकन के घर के सामने वाले मैदान में विशाल जनसभा का आयोजन किया गया। इस सभा में नवीन चंद्र बरदलै ने अपने वक्तव्य के द्वारा असम की जनता को विदेशी वस्तुओं का होम करके महात्मा को दिखाने का आह्वान किया। उन्होंने जनता को इस बात के लिए भी संकेत किया कि इस यज्ञ से महात्मा गांधी अत्यंत आनंदित होंगे। इस वस्त्र यज्ञ के बारे में असमीया भाषा के कवयित्री नलिनीबाला देवी लिखती हैं, ''उस वस्त्र यज्ञ का शुभारंभ करते हैं फूकन महोदय के बहु मूल्यवान साहबी वस्त्रों के द्वारा। बैलगाड़ी से एक गाड़ी विदेशी वस्त्र उन्होंने प्रथम आहुति के रूप में आग में डाल दी। इसके बाद नवीन चंद्र बरदलै के घर से भी एक गाड़ी विदेशी वस्त्र लाकर आहुति देते हैं।'' इसी पुस्तक में आगे वह कहती हैं, ''दोनों के अति मूल्यवान सहाबी सूट पर्वताकार करके आग लगाने के बाद वहां एकत्रित जनता अत्यंत उत्तेजना के साथ अपने पहने वस्त्र को आग में फेंकने लगी। असमीया जाति के इस अद्भुत आचरण से महात्मा गांधी स्तंभित होने के साथ-साथ आनंद में अधीर हो गए। फूकन महोदय के घर के सामने वाले आँगन में लगाई गई आग तीन दिनों तक जलती रही।''

भारत को स्वाधीन कराने के लिए महात्मा गांधी ने स्वाधीनता आंदोलन का जो पथ भारतीय लोगों को दिखाया था, उसमें एक प्रधान कार्य विदेशी वस्त्र का वर्जन और अपने हाथों से सूत काटकर कपड़ा तैयार करके पहनना था। असमीया महिलाओं का कपड़ा बुनने का अद्भुत कार्य-कौशल देखकर महात्मा गांधी विस्मय विभोर हो गए थे । पाट, मूगा, ऐड़ी के सूट से असमीया महिलाओं ने खुद अपने हाथों से कपड़ा तैयार करके गांधी जी को उपहार के रूप में दिया। गांधीजी का मानना था कि अगर हम अपनी जरूरत के अनुसार कपड़े खुद तैयार कर लें तो विदेशों में बने कपड़ों का बाजार अपने आप ही बंद हो जाएगा और हमारी स्वाधीनता का पथ आसान हो जाएगा। महात्मा गांधी के इस आह्वान के कारण असम की ज्यादातर महिलाएँ अपने आप ही स्वाधीनता संग्राम की एक सेनानी बन गई थीं। इसी संदर्भ में नलिनीबाला देवी ने लिखा है, ''उनके कर्म के प्रति आकृष्ट होकर हजारों असमीया नारी प्रत्यक्ष रूप में हो या परोक्ष रुप में हो, आंदोलन के साथ जुड़ गई थी।''

असम आने से पहले महात्मा गांधी को असम के विषय में, यहाँ की कला-संस्कृति के विषय में कोई ज्ञान नहीं था, और जो भी था वह गलत ही था। तोरे मोरे आलोकरे यात्रा नामक प्रबंध में चंद्र प्रसाद सइकिया इस विषय में उल्लेख करते हुए लिखते हैं कि ''उस दिन संध्या सार्वजनिक सभा के बाद महात्मा के कमरे में एक अद्भुत घटना घटित हुई। असम आने से कुछ महीने पहले 'हिंद स्वराज' पत्रिका में गांधी जी ने असम के बारे में एक लेख लिखा था। उन्होंने अपने उस लेख में

लिखा था कि असम के लोगों की अपनी कोई संस्कृति और परंपरा नहीं है। असमीया लोग भील और पिंडारी की तरह असभ्य और ठग हैं। ऐसे लोगों को संस्कृति जगत में प्रवेश करने के लिए कई युगों की जरूरत पड़ेगी।''

विदेशों में बैरिस्टरी पढ़ते समय ही किसी अयोग्य व्यक्ति के द्वारा लिखे हुए मणिपुर से संबंधित एक लेख को पढ़कर उन्होंने असम के विषय में भी उसी तरह की धारणा करके उक्त लेख लिखा था। महात्मा गांधी असम आकर जब तरुणराम फूकन के घर में रहे थे, तब पहले दिन ही उनके साथ असम मातृ के सुयोग्य संतान हेमचंद्र बरुवा, तरुण राम फूकन, नवीन चंद्र बरदलै, चंद्रनाथ, कालिराम मेधि, वाणीकांत काकति आदि लोगों से मुलाकात हुई। इन सभी लोगों ने महात्मा गांधी के मन में रहे असम विषयक इस भ्रांतिपूर्ण चिंतन को दूर करने के लिए भरसक प्रयत्न किया। महात्मा गांधी ने अपनी उस भूल को स्वीकार किया और इन लोगों को उन्होंने यह आश्वासन दिया कि असम से लौटते ही वे यंग इंडिया में असम की सभ्यता, संस्कृति और गौरव के विषय में एक आलेख लिखकर अपनी भूल का प्रायश्चित करेंगे।

तोरे मोरे आलोकरे यात्रा नामक आलेख में चंद्र प्रसाद शइकिया लिखते हैं कि ''महात्मा का विवेक जाग्रत हुआ। हेमचंद्र बरुवा, तरुणराम फूकन, नवीनचंद्र बरदलै, चंद्रनाथ, कालीराम मेधि और वाणीकांत काकति ने असमीया को पिंडारी की तरह ठग कहने वाले महात्मा गांधी के लेख के बारे में क्षण मात्र भी उल्लेख नहीं किया था। उन लोगों ने ऐसा भाव दिखाया कि उस आलेख को पढ़ना तो दूर, कभी उसके बारे में सुना भी नहीं है, किंतु महात्मा की तीक्ष्ण दृष्टि ने उन असमीया युवकों के चेहरे में उनकी रचना की विकृत व्यंजना के असीम विद्रोह के रूप को निहार लिया। वह स्तंभित हुए, अनुतप्त हुए, और साथ ही साथ ज्योति प्रसाद अगरवाला हृदय और मन से गौरान्वित हुए और विमुग्ध हुए। ज्योति का हृदय उन महाप्राण असमीया व्यक्तियों के प्रति श्रद्धा से भर गया। असम देश इतना सुंदर, महान और वैचित्यपूर्ण है- यह सोचकर ही ज्योति उद्वेलित हो उठे। पहली बार महात्मा गांधी जब असम आए थे तब वह असम के विभिन्न क्षत्रों में भी गए थे। गुवाहाटी के बाद वह तेजपुर, नगांव, जोरहाट, सिलचर, डिब्रूगढ़ आदि विभिन्न स्थानों पर भी गए और वहाँ की जनता से खूब आत्मीय भाव से स्वाधीनता संग्राम संबंधित वार्तालाप किया। तेजपुर में वह ज्योति प्रसाद अगरवाला के घर में रहे थे। वहाँ महात्मा गांधी ने जनता से कहा- ''मैं जो घुटनों के ऊपर हाथ से बुने हुए खद्दर की यह धोती पहनता हूँ, इसका मूल कारण यही है कि मेरे भारतवर्ष के अस्सी प्रतिशत लोग ही गरीब हैं, जिन्हें इससे लंबी धोती पहनने का सामर्थ्य नहीं है। भारत की स्वाधीनता का मतलब है उन दरिद्रों को पहनने के लिए थोड़ा-सा कपड़ा, दो वक्त की रोटी और सिर के ऊपर छत चाहिए। ईश्वर अगर इन गरीबों के सामने खड़े होते हैं तो भगवान को इनके लिए थाली में चावल लाना पड़ेगा। भूख में जिंदा रहने की यातना क्या है यह बात ये दरिद्र लोग ही समझ सकते हैं।''

जोरहाट भ्रमण के समय महात्मा गांधी के साथ में रहे कृष्ण दास नामक एक बंगाली युवक ने यात्रा का विवरण देते हुए लिखा कि ''हम लोगों ने पूरी रात ट्रेन में ही सफर किया। चौबीस तारीख को हम तिताबर स्टेशन में उतरकर दूसरी एक ट्रेन से जोरहाट पहुँचे। हम इतनी देर से एक अज्ञात जगह के बीच से पूर्व दिशा की ओर जा रहे थे, ऐसा लग रहा था कि हमारी यात्रा का अंत नहीं होगा। असम की दुर्गम जगहों पर जहाँ यात्रा करनी इतनी आसान नहीं थी, ऐसी जगहों पर भी महात्मा गांधी का नाम इतना अधिक फैल जाने से हम लोग चकित हो गए थे। देर रात तक 'गांधीजी की जय' ध्वनि चारों ओर गूँज रही थी। जहाँ भी रेल रुकती, वहाँ यह ध्वनि सुनने के लिए मिलती। अनेक छोटे-छोटे स्टेशनों में भी दूर-दूर के गाँव से हाथ में मशाल लेकर लोग महात्मा के दर्शन के लिए एकत्रित हुए थे।''

असमीया शिष्ट साहित्य में गांधी :

उस समय संपूर्ण असम प्रांत के लोगों के हृदय में महात्मा गांधी के प्रति प्रेम भाव जागृत था। उस प्रेम की झलक असमीया साहित्यकारों के साहित्य में स्पष्ट रूप से देखने को मिलता है। इस महान आत्मा के विषय में

असम के महान स्वतंत्रता सेनानी तथा असम के प्रथम मुख्यमंत्री गोपीनाथ बरदलै अपने 'गांधीजी' नामक ग्रंथ में लिखते हैं कि ''महात्मा का जीवन एक जीवित व्यक्ति की जीवनी है। उनके समग्र जीवन में ही सत्य का अन्वेषण चलता आया है और वह अन्वेषण आज तक समाप्त नहीं हुआ है। उन्होंने जो सत्य खोजा है, वह नया सत्य नहीं होने से भी उसे जगत के लोग किस तरह से ग्रहण करते हैं उसका प्रमाण अभी भी संपूर्ण रूप से नहीं मिला है। आज के जगत में यह प्राय: सर्वसम्मत है कि महात्मा गांधी एक अद्वितीय पुरुष हैं। वर्तमान जगत के स्वार्थपूर्ण वास्तविकता और उसके साथ होने वाले अन्याय-अत्याचार के विपक्ष में वह खड़े हैं और दुखी पीड़ित और निष्पेषित मानव की समस्याओं का समाधान करने के लिए निकले हैं।''

उपरोक्त मूल्यांकन से हम यही कह सकते हैं कि उस समय तक संपूर्ण असम प्रांत की जनता का हृदय गांधी प्रेम में डूब चुका था। साहित्य समाज का दर्पण होने के साथ-साथ साहित्यकार उस समाज का निर्माण करने वाला कर्ता भी होता है। इसी कारण देश को गुलामी की बेड़ियों से मुक्ति दिलाने के लिए भारत के हर एक स्वाधीनता प्रेमी साहित्यकार के हृदय में आंदोलन की ललक पैदा हुई। इसी कारण उस समय संपूर्ण भारत के साहित्यकारों पर महात्मा गांधी का प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में प्रभाव पड़ा। असमीया साहित्य के मनीषियों के साहित्य में भी महात्मा गांधी का प्रवेश स्पष्ट रूप से दिखाई देता है।

महात्मा गांधी के पहली बार असम आने से लेकर सन 1947 के स्वाधीनता आंदोलन तक के कांग्रेस और सेवादल के सभी कार्यक्रमों में पद्मश्री नलिनीबाला देवी सक्रिय रूप में जुड़ी रही थीं। सन 1921 में महात्मा गांधी के असम में पदार्पण के क्षण को याद करके कवि नलिनीबाला देवी लिखती हैं कि ''उस समय हम लोगों को अच्छी तरह से हिंदी बोलना ना आने के कारण बातचीत करने में बहुत परेशानी हुई। महात्मा और अन्य अतिथियों को दूध और कुछ फल खाने के लिए महात्मा को बीच में लेकर नेता लोग बैठ गए। असंख्य जनता के आगमन से 'शांति भवन' काँप उठा। अनगिनत पुरुषों और महिलाओं से बाहर- भीतर एकाएक हो गया।''

नलिनीबाला देवी असम की एक युगांतकारी कवयित्री भी हैं। उनकी अनेक कविताएँ महात्मा गांधी के जीवन, कर्म और आदर्शों से प्रभावित हैं। गांधी से प्रभावित उनकी सारी कविताएँ 'योग देवता' और 'अलकनंदा' नामक संकलन में संकलित हैं। 'योगदेवता' नामक संकलन की 'महामानव' शीर्षक कविता में नलिनीबाला देवी ने रेखांकित किया है कि किस प्रकार गांधी ने अहिंसक मार्ग से देश को पराधीनता की ग्लानि से मुक्ति दिलाई थी:-

''हे प्रबुद्ध/मानवर जीवनर
महामूल्य करिला प्रकाश/अहिंसा पथेरे दिलो
मुकुतिर महान आश्वास/सुप्त भारतक
अभिनव मुकुति मन्त्रे/शिकालों नतुन ज्ञान
नव युग नीति।
सेईदिना /मरनक अवहेलि/युगे युगे सजाई नीरवे
तुमालै मणि सिंहासन।''

(हे प्रबुद्ध, मानव जीवन को आपने महा मूल्यवान बना दिया है। आपने सभी को भरोसा दिलाया कि अहिंसा के पथ पर चलकर भारत माँ को मुक्ति दिलाई जा सकती है। सोए हुए भारत देश में इस अभिनव मुक्ति मंत्र से नए युग निर्माण करने के लिए आपने सभी को नया ज्ञान से दीक्षित किया। उस दिन मृत्यु को पीछे धकेल कर शत-शत युगों के दानवों को परास्त करके भारत ने मुक्ति प्राप्त की। सोई हुई आत्मा जाग उठी, भारत की जनता ने कसम खाकर मृत्यु भय छोड़कर दासत्व के बंधन को तोड़ने के लिए कमर कस कर खड़ी हुई और भारत माता के अश्रुओं की अंजलि को पोंछने के लिए सफल हुई। मुक्ति के पुजारी, भारतीय जनता के प्राणों के देवता, कोटि कोटि हृदयों के स्पंदन, युगों-युगों तक भारतीय जनता के हृदय में तुम्हारे लिए मणि सिंहासन सुसज्जित रहेगा।)

कवयित्री नलिनीबाला देवी बापू के प्रति और उनके अहिंसा आंदोलन के प्रति अत्यंत संवेदनशील थीं। उन्होंने अहिंसा आंदोलन को जीवन का एक व्रत के रूप में ग्रहण किया था। सही अर्थों में नलिनीबाला देवी एक देशप्रेमी थीं। गांधीजी के भारतवर्ष में रामराज्य स्थापना का जो सपना था, उसे नलीनिबाला देवी ने अपनी

कविताओं के माध्यम से दर्शाया है। 'बापूर सपोन' नामक कविता में कवयित्री लिखती हैं कि जिस दिन भारतवर्ष स्वाधीन होगा, उस दिन मेरी जीवन साधना संपन्न होगी :-

''भारत स्वाधीन
आजि मोर जीवनर अजन्म साधनार
स्मरणीय वांचित दिन
लांचिता जननी मोर मुक्त नागपाश
जाति मोर उन्नत शिर
भारतवर्षत मई शतायु आयुस लै
बहुदिन जीयाई थाकिम।
साधनार गरिमारे कल्पनार सरग रचिम
भारतवर्षत मई रामराज्य थापना करिम।''

(जिस दिन भारत स्वाधीन होगा, उसी दिन मेरी जीवन साधना सफल होगी और वही दिन मेरा जीवन का सबसे ज्यादा स्मरणीय दिन होगा। मेरी लांछित जननी जिस दिन नागपाश से मुक्त होगी, उस दिन मेरी जाति सिर ऊँचा कर पाएगी। भारतवर्ष में मैं सौ-सौ वर्ष तक जिंदा रहूँगी। आज मेरे देश में सभी अपने अधिकारों से वंचित हैं। इसी देश में मैं अपना शांति स्वर्ग स्थापित करूंगी। नए आदर्श लेकर भारतवर्ष का नए रूप में निर्माण करूँगी। वाल्मिकी की वीणा से संजीवनी लाकर साधना की गरिमा से भारतवर्ष में स्वर्गरूपी रामराज्य की स्थापना करूँगी।)

भारतवर्ष के उस पराधीन समय में नलिनीबाला देवी ने अपनी अस्थिर मन:स्थिति को अपनी कविताओं के माध्यम से व्यक्त किया है। उनका मानना था कि भारत स्वाधीन होने से यहाँ व्याप्त समस्त भेदभाव समाप्त हो जाएँगे। सत्य, शांति और प्रेम के मैत्री से मनुष्य का समस्त दुख दूर होंगे। भारतीय समाज में व्याप्त अस्पृश्यता पूर्ण रूप से दूर होगी।

इस विषय में पहले भी उल्लेख किया गया है कि भारतीय स्वाधीनता आंदोलन में ज्योति प्रसाद अगरवाला एक अग्रणी योद्धा थे। स्वाधीनता आंदोलन की हर एक गतिविधि में सक्रिय रूप से भागीदारी करने वाले ज्योति प्रसाद अगरवाला ने अपने गीतों, नाटकों और कविताओं के माध्यम से असमवासियों से स्वाधीनता के मुक्तियुद्ध में भाग लेने का आह्वान किया था। महात्मा गांधी से निकटता से मिलने और समझने तथा उनसे आशीर्वाद प्राप्त करने का उन्हें अवसर मिला था। उनके ज्यादातर गीतों, कविताओं और नाटकों पर महात्मा गांधी का प्रत्यक्ष प्रभाव दिखाई देता है। वे गांधी के समक्ष संपूर्ण रूप से नतमस्तक हैं :-

''शंका नकरा नकरा भय/जय महात्मारे, महात्मा जय।''

(कोई भी संशय और कोई भी डर नहीं, महात्मा की जय, महात्मा की जय।)

ज्योति प्रसाद अगरवाला की कई कविताओं में बापू के प्रति श्रद्धा और स्वाधीनता आंदोलन के कार्यक्रमों की प्रशंसा है। उन्होंने 'भलन्टियारर दुख' नामक कविता में अहिंसा आंदोलन के सार, विदेशी वस्त्र वर्जन, स्वदेशी वस्त्र परिधान आदि विषयों को अत्यंत सहज सरल शब्दों में पाठकों के सामने रखा है। 'भलन्टियारर दुख' नामक कविता में एक भलन्टियारर कह रहा है :-

''गाँवते आछिलो शूई
गाँधीये लगाले जुई
बन्दुक बारुद नोहोवाकैये
चाहाब खेदिब पारि हेनो
एई बुलि मिटिङेमिटिङे
वक्तृता दिया शुनो
आरु कोने पाय
कोनोवा एपाकत उलियाई आनिब
करि किबा टालि-भूलि।''

(उस समय हम गाँव में ही सो रहे थे, तभी गांधी बाबा ने आकर हमारे हृदय में आग लगा दी और कहा कि बंदूक बारूद नहीं होने से भी भारतवर्ष से साहबों को भगा सकते हैं। इस तरह से अनेक सभा समितियों में गांधी बाबा अपने वक्तव्य दे रहे हैं। हमारे गांधी बापू कम नहीं हैं, वह ब्रिटिश साम्राज्य के यमराज हैं। हमारे ऊपर लादे हुए टैक्स वह कम करके ही रहेंगे। अंग्रेजों ने भारत माँ को जेल के अंदर बंद करके रखा है, इसी कारण गांधी बाबा जल्दी-जल्दी जेल जाते हैं। हर बार वह भारत माँ के हाथ के बंधन को थोड़ा-थोड़ा खोलकर आते हैं और इसी तरह वह किसी एक बार कोई उपाय करके भारत माँ को जेल से बाहर निकल कर ले आएँगे।)

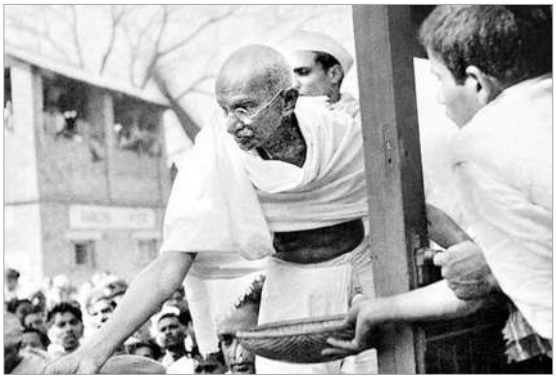

महात्मा गांधी की मृत्यु के बाद अनेक असमीया कवियों ने अपने शोक विह्वल हृदय की स्थिति को अपनी कविताओं में व्यक्त किया है। उनमें से यतिंद्रनाथ दुवरा, डिंबेश्वर नेओग, अतुल चंद्र हजारिका, चंद्र कुमार अगरवाला, पद्मधर सलिहा आदि के नाम प्रमुख रूप से ले सकते हैं।

महात्मा गांधी की मृत्यु पर देश के भविष्य के बारे में सोचते हुए कवि यतिंद्रनाथ दुवरा आतंकित हो उठते हैं। इसी कारण कवि ने महात्मा गांधी का आह्वान किया है कि वह स्वर्ग से ही देश के मंगल के लिए आशीर्वाद प्रदान करें :-

''देशर मानुहे निचिना करिले
ह'ला नेकि निजे मेघर आँर।
आजि श्मशानत किनो गाम गान
छिगि गल मोर वीणार ताँर।।
माथों एटिवार मागिछों तोमाक
मरिउ अमर महान प्राण।
सरगर परा आशिस विचारि
कराँ भारतक मँगल दान।
साधा जगतर महा कल्यान।''

(अर्थात, देश के लोग आपको पहचान ना पाएं, इसी कारण क्या आप बादलों की आड़ में छिप गए? आज श्मशान में गीत गाने के लिए मेरी वीणा के तार टूट गए हैं। मरने के बाद भी अमर रहने वालों महान आत्मा मैं आपसे केवल यह माँगता हूँ कि आप स्वर्ग से ही भारत के मंगल के लिए आशीर्वाद दीजिए ताकि जगत का महाकल्याण हो।)

ध्वनि कवि के रूप में विख्यात विनंद्र चंद्र बरुवा ने अपनी बाल कविताओं में महात्मा गांधी को इस रूप में चित्रित किया है कि बच्चे महात्मा गांधी को और उनकी महानता को पहचान पाएं। उनके तीन कविता संग्रह हैं, जिनके नाम हैं शिशु ध्वनि, प्रतिध्वनि और जयध्वनि। शिशुध्वनि शीर्षक कविता संग्रह की एक कविता महात्मा गांधी के आदर्शों को लेकर सहज सरल शब्दावली में लिखी गई है, ताकि बच्चे बहुत आसानी से महात्मा गांधी के बारे में जान पाएँ।

महात्मा गांधी के जीवन और कर्म को आधार रूप में लेकर जिन रचनाकारों ने गीतों और कविताओं की रचना की हैं, उन लोगों में से पंडित कनक चंद्र शर्मा का नाम अत्यंत सम्मान के साथ लिया जाता है। गांधी को आधार रूप में लेकर उन्होंने केवल कुछ कविताएँ नहीं, संपूर्ण रूप से एक काव्य संग्रह ही लिख डाला था, जिसका नाम है 'गांधी चरित'। 'गांधी चरित' 146 पृष्ठों का एक वृहत काव्य संग्रह है, जिसे सन 1929 में लिखा गया था। लाहौर कांग्रेस अधिवेशन में जब पूर्ण स्वाधीनता का प्रस्ताव लिया गया था, वही गांधी चरित काव्य संग्रह की प्रेरणा है। सन 1930 में 'सविनय अवज्ञा' आंदोलन में भाग लेने के कारण पंडित कनक चंद्र शर्मा को जेल जाना पड़ा था। 'सविनय अवज्ञा' आंदोलन में जेल में बंदियों के ऊपर पुलिस मिलिट्री द्वारा किया गया जो अमानवीय अत्याचार था, उसी का आँखों देखा और भोगा हुआ यथार्थ यह 'गांधी चरित' काव्य है।

साबरमती आश्रम में चिंतित गांधी के सम्मुख भारत माता का आविर्भाव, भारत माता के उपदेश से गांधीजी का आत्मचिंतन, सविनय अवज्ञा आंदोलन, साबरमती आश्रम से गांधीजी का प्रस्थान, सहयोगियों और उपस्थित जनता को महात्मा गांधी का उपदेश और दांडी यात्रा नामक अध्यायों में यह काव्य विभाजित है। सन 1931 में इस काव्य पुस्तक को ब्रिटिश सरकार ने जब्त कर लिया था। पर सन 1937 में इसको फिर से प्रकाशित करके लोगों तक पहुँचाया गया। गांधी द्वारा आरंभ किए गए अहिंसा आंदोलन के कार्यक्रम और उस समय भारतवासियों के ऊपर महात्मा गांधी के प्रभाव का भी 'गांधी चरित' काव्य संग्रह में उल्लेख है:-

''भीरु कापुरुष ह'ल महावली
तोमार मन्त्रर बले।
नतुन उत्साह आहि थिय दिले
जातीय पतकार तले।।
पुरुष रमणी हाँहि शांति ल'ले
तोमार आदर्श मानि।
विपन्न हृदय कँपाले सघने
उच्चारि विजय वाणी।।''

(अर्थात तुम्हारे मंत्र के बल से सभी दुर्बल और भयभीत व्यक्ति आज महाबली हो गए हैं और नए उत्साह और उमंग से तिरंगे के नीचे आकर खड़े हो गए हैं। आपका आदर्श मानकर सभी स्त्री-पुरुषों ने शांति पाई है। जनता के सामूहिक विजय उद्घोष से दुश्मनों का हृदय भी काँप उठा है।)

इस काव्य संग्रह में अहिंसा आंदोलन, विदेशी वस्त्र वर्जन, मादक द्रव्य निवारण, अस्पृश्यता निषेध आदि के लिए जो रचनात्मक कार्यक्रम महात्मा गांधी ने चलाए थे, उन्हीं का विस्तृत रूप से उल्लेख किया गया है। महात्मा गांधी के जीवन, कर्म और गांधी दर्शन के विषय में जो स्पष्ट धारणा कवि कनक चंद्र की थी, उसी को उन्होंने 'गांधी चरित' में उल्लेखित किया है। गांधी चरित काव्य संग्रह पढ़ने से पंडित कनक चंद्र शर्मा की कवि प्रतिभा का भी परिचय मिलता है।

असमीया लोक गीतों में महात्मा गांधी :

देश जब अंग्रेजों का गुलाम था, तब अंग्रेजों द्वारा संपूर्ण देश के लोगों को विभिन्न तरह से सताया गया था। गरीब जनता के ऊपर लगान वृद्धि, मूल्यवृद्धि से लेकर हर तरफ से शोषण और अत्याचारों के कारण लोगों के मन में गुलामी की बेड़ियों को काटने के लिए ललक पैदा हुई। इसी ललक से बीज रूप में स्वतंत्रता संग्राम शुरू हुआ। सन 1917 में महात्मा गांधी इस स्वतंत्रता संग्राम में कूदे। बहुत ही कम समय में गांधी जनता के हृदय में प्रवेश करने में सक्षम हो गए। उनके अहिंसा आंदोलन ने हर एक भारतीय के मन में छाप छोड़ी। भारत की साधारण जनता महात्मा गांधी को भगवान का अवतार मानने लगी थी। मेरे विचार में भारत की प्रत्येक भाषा के लोक गीतों में महात्मा गांधी को स्थान मिला है। असमीया लोगों ने भी अपने लोक गीतों में गांधी बाबा को समाहित कर लिया। गांधी जी के आदर्शों से प्रभावित असम के स्वतंत्रता सेनानी लोकप्रिय गोपीनाथ बरदलै, नवीन चन्द्र बरदलै, देशभक्त तरुणराम फूकन आदि के नेतृत्व में स्वतंत्रता संग्राम में भाग लेने के लिए असम की जनता कमर कसकर आगे बढ़ आई थी। स्वराज और अहिंसा का प्रचार इतना हद तक हुआ कि लोक गीतों में भी इसका प्रभाव पड़ा :-

''नवीनोर बारीते सनिधरे गछ
तार चारि फाले बेरा स्वराज लबा लागि
हाते मुखे धरि हिंसा- खडके एरा।''

(स्वाधीनता प्राप्त करने के लिए हमें हिम्मत के साथ आगे बढ़ना होगा, पर इसके लिए हिंसा को त्यागकर अहिंसा को अपनाना होगा।)

स्वतंत्रता संग्राम के दौरान सन 1921 में गांधी जी असम आए थे। उस समय विदेशी कपड़ा वर्जन और स्वदेशी कपड़ा तथा खादी के प्रयोग के लिए उनका जो आह्वान था, उससे असमवासी अत्यंत प्रभावित हुए थे। इसी से संबंधित लोक गीत का एक हिस्सा उदाहरण के रूप में प्रस्तुत है, जिसे असम के लोग चरखे में सूत काटते समय गाया करते थे :-

''गांधी सूता काटो गांधी सूता काटो
शलाकाठिर आँर लागिछे भलन्टारोक मातो
गांधी सूता काटो ।।''

(प्रस्तुत गीत में सूत काटने के कार्य को गांधी कार्य का नाम दिया गया है। गांधी सूता काटते जाओ। सूता काटते समय कुछ गड़बड़ी हो रही है, इसलिए वालंटियर (कार्यकर्ता) को जल्दी बुलाकर लाओ।)

महात्मा गांधी के आह्वान से असम की सभी जनता अपने प्राणों का मोह छोड़ कर मातृभूमि के लिए प्राण न्योछावर करने लिए आगे बढ़ी। स्वतंत्रता संग्राम में देश के वृद्ध, युवक, युवतियों के हृदय में उल्लास पैदा करने के लिए स्वाधीनता विषयक लोक गीतों ने अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उदाहरण के रूप में एक गीत नीचे द्रष्टव्य है:-

ब'ला भाई ब'ला भाई
बीर दर्पे आगुवाई

ब'ला भाई ब'ला भाई
जननीर जय गान गाई।
ऐइ देश आमार देश
चोवा तार काङाल वेश,
धन-जन-प्राण नोहे मूल्यवान,
सकलोवे आहाँ आजि
करो अग्नि स्नान,
महात्मार आज्ञा मानि
दिउ सबे आत्म बलिदान।''

(मातृभूमि का जयगान गाते हुए हम सब अपना सीना तानते हुए आगे बढ़ें। यह देश हमारा है। इसकी कंगाल स्थिति को अच्छी तरह से देखो। अपनी मातृभूमि के सामने परिवार, धन, प्राण सब कुछ तुच्छ है। आओ, आज हम सब मिलकर अग्नि में स्नान करें। गांधी जी की आज्ञा मानकर सब लोग देश के लिए आत्म बलिदान दें।)

स्वाधीनता संग्राम के समय महात्मा गांधी ने एक और आह्वान किया था कि भारत देश की जनता अपनी जाति-धर्म, जात-पात सब कुछ भूलकर एक शुद्ध भारतीय होकर सब लोग एक साथ मिलकर संग्राम करे, तब हम स्वाधीनता प्राप्त कर सकते हैं। उन्होंने देश के सभी धर्म के लोगों को एकत्रित रखने के लिए जीवन के अंत तक प्रयास किया। इसकी झलक भी असमीया लोक गीतों में देखने को मिलती है:

''जाग जाग जाग आजि
हिन्दू-मूसलिम भाई भनी जाग
देशर हके प्राण बलि दिम
नाई आमार एको भय
अहिंसा आमार रण
हिंसार नाई ठाई
हय करिम नहय मरिम
एयेइ आमार पण।
जाग जाग जाग आजि
हिन्दू-मुसलिम ऐक्य ह'ब
गांधी आमार रणनेता
नाई जे एको भय।।''

(हिंदू-मुस्लिम सब भाई बहन जाग उठो। अपनी मातृभूमि के लिए प्राणों का बलिदान देने का समय आ गया। अहिंसा ही हमारा रण है, जहाँ हिंसा का कोई स्थान नहीं। 'करेंगे या मरेंगे' यही हमारा प्रण है। देश के हर एक हिंदू मुस्लिम एक साथ मिलकर अंग्रेजों से लड़ेंगे तो जीत अवश्य ही होगी। इस युद्ध में गांधी हमारे मुख्य नेता हैं, हमें कोई भय नहीं।)

इसी भावधारा के अनेक गीत असमीया लोक गीतों में मिलते हैं। सभी गीतों का उल्लेख करना यहाँ संभव नहीं है। असमीया भाषा में कुछ लोक गीत हैं, जिसे ऐतिहासिक मालिता कहा जाता है, जो गीत किसी ऐतिहासिक घटना के आधार पर प्रतिष्ठित है, वही ऐतिहासिक मालिता है। कभी-कभी इतिहास के निर्माण में ऐतिहासिक मालिता तात्पर्यपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इस तरह के लोक गीतों में ऐतिहासिक पात्र के चरित्र देखने को मिलते हैं। इसी कारण ये गीत साधारणत: वीर रस प्रधान हैं। जनता के हृदय में जातीय चेतना जागृत करने के लिए इन लोक गीतों का महत्वपूर्ण अवदान देखने को मिलता है। जिन जातियों या जनजातियों का लिखित रूप में इतिहास नहीं है, उन लोगों में इस तरह के गीत इतिहास की भूमिका निभाते हैं। असमीया भाषा में अभी तक संकलित और प्रकाशित ऐतिहासिक लोक गीतों में प्रमुख हैं- बरफूकनर गीत, पद्मकुमारीर गीत, मणिराम देवानर गीत, जयमती कुँवरीर गीत, आजान फकीरर गीत, पथरूघाट रण, गांधी गीत आदि।

असम के बाघमरा अंचल से संकलित एक ऐतिहासिक मालिता का उदाहरण नीचे दिया गया है। इस लोक गीत में महात्मा गांधी के जन्म, उनके कर्ममय जीवन से लेकर हत्यारे के हाथों उनकी मृत्यु तक की कथा को समाहित किया गया है :-

''गाँधी नामर नाऊ खेनि जवहरलाल बेठा।
स्वाधीन आमि पालो भन्नी सूता काटि ऊठा।
एकशत दुईशत तिनिशत बरे।
गुजराते जन्म पाइछिल गाँधी महावीर।।
गांधीहे लिखिला हरिरे नाम।
कि करा जहरलाल भारतर काम।।
बिदेशी जाब बलि मनते आखा।

बन्दी करि मन्त्रीक जेलते राखा।।
अकालते गांधी राजाई
आमाक एरि थइ
स्वर्गले गेल रथे चरि।।''

(स्वाधीनता संग्राम में गांधी और जवाहरलाल एक अभिन्न जोड़ी है। एक नौका है तो दूसरा पतवार। सूत काटकर हमें स्वाधीनता प्राप्त हुई है। गुजरात में गांधी का जन्म हुआ था। भगवान के ऊपर उनका अगाध विश्वास था। स्वाधीनता संग्राम के दौरान सभी नेताओं को जेल में डाला गया था, और सभी के मन में यह आशा थी कि देश बहुत जल्द ही विदेशियों से मुक्त हो जाएगा। जेल में रहकर नेता लोग इस बात को लेकर चिंतित थे कि अब विदेशी को भगाने का काम कौन करेगा। कुछ सिरफिरों ने गांधी को मारने के लिए बम तैयार किए। सिरफिरे ने गांधी को गोली मार दी और वह खून से लथपथ हो गए। यमुना के तट पर चंदन की लकड़ी से उनका अंतिम संस्कार किया गया। अकाल ही गांधी हमें अकेला छोड़कर स्वर्ग चले गए।)

हमारे समाज में विभिन्न तरह के अनैतिक कार्य घटित होते रहते हैं, इससे कला-संस्कृति को ठेस पहुँचती है। फिर भी ऐसे कर्मों के विरोध में आवाज उठाने में लोग संकोच करते या डरते हैं। ऐसे स्थिति में व्यंग्यरूपी बाण ही प्रयोग किया जाता है। समाज सुधार के लिए व्यंग्य को पशुपति अस्त्र के रूप में व्यवहार किया जाता है। असम में इस तरह के बहुत सारे व्यंग्य गीत मौखिक रूप में प्रचलित हैं। इस तरह के लोग गांधी का नाम लेकर सभी सुविधा प्राप्त करते रहते हैं। प्रस्तुत लोक गीत में बार-बार महात्मा गांधी का नाम लिया गया है:-

''चालोत आछे जालि कुमरा
कुकुर सुतार पात ए।
लोने-तेले रान्धे-बाढ़े
कुकुर सुतार पात ए।
बाँहोर कणीत सूता भरे
नबीन दलैक मात ए
कुकुर सुतार पात ए।
बाटोरे दुवरि मई फेलाउ उभालि
गांधी आहिबो बुलि
गांधी आहिचे पदूलित बहिछे
आनागौ चौंवरे बरि।
हाते हाते दिला निरमालि
माथा भरि लउँ,
बिदाय दिया गांधीर राजा
घराघरि जाउँ।।''

(स्वाधीनता संग्राम के समय देश के ज्यादातर लोग अभावग्रस्त थे। लेकिन उस समय नवीन दलै के घर के छत पर भर-भर कर कद्दू लगा हुआ रहता, और उनके घर में खाने पीने का कोई अभाव नहीं था। गांधी के प्रति हमारे मन में अगाध प्रेम है। गांधी की जगह पर गाँव की सारी जनता जेल जाने के लिए तैयार है। गांधी के साथ सभी वालंटियर जेल में गए। इस कारण जनता की आँखों में आँसू हैं। लेकिन नवीन, फूकन और तरुण -ये लोग आराम से बात बनाते हुए बाहर घूम रहे हैं। अंत में गांधी हमारे हाथों में निर्मालि देते हैं और हम घर लौट आते हैं।)

निष्कर्ष :

सन 1921 से प्रारंभ करके सन 1947 तक महात्मा गांधी कुल चार बार असम आए थे। हर बार उनके यहाँ आगमन का अलग-अलग उद्देश्य रहा था और उस दौरान उन्होंने असम के अनेक शहर-गाँवों का भ्रमण भी किया था। भ्रमण के समय संपूर्ण असम प्रांत में महात्मा गांधी का प्रभाव इस तरह से पड़ा था कि वह जिस जगह जाते थे, वहाँ पहुँचने के लिए जो भी स्टेशन पार करना पड़ता था, उस हर एक स्टेशन पर महात्मा गांधी को देखने के लिए या उनके नाम का जय घोष करने के लिए असंख्य लोग एकत्रित हो जाते थे, चाहे वह देर रात का ही समय क्यों ना हो। असल में असम की जनता के हृदय में महात्मा गांधी मनुष्य की कोटि से उठकर भगवान की कोटि में पहुँच गए थे। महात्मा गांधी के समकालीन समय के असम को देखा जाए तो हमारे जेहन में यही भाव उत्पन्न होता है। यही कारण है कि महात्मा गांधी का पदार्पण जब पहली बार पांडू घाट में हुआ था, तब गुवाहाटी एक विशाल जनसमुद्र में तब्दील हो गई थी। उस समय गुवाहाटी में इतनी जनसंख्या नहीं थी, पर महात्मा गांधी की एक झलक पाने के लिए असम के कोने-कोने से लोग भागते हुए गुवाहाटी पहुँचे थे। असमीया लोगों के हृदय में अपने प्रति प्रेम का अनुभव

करके महात्मा गांधी भावविह्वल हो गए थे। पहली बार असम से लौटते समय अपने मन में असम के प्रति, यहाँ की जनता के प्रति एक अलग ही भावधारा लेकर गए, और उस आत्मीयता का निर्वाह उन्होंने मृत्यु पर्यंत किया। स्वाभाविक-सी बात है कि जिस व्यक्ति की छवि असम प्रांत की जनता के हृदय पर अंकित थी तो उस व्यक्ति के व्यक्तित्व की झलक उस प्रांत के साहित्य में ना पड़ने का कोई सवाल ही नहीं उठता। इसी कारण असम का शिष्ट साहित्य हो या लोक साहित्य हो-महात्मा गांधी के आदर्श, उनकी अनुप्रेरणा, उनके दर्शन से समसामयिक असमीया साहित्य ओत-प्रोत रहा। शिष्ट साहित्य के रचयिताओं में प्रमुख रूप से यतीन्द्रनाथ दुवरा, डिंबेश्वर नेओग, अतुल चंद्र दुवरा, चंद्र कुमार अगरवाला, पद्मधर चालिहा, विनद्र चंद्र बरुवा, ज्योतिप्रसाद अगरवाला, कनकचंद्र शर्मा, नलिनीबाला देवी आदि के साहित्य में महात्मा गांधी के आदर्श, अनुप्रेरणा और दर्शन का प्रभाव मौजूद है और इसके अलावा असम के अमर गायक डॉ. भूपेन हजारिका के तमाम गीतों में भी महात्मा गांधी का प्रत्यक्ष प्रभाव देखने को मिलता है। इसके अलावा महात्मा गांधी को अपनी प्रेरणा या नायक के रूप में लेकर असमीया समाज में बहुत सारे लोक गीत भी मिलते हैं। लोक साहित्य में कभी विदेशी कपड़ा वर्जन और स्वदेशी कपड़े के प्रयोग को विषय बनाया गया है तो कभी हिंसा त्यागकर अहिंसा नीति ग्रहण करने के लिए, तो कभी जाति धर्म भूलकर सभी को एकत्रित होकर स्वाधीनता संग्राम में टूट पड़ने के लिए शक्ति के रूप में गांधी बाबा को लेकर गाए गए असंख्य असमीया लोक गीत हमारी ग्रामीण जनता की स्मृति में आज भी मौजूद हैं। अनेक शोधकर्ता इन लोक गीतों को एकत्रित करने के लिए प्रयासरत हैं। स्वाधीनता संग्राम के समय लोगों की आशा-आकांक्षा, हर्ष-विषाद युक्त राजनैतिक मनोभावों का चित्रण उस समय के तमाम लोक गीतों में मिलता है। इन लोक गीतों को तत्काल संग्रह नहीं किया जाएगा तो वे विस्मृति के गर्भ में समा जाएँगे। ❑

संदर्भ ग्रंथ :

- महात्मा गांधी, असम प्रकाशन परिषद, गुवाहाटी, 2019, पृ.-02
- हजारिका, अतुल चंद्र, स्मृति लेखा, असम प्रकाशन परिषद, गुवाहाटी, 1982, पृ.-109
- देवी, नलीनिबाला, स्मृति तीर्थ, गुवाहाटी, 1948, पृ. 95
- उपरोक्त पृ. 22-23
- उपरोक्त पृ. 78
- दास, डॉ. सूर्य, असमीया साहित्यत महात्मा गांधी, (संपा.), शईकीया, चंद्र प्रसाद, तोरे मोरे आलोकरे यात्रार परा, असम प्रकाशन परिषद, गुवाहाटी, 2019, पृ.-65
- उपरोक्त, पृ.-67
- उपरोक्त, पृ.-76
- दास, अमिय कुमार, बरुवा लीलाधर (संकलन), शईकीया, चंद्र प्रसाद (संपा) असम प्रकाशन परिषद, गुवाहाटी, 1969, पृ.-35
- बरदलै, गोपीनाथ, गांधीजी, असम प्रकाशन परिषद, गुवाहाटी, 1989, पृ.-02
- देवी, नलीनिबाला, स्मृति तीर्थ, असम प्रकाशन परिषद, गुवाहाटी, 1948, पृ. 96
- देवी, नलीनिबाला 'योगदेवता', महामानव, गुवाहाटी, 1952, पृ.-34
- देवी, नलीनिबाला 'योगदेवता', बापूर सपोन, गुवाहाटी,1952, पृ.-26
- अगरवाला, ज्योतिप्रसाद, लुइत पारर सुर, हजारिका अतुलचंद्र (संकलन और संपा.), असम प्रकाशन परिषद, गुवाहाटी, पृ.-18
- दुवरा, जतींद्रनाथ, रचनावली, गुवाहाटी, 1997, पृ. 392-393
- शर्मा, पण्डित कनक चंद्र, गांधी चरित, महात्मा गांधीर प्रति भारतमातार उक्ति, द्वितीय अध्याय (पद संख्या-18), नगाँव, 1937, पृ.-14
- रायचौधुरी, भूपेन्द्र नाथ, असमीया लोक साहित्य की भूमिका, भारती प्रकाश, गुवाहाटी, 1979, पृ-51
- गगै, जीवकान्त, स्वाधीनता संग्राम गीत, (संकलन) गुवाहाटी, 1999, पृ.-16-17
- शर्मा, डॉ. नवीन चन्द्र, असमर लोक साहित्य, ज्योति प्रकाशन, गुवाहाटी, 2014, पृ.- 461
- उपरोक्त, पृ.- 494-495
- तामुली, योगेश चन्द्र, असमीया लोकगीत संग्रह, जोरहाट, 1978, पृ.- 111

आलेख

आचार्य विष्णुकांत शास्त्री की आलोचना दृष्टि और असमीया राम साहित्य

मनीष कुमार भारती

शोधार्थी, हिंदी विभाग
महात्मा गांधी केंद्रीय
विश्वविद्यालय
मोतिहारी, बिहार
मो. 8651473845
bharti.bihar@gmail.com

भारतीय संस्कृति की मर्यादाओं का निर्वाह करने वाले पुरुषोत्तम के रूप में राम की प्रतिष्ठा है। राम में शील, शक्ति एवं सौंदर्य का एक साथ ही समावेश है। अतएव उनके चरित्र को आधार मानकर आदिकवि से लेकर वर्तमान समय तक अनेक काव्य-ग्रंथों का निर्माण हो रहा है। सनातन धर्म को अपने जीवन का आधार मानने वालों के लिए राम एक दृढ़ आलोक-स्तंभ की भाँति अवलंब हैं। महर्षि वाल्मीकि से लेकर आज तक अनेकानेक लेखकों एवं कवियों ने इसे आधार बनाकर अपनी लेखनी को समृद्ध किया है। न केवल भारतवर्ष में अपितु अन्यान्य देशों में भी राम-कथा को आधार बनाकर लिखी गईं अनेक रचनाएँ प्राप्त होती हैं। भारत की प्राय: समस्त भाषाओं में कोई-न-कोई रामायण ग्रंथ लिखा गया है। असमीया का लिखित साहित्य चौदहवीं शताब्दी से ही मिलता है। रूद्र सरस्वती, हेम सरस्वती, हरिहर विप्र आदि ही असमीया साहित्य की नींव डालने वाले हैं। असमीया के लिए यह गर्व की बात है कि इसके साहित्य में आदिकाल से ही राम साहित्य की गौरवपूर्ण परंपरा का प्रादुर्भाव हुआ।

असमीया भक्त कवि माधव कंदली की रामायण को ही उत्तरी भारत की प्रादेशिक भाषाओं की रामायणों में कालक्रम के अनुसार प्रथम होने का श्रेय प्राप्त है। पद रामायण, गीति रामायण, कथा रामायण, कीर्तनीया रामायण- इन चार रामायणों का उल्लेख असमीया में मिलता है, जिनमें पद रामायण की रचना वाल्मीकि रामायण के आधार पर महाकाव्य शैली में की गई है। गीति रामायण में गेयपद हैं, जो कथा की एक कड़ी होते हुए भी अपने में पूर्ण हैं। कथा रामायण में गद्य में कथावाचन-शैली में रामचरित कहा गया है। कीर्तनीया रामायण में कीर्तन-पद्धति में रामकथा गुंफित है।

"There is a growing and strong body of literature in this language. The first characteristics of this language are seen in the Charyapadas composed in the 8th-12th century. The first example emerge in writings of court poets in the 14th century, the finest example of which is Madhav

Kandali's Kotha Ramayana, as well as popular ballad in the of Ojapali. The 16th-17th century saw a flourishing of Vaishnavite literature, leading up to the emergence of modern forms of literature int the late 19th century."[1]

असमीया में रामकथा को जन-जन तक पहुँचाने वाले कंदली रामायण के विषय में आचार्य विष्णुकांत शास्त्री लिखते हैं कि- ''असमीया में रामकथा के गायकों में माधव कंदली का वही स्थान है, जो हिंदी में गोस्वामी तुलसीदास का है। जिस प्रकार रामचरितमानस की कथा चौपालों में भी होती है, ठीक उसी प्रकार माधव कंदली की कथा भी गाँव-गाँव में, चौपाल-चौपाल में होती रहती है। इसका समय चौदहवीं शताब्दी के अंतिम चरण से लेकर पंद्रहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध के बीच माना जाता है। कवि ने वाल्मीकि रामायण को अपनी रचना का आधार बनाया है। सुंदरकांड के अंत में वे कहते हैं, महर्षि वाल्मीकि ने रामायण का प्रकाश क्या किया, संसार में अमृत की सृष्टि कर दी। सुनने से कलियुग में सद्‌गति होती है। मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है। माधव कंदली विप्र भी उनके चरणों को स्मरण कर श्लोक बनाते है।''[2]

कवि ने वाल्मीकि रामायण को आधार तो बनाया है, किंतु विभिन्न वर्णनों में स्थानिक रंग भर कर कवि ने उन्हें सजीव एवं असमीया मानस के लिए सहज ग्राह्य बना दिया है। वह प्रकृति, मनुष्य तथा उन सब से जुड़े हर एक कार्य व्यापार को लोकरंग में जन-मानस के समक्ष उपस्थित करता है। अपनी रचना में कवि ने स्थानीय मनोविज्ञान को ध्यान में रखते हुए चित्र उपस्थित करने का मौलिक प्रयास किया है, उदाहरण के लिए वाल्मीकि रामायण के लंकाकांड का एक प्रसिद्ध श्लोक-

''देशे देशे कालत्राणि, देशे देशे च बान्धवाः।
तं तु देशं न पश्यामि, यत्र भ्राता सहोदरः।।''[3]

कितनी स्वाभाविकता के साथ कवि ने इसे असमीया रूप प्रदान कर दिया है-

''भार्या, पुत्र, बन्धु यत पाई यथा तथा।
हेन न तु देखोहों सोदर पाई कथा।।''[4]

माधव कंदली के अनुवाद की विशेषता यही है कि मूल के प्रत ईमानदारी बरतते हुए, उसे संक्षिप्त रूप देने का प्रयास किया है। निश्चित ही कंदली का यह प्रयास श्लाघ्य है। कवि की रचना में कहीं भी निरसता नहीं है, बल्कि कवि ने अपने प्रयास से साहित्यिक छटा, भाव-सरसता तथा सहजता की त्रिवेणी प्रस्तुत किया है। वाल्मीकि रामायण में राम महामानव के रूप में चित्रित हैं, जबकि कंदली रामायण में वे विष्णु के अवतार हैं।

आचार्य शास्त्री कंदली रामायण में भक्ति के साथ-साथ श्रृंगार का सामंजस्य दिखाते हुए कहते हैं कि- ''कंदली रामायण के भक्ति में श्रृंगार का भी पुट दिया गया है। राम के वन-गमन के समय सीता अपने सौंदर्य का वर्णन कर राम से पूछती है कि मेरा कौन-सा अंग हीन है, जिसके कारण आप मेरी उपेक्षा कर जाना चाहते हैं-

''सूर्य अबिहने येन नो शोभय दिन
रजनी नो शोभे येन शशधर हीन
बसन्त नो शोभे विने कोकिलर रोले,
निष्फल जीवन प्रभु तुमि बिने कोले।''[5]

कवि रूप वर्णन में बहुत कुशल है। यह सही है कि उसके उपमान अधिकतर साहित्य-शास्त्र के रूढ़ उपमान हैं, फिर भी उनके प्रयोग में कवि को पर्याप्त सफलता मिली है, सीता के मुखमंडल को चंद्र समझने के कारण राहु की जो विडंबना हुई, उसे देखिए-

''मुखचन्द्र हेरि अमृतर अभिलापे,
ग्रसिवाक लागि राहु आसि भैल पाशे।
भ्रुवयुग धनु त कटाक्ष येन शर,
चमकिया राहु गैल गगन उपर।।''[6]

सीता के मुखचंद्र को देखकर अमृत की अभिलाषा से उसे ग्रसने के लिए राहु निकट आया, किंतु भ्रूयुगल को धनुष तथा कटाक्ष को बाण समझकर चमत्कृत हो आकाश में भाग गया।

कवि का अलंकार विधान भी प्रशंसनीय है। उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक आदि विशेष प्रिय अलंकार हैं। अलंकारों का प्रयोग भावोत्कर्ष के लिए ही किया गया है, केवल चमत्कार प्रदर्शन के लिए नहीं। राम के सलोने रूप को देखकर एक वन-नारी उनकी तरफ देखती ही रह जाती है, और कह उठती है कि-

''राम मुख पद्म मोर नयन भ्रमर
वारिते न पारो भोग करे निरन्तर ।।[7]''

इसी तरह सीता-हरण के बाद कवि एक सुंदर रूपक बाँधता है-

''श्रीराम-लक्ष्मण दुई चन्द्र सूर्य भैला,
सीता सन्ध्या एरिया बहुत दूर गैला,
अन्धकार रावण चापिल गैया कोल।।''[8]

महलों, प्राकृतिक दृश्यों, युद्धों तथा अन्य कार्य-व्यापारों के वर्णन भी बहुत ही सजीव, सूक्ष्म तथा संश्लिष्ट हैं। जंगलों और उद्यानों की शोभा का वर्णन करते समय कवि की दृष्टि असम मे होने वाले वृक्षों, पुष्पों तथा पक्षियों की तरफ ही रही है-

''मयना, घरूवा, भाटौं, चुटिया, शालिक
कतो, कतो कन्ते, पुरे झड़े दोणडाकाक
सम्यके भषावै येन मनुष्यर वाक।।''[9]

रामकथा को असमी मानस में प्रतिष्ठित कर देने में माधव कंदली की भाषा का भी बहुत बड़ा योगदान है। उन्होंने संस्कृत से प्रेरणा प्राप्त कर लोकभाषा के साथ मणिकांचन संयोग कर एक अनूठा उदाहरण प्रस्तुत किया। आचार्य शास्त्री माधव कंदली के बारे में लिखते हैं कि- ''बिल्कुल मौलिक न होते हुए भी माधव कंदली की रामायण अपने समय के आसामी जीवन का अच्छा स्वरूप उपस्थित करती है। राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक किसी भी दृष्टि से देखने पर यह साफ हो जाएगा कि कवि ने संपूर्ण आसामी जीवन को आत्मसात कर रामकथा को आसामी परिपार्श्व में जड़ित कर देने में असाधारण सफलता पाई है।''[10] असमीया माधव कंदली रामायण के हिंदी अनुवादकार नवारुण वर्मा की पुस्तक के प्रकाशकीय टिप्पणी में इस रचना के संदर्भ में उद्धृत किया है कि ''माधव कंदली वाल्मीकि कृत रामायण की विषय-वस्तु से अधिक विश्वस्त रहे। इन्होंने इसमे कुछ स्थानीय रंग भी चढ़ाया है, जिससे यह असमीया लोगों के निकट अनन्यतम ग्रंथ बन गया। माधव कंदली की कृति प्राचीन असमीया साहित्य का गौरव है। भाषा, शैली, छंद, घटनाओं के अविकल वर्णन और चरित्र-चित्रण में माधव कंदली अद्वितीय हैं।''[11]

दुर्गावर कायस्थ की गीतिरामायण : कवि ने साधारणत: माधव कंदली के रामायण के आधार पर ही अपने गीतों की रचना की है। कहीं-कहीं उसने लोक-रुचि के अनुसार कुछ परिवर्तन भी किए हैं । उसने राम, सीता आदि का चित्रण लोक सामान्य की धरातल पर किया है। आचार्य विष्णुकांत शास्त्री काकती की बातों को उद्धृत करते हुए लिखते हैं कि ''गीति रामायण की इन विशेषताओं को देखते हुए ही डॉ. काकती ने अपने पुराने असमीया साहित्य में इसे वाल्मीकि रामायण का लोक संस्करण कहा है।''[12]

गीतकार होने के कारण कवि ने स्वभावत: उन्हीं प्रसंगों को चुना है, जो जनसाधारण के मर्म को स्पर्श कर सके। राम-सीता के निर्वासन जीवन का विस्तृत भावपूर्ण विवरण उपस्थित किया गया है। इस स्थल पर कवि ने अपनी स्वतंत्र कल्पना का परिचय दिया है। वह वन में ही सीता द्वारा उनकी अलौकिक शक्ति से अयोध्या की सृष्टि करवाता है। आचार्य शास्त्री लिखते हैं कि ''कवि की प्रतिभा का समुचित प्रकाश संयोग के स्थलों से अधिक वियोग के स्थलों में हुआ है। मानव मन की पीड़ा-वेदना के साथ कवि का घनिष्ठ निविड़ परिचय है।''[13] कंदली ने

अपने रामायण में राम क मानवीय रूप चित्रित करते हुए यह दिखाया है कि जब ब्रह्म भी मानव का रूप धारण करते हैं तो वह मानवीय व्यवहार को नहीं छोड़ सकते, क्योंकि सीता का जब हरण होता है तो एक साधारण मनुष्य को जिस वियोग की अनुभूति होती है, वही अनुभूति कवि ने राम के संदर्भ में भी दिखाने की कोशिश की है, जिसमें उसे सफलता मिली है। अचार्य शास्त्री लिखते हैं कि– ''कवि ने राम और सीता का चरित्र-चित्रण मानवीय दृष्टिकोण से किया है । इसीलिए उनके राम को सचमुच वे ही आशंकाएँ होती हैं, जिनका सीता जी को भय था। स्वर्णमृग को मार कर जब राम लौटते हैं, तब कुटीर को रिक्त देख कर सीता के विरह में उन्मादवत् हो जाते हैं। गंभीर शोक के तीव्र आघात को न सह वे विक्षिप्त चित्त से प्रलाप कर उठते हैं। यह प्रलाप मर्यादा पुरुषोत्तम राम का स्वरूप नहीं है, किंतु इससे भी इनकार नहीं किया जा सकता कि साधारण मानव का चित्त ऐसी परिस्थिति में एक क्षण के लिए सी प्रकार की आशंका-आँधी की धूल से भर उठेगा। यही मानवीय चित्रण ही उस रामायण की विशेषता है।''[14]

अनंत कंदली और उनका रामायण : दुर्गावर के बाद रामकथा को पुन: पदबद्ध करने का संकल्प किया श्री अनंत कंदली ने। यूं तो अनंत कंदली कृष्णभक्त थे, किंतु विष्णु के अवतार होने के कारण राम को भी साक्षात् ब्रह्म मानते थे। उन्हें रामायण लिखने की प्रेरणा माधव कंदली के रामायण से ही मिली, जो उनसे डेढ़ सौ वर्ष पहले लिखा जा चुका था।

आचार्य विष्णुकांत शास्त्री अनंत कंदली के शब्दों को उद्धृत करते हुए लिखते हैं कि ''माधव कंदली ने रामायण की रचना की, उसे सुनकर मेरे मन में कौतुक हुआ अथवा स्पृहा जागी। राम की साधारण संत कथा यथावत् कही गई थी, किंतु उनके जितने भजनीय गुण थे, वे व्यक्त नहीं हुए। अत: भक्ति के लिए मैं यह यत्न कर रहा हूँ। श्री राम को साक्षात् परम् ब्रह्म समझ कर अन्य चेष्टा को छोड़कर उनके गुणों और नामों की चर्चा करनी चाहिए।''[15]

शंकरदेव तथा माधवदेव : आचार्य विष्णुकांत शास्त्री लिखते हैं कि ''भक्तप्रवर शंकरदेव असमीया-साहित्य के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। सूर, तुलसी आदि की तरह ही वे भक्त पहले हैं, कवि बाद में, किंतु सूर, तुलसी के समान ही उनके काव्य में भी भक्तिभाव की भागीरथी के साथ कला की कालिंदी का दिव्य संगम हुआ है। वास्तव में शंकरदेव मध्ययुग के अखिल भारतीय महान भक्ति-आंदोलन के दिव्य प्रवर्तकों में एक थे। यह उन्हीं का पुण्य प्रताप है कि आसाम की भूमि आज भी राम-कृष्ण की भक्ति-निर्झरिणी से निरंतर सिंचित हो रही है।''[16]

राम साहित्य की चर्चा के अंतर्गत उनका उल्लेख करने का कारण यह है कि उन्होंने माधव कंदली की अपूर्ण रामायण को पूर्ण करने लिए स्वयं उत्तरकांड की रचना की। सच्चे वैष्णव की तरह शंकरदेव राम-कृष्ण में अंतर नहीं करते थे। उन्होंने राम को भी परम ब्रह्म माना और उनकी भी परम भक्ति के साथ वंदना की। यह सही है कि शंकरदेव ने वाल्मीकि के उत्तरकांड के आधार पर ही अपना उत्तरकांड लिखा, किंतु यह कोरा अनुवाद न था। शास्त्री जी आगे लिखते हैं कि– ''शंकरदेव की यह विशेषता रही है कि प्रत्येक घटना के अनंतर वे जन-साधारण को भक्ति करने का उपदेश देने का अवकाश निकालते हैं, किंतु इसका यह अर्थ नहीं कि वे भावोत्कर्ष की तरफ ध्यान नहीं देते। सीता के पाताल-प्रवेश का दृश्य करुण रस के कारण अत्यंत मर्मस्पर्शी हो गया है। सीता पाताल-प्रवेश के लिए स्वर्गासिंहासन पर बैठ चुकी हैं। परम विरह की घड़ी निकट आई जान उनकी भावनाएँ अश्रुधारा के रूप में फूट पड़ी हैं, रोते-रोते ही वे लव-कुश को भ्रातृस्नेह का उपदेश देती हैं, तदंतर राम से अंतिम बार विदा माँगती हैं। ज्यों ही सिंहासन उन्हें लेकर पृथ्वी में धँस जाता है, त्यों ही राम संज्ञाहीन होकर भूमि पर गिर पड़ते हैं। शोक और दुख की तुमुल ध्वनि से सारा आकाश भर गया।''[17]

इसके बाद भी राम-कथा के व्यापक प्रभाव को दर्शाते हुए विभिन्न काल-खंडों में बहुत-सी रचनाएँ और भी सामने आती हैं। माधवदेव का आदिकांड, अनंत ठाकुर आता का रामकीर्तन रामायण तथा रघुनाथ महंत के कथा-रामायण का असमीया साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान है। रामायण की घटनाओं पर आधारित नाटक

लिखने का श्रेय सर्वप्रथम शंकरदेव को है। श्रीराम विवाह के प्रसंग को लेकर लिखे गए उनके नाटक सीता स्वयंवर या रामविजय नाट काफी प्रसिद्ध रहे हैं। गुणाभिराम बरुवा ने रामजन्म पर एक छोटा-सा नाटक रामनवमी नाटक के नाम से लिखा, जो असमीया भाषा में आधुनिक शैली में लिखा पहला नाटक माना जाता है। इसके अलावा और नाटक हैं, जिनकी असमीया साहित्य में राम कथा को समृद्ध करने में महत्वपूर्ण भूमिका रही है।

असमीया साहित्य में रामायण की घटनाओं पर आधारित काव्य भी लिखा गया है, जिसने आम जन-जीवन में राम कथाओं को मानस पटल पर अंकित करने में अहम भूमिका निभाई है। असमीया साहित्य के आदिकाल में हरिहर विप्र ने लवकुश नामक काव्य की रचना की थी। गंगाराम दास ने भी सीता-वनवास नामक काव्य सीता के निर्वासन की कथा के आधार पर लिखा है। आधुनिक युग में भोलानाथ दास ने मुक्त छंद में श्री सीताहरण काव्य नामक श्रेष्ठ खंडकाव्य की रचना की है।

मुझे लगता है राम जी के जीवन से प्रेरणा प्राप्त कर राम साहित्य की जो धारा माधव कंदली के लेखन से प्रारंभ हुई थी, वह निरंतर समृद्ध होती चली आई है। कवियों ने अपनी रचनाओं के द्वारा राम कथा का आम जनमानस के पटल पर एक अलग छाप छोड़ी है। हमारा विश्वास है कि आने वाले समय में भी हमारी गौरवपूर्ण परंपरा अक्षुण्ण रहेगी। राम की लोकोत्तर मर्यादाओं को असमीया साहित्य में जिस सहजता के साथ स्थानीय जन-मानस के लिए स्वीकार्य एवं सुगम बनाया है, वह स्तुत्य है। ❑

संदर्भ सूची :

- Dr. Raj Kumar Singh, Encyclopaedia of ASSAMESE LITERATURE, Volume 1, Anmol Publication Pvt.Ltd, New Delhi, Year-2009, Page no.-07, Introduction
- आचार्य विष्णुकांत शास्त्री, कवि निराला की वेदना तथा अन्य निबन्ध, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, वर्ष 1963, पृ. 111
- वही, पृ.-112
- वही, पृ.-113
- वही, पृ.-113
- वही, पृ.-115
- वही, पृ.-115
- वही, पृ.-116
- वही, पृ.-116

প্রবন্ধ

বহুভাষিকতা ঃ এক সমাজভাষাতাত্ত্বিক পৰিঘটনা

ড° সেউজী শর্মা

১.০ প্রস্তাবনা ঃ

বহুভাষিকতা হৈছে এক সমাজ-ভাষাতাত্ত্বিক পৰিঘটনা। ই বহুলভাৱে প্ৰচলিত এক পদ্ধতি যিটো সঘনাই সমাজ ব্যৱস্থাত পৰিলক্ষিত হয়। ই এনে এক পৰিঘটনা য'ত কোনো এজন ব্যক্তিয়ে এটা নিৰ্দিষ্ট ভাষাতকৈ অধিক ভাষাৰ ব্যৱহাৰ জানে। যেতিয়া একভাষী ব্যক্তি এজনে দুটাতকৈ অধিক ভাষাৰ ওপৰত পাৰদৰ্শিতা দেখুৱায়, তেতিয়াই বহুভাষিকতাৰ সৃষ্টি হয়।

২.০ বহুভাষিকতা আৰু ভাৰত ঃ

পৃথিৱীৰ ভিতৰত এক অন্যতম বহুভাষিক ৰাষ্ট্ৰ হৈছে ভাৰতবৰ্ষ। ই হৈছে বহুভাষিক আৰু বহুসাংস্কৃতিক লোকৰ মিলনথলী। ভাৰতীয়সকল বিভিন্ন ভাষিক গোষ্ঠীৰ অন্তৰ্গত। আৰ্য্য-ভাৰতীয় (অসমীয়া, বাংলা আদি), তিব্বতবৰ্মীয় (বড়ো, তিৱা, মণিপুৰী আদি) দ্ৰাবিড় (কানাড়া,মালায়ালম, তামিল আদি) অষ্ট্ৰ'-এছিয়াটিক (চাওতালী, মুণ্ডা আদি) এই বিভিন্ন ভাষা পৰিয়ালৰ অন্তৰ্গত ভিন্ ভিন্ ভাষাৰে ভাৰত সমৃদ্ধ। ভাৰতৰ মুঠ জনসংখ্যাৰ প্ৰায় ৭৮ শতাংশ লোক আৰ্য্য-ভাৰতীয় আৰু ২০ শতাংশ লোক দ্ৰাবিড়ীয় ভাষা-পৰিয়ালৰ অন্তৰ্ভুক্ত বুলি ক'ব পাৰি। পাপুৱা নিউ গিনিয়া আৰু নাইজেৰিয়াৰ পিছতেই ভাৰতে বিভিন্ন ভাষা-ভাষী লোকৰ বসতিস্থল হিচাপে বিশ্বৰ তৃতীয় স্থান অধিকাৰ কৰিছে। মানুহে ধাৰাবাহিকভাৱে একাধিক ভাষা ব্যৱহাৰ কৰি আহিছে আৰু এটা ভাষাৰ আন এটা ভাষাৰ ওপৰত পৰা প্ৰভাৱ ঋণ শব্দৰ ৰূপত প্ৰায় সকলো ভাষাতেই দেখা যায়। আমি জানো যে ভাৰতৰ ৰাজ্যসমূহ কেতিয়াও ভাষিক ক্ষেত্ৰত একে নাছিল। ভাষাসমূহৰ মাজত অথবা উপভাষা সমূহৰ মাজত অথবা দুয়োটাৰ ক্ষেত্ৰত বহুভাষিকতাৰ কিবা নহয় কিবা ৰূপ আছেই। বৰ্তমান ভাৰতত কোনো ৰাজ্য অথবা স্বায়ত্বশাসিত অঞ্চল একভাষিক নহয়। (People have been using more than one language simultaneously and the influence of one language on the other could be seen in almost all the language in the form of loan words. We find that states of India have never been linguistically homogenous. There has been always some form of multilingualism, between language or dialects or both. At present there is not a single State or Union Territory that is monolingual. J.C. Sharma. P2)

ভাষাতত্ব বিভাগ
গুৱাহাটী বিশ্ববিদ্যালয়,
গুৱাহাটী-৭৮১০১৪
ম'বাইল ঃ ৯৮৬৪২২১০৭৩

বৰ্তমান ভাৰতত এনে এক সমাজ-ব্যৱস্থা বৰ্তি থকা দেখা গৈছে যে প্ৰায় প্ৰতিজন ব্যক্তিয়েই, যিসকল বিভিন্ন, সামাজিক, অৰ্থনৈতিক অথবা পৰিবেশজনিত কাৰণত অন্য ঠাইলৈ যাবলগীয়া হৈছে, তেওঁলোক হয় দ্বিভাষী অথবা বহুভাষী। আনকি এজন একভাষী ব্যক্তিয়েও নিজৰ ভাষাৰ উপৰিও আন এটা ভাষা অতিৰিক্তভাৱে জানে আৰু সময় তথা পৰিস্থিতি সাপেক্ষে নিজৰ দক্ষতা প্ৰকাশ কৰিও আহিছে। এনে এক ভাষিক পৰিস্থিতিত বক্তাসকলৰ অভ্যাসগত ভাষা নিৰ্ধাৰণে তেওঁলোকে ব্যৱহাৰ কৰা ভাষাৰ ওপৰত প্ৰভাৱ পেলোৱা পৰিলক্ষিত হয়। ই সম্পূৰ্ণৰূপে এক বক্তা নিৰ্ভৰ ভাষিক পৰিস্থিতি। " বহুক্ষেত্ৰত দেখা যায় যে বক্তাসকলে আনৰ সৈতে কথোপকথনত তেওঁলোকৰ ভাষা ব্যৱহাৰ কৰিব পাৰে, কিন্তু দৰাচলতে কিছুমান ভাষাৰ ব্যৱহাৰ কেতবোৰ প্ৰসংগ (নিৰ্দিষ্ট পৰিবেশ, বিষয়, কথোপকথনত জড়িত ব্যক্তিৰ দল আদি)ৰ লগত বিশেষভাৱে জড়িত হৈ থাকে।" (In many cases speakers could, in principle, use many of their languages in interaction with others, but in practice certain languages tend to be associated with certain contexts. (with certain settings, topics, groups of interalocutors and so on. John Swann, P-153) সাধাৰণতে ভাৰতৰ ভাষিক পৰিস্থিতিলৈ লক্ষ্য কৰিলে দেখা যায় যে এনে এক ভাষিক পৰিবেশত বক্তাসকলে অভ্যাসগত ভাষা নিৰ্ধাৰণ কৰোতে হিন্দী ভাষাকে প্ৰাধান্য দিয়ে। হিন্দী হৈছে দেৱনাগৰী লিপিত লিখা এক আৰ্য্য-ভাৰতীয় ভাষা। ভাৰতৰ ভাষাসমূহৰ ভাষিক অৱস্থান লক্ষ্য কৰিলে দেখা যায় যে ভাৰতৰ দুটা কাৰ্য্যালয়ত ব্যৱহৃত ভাষা আছে। তাৰে এটা হৈছে হিন্দী। ভাৰতৰ নখন ৰাজ্য আৰু তিনিটা স্বায়ত্ব শাসিত অঞ্চলৰ ই হৈছে কাৰ্য্যালয়ত ব্যৱহৃত ভাষা। তাৰোপৰি, তিনিখন অন্য ৰাজ্যত ই এক অতিৰিক্ত কাৰ্য্যালয়ত ব্যৱহৃত ভাষাৰূপে স্বীকৃতি পাইছে। আন্দামান-নিকোবৰ দ্বীপপুঞ্জ, বিহাৰ, দাদৰা আৰু নগৰী হাভেলী, দমন আৰু দিউ, চত্তিছগড়, দিল্লী, গুজৰাট, হাৰিয়ানা, হিমাচল প্ৰদেশ, জম্মু-কাশ্মীৰ, ঝাৰখণ্ড, লাডাখ, মধ্যপ্ৰদেশ, ৰাজস্থান, উত্তৰ প্ৰদেশ, উত্তৰাখণ্ড, পশ্চিমবঙ্গত হিন্দী কাৰ্য্যালয়ত ব্যৱহৃত ভাষা হিচাপে স্বীকৃত। আনহাতে গোৱা, মেঘালয়, মিজোৰাম, নাগালেণ্ড, চিকিম, ত্রিপুৰাত ইংৰাজী ভাষাক কাৰ্য্যালয়ত ব্যৱহৃত ভাষা হিচাপে স্বীকৃতি দিয়া হৈছে। কিন্তু এইসমূহ অঞ্চলত আন কেতবোৰ স্থানীয় ভাষাও কাৰ্য্যালয়ত ব্যৱহাৰ কৰা হয়। উদাহৰণস্বৰূপে, গোৱাত কোংকানী, মেঘালয়ত খাছী আৰু গাৰো, মিজোৰামত মিজো, ছিকিমত নেপালী, ছিকিমিজ, লিপ্চা আৰু ত্রিপুৰাত বাংলা আৰু কক্বৰক এই ভাষাসমূহেও কাৰ্য্যালয়ত ব্যৱহৃত ভাষা হিচাপে মৰ্য্যদা লাভ কৰি আহিছে। ইংৰাজী ভাষাক অন্ধ্ৰপ্ৰদেশ, হাৰিয়ানা, কৰ্ণাটক, কেৰালা, মণিপুৰ আৰু তামিলনাড়ুত অতিৰিক্ত কাৰ্য্যালয়ত ব্যৱহৃত ভাষা হিচাপে স্থান দিয়া হৈছে।

বহুভাষিকতাৰ ধাৰণাটোৱে ভাৰতীয় শিক্ষা ব্যৱস্থাৰ ওপৰতো যথেষ্ট প্ৰভাৱ পেলোৱা পৰিলক্ষিত হৈছে। বহুভাষিক শিক্ষা পদ্ধতিয়ে ছাত্ৰ-ছাত্ৰীক নতুন ধাৰণা সহজতে আয়ত্ব কৰাত সহায় কৰে। বহুভাষিক শিক্ষা ব্যৱস্থা সম্পৰ্কে ৰাজেন্দ্ৰ মিস্ত্ৰীৰ কথাখিনি এই ক্ষেত্ৰত প্ৰণিধানযোগ্য। তেওঁৰ মতে, বৰ্তমান গোটেই পৃথিৱীতে দ্বিভাষিকতা এক সাধাৰণ ঘটনা হৈ পৰিছে। বহুতো বিদ্যালয়ত এনে এক নীতি প্ৰৱৰ্তন কৰা হৈছে যিয়ে কোনো এক অঞ্চলৰ ভিতৰত সম্পৰ্কৰ পৰ্য্যায়গত অৱস্থাক চিহ্নিত কৰে। লগতে ই পৃথিৱীৰ ভাষিক ব্যৱস্থাকো পৰ্য্যায়ভুক্ত কৰে। ১৯৫০ চনৰ পৰা আৰম্ভ হৈছে যদিও, বিশেষকৈ ১৯৭০ চনৰ পৰাহে, শিক্ষাবিদসকলে এই ধাৰণাটো গ্ৰহণ কৰিব ধৰিছে যে বহুসাংস্কৃতিকতা আৰু বহুভাষিকতা — এই পৰিঘটনা দুটাক ক্ষণিক ঘটনা বুলি ভৰাৰ পৰিবৰ্তে উৎসাহিত কৰিব লাগে। (While bilingualism is common throughout the world, many schools have a policy that recognizes (and replicates) the hierarchy of relations within a territory and in the world as a whole.... since the 1950s, and more especially since the 1970s educationists have begun to recognize that multiculturalism and multilingualism are phenomena which should be encouraged rather than treated as if they are transient.- Rajend Masthrie, P-39) ভাৰতীয় শিক্ষা ব্যৱস্থাৰ ক্ষেত্ৰতো এই কথাখিনি প্ৰযোজ্য। জে.চি. শৰ্মাৰ মতামতো এইক্ষেত্ৰত উনুকীয়াব পাৰি। তেওঁ কৈছে যে ভাৰতীয় শিক্ষা পদ্ধতি প্ৰকৃততেই বহুভাষিক। মুম্বাই পৌৰ নিগমৰ অধীনত চলা প্ৰাথমিক বিদ্যালয়সমূহত নটা ভাষাত শিক্ষাদানৰ ব্যৱস্থা কৰা হৈছে। কৰ্ণাটকৰ প্ৰাথমিক বিদ্যালয়ত আঠটা ভাষাত শিক্ষা প্ৰদান কৰা হয়। পশ্চিম বঙ্গৰ

মাধ্যমিক বিদ্যালয়সমূহে ১৪ টা ভাষাৰ পৰা ছাত্র-ছাত্রীসকলক ভাষা নির্বাচন কৰাৰ সুবিধা প্রদান কৰিছে। সমগ্র দেশত ত্রিভাষা নীতিয়ে আমাৰ শিক্ষা-ব্যৱস্থাৰ বহুভাষিক অৱস্থাৰ বিকাশ অধিক শক্তিশালী কৰাৰ লক্ষ্যৰে অগ্রসৰ হৈছে। (The Indian Education system is truly multilingual in its character. The Bombay Municipal Corporation runs primary school in nine languages. The Karnataka state runs primary schools in eight-languages. The secondary schools in West Bengal give their students the option to choose from 14 language. The three language formula widely in the country aims at developing and strengthening the multilangual character of our educationate system. -J.C. Sharma)

৩.০ বহুভাষিকতাৰ লগত জড়িত কেতবোৰ ধাৰণা ঃ

বহুভাষিকতা, দ্বিভাষিকতা অথবা যিকোনো ভাষিক পৰিস্থিতিৰ লগত কিছুমান সাধাৰণ তথা সার্বজনীন ধাৰণা জড়িত হৈ আছে। সেইসমূহৰ বিষয়ে চমুকৈ আলোচনা কৰা হ'ল—

৩.১ আঞ্চলিক ভাষা (Vernacular languge)

আঞ্চলিক ভাষাসমূহৰ উৎপত্তিস্থল হৈছে একো একোটা অঞ্চল। অঞ্চল নির্ভৰ এনে ভাষাসমূহ বক্তাই খুব সাধাৰণভাৱে, অনানুষ্ঠানিকভাৱে ব্যৱহাৰ কৰে। এই ভাষাসমূহ কোনো গোষ্ঠী, অথবা কোনো বিশেষ বৃত্তিত জড়িত লোক অথবা অঞ্চল বিশেষে কথিত ৰূপতহে বেছিকৈ ব্যৱহাৰ কৰা দেখা যায়। লিখিত ৰূপৰ তুলনাত কথিত ৰূপত ইয়াৰ ব্যৱহাৰ বেছি। জেনেট হোম্চৰ মতে, Vernacular শব্দটোক তিনিটা অর্থত ব্যৱহাৰ কৰিব পাৰি। ইয়াৰ প্রাথমিক ৰূপটোৱে সূচায় যে Vernacular হৈছে ভাষাৰ এক অ-পৰিশোধিত অথবা মান্যতাহীন ৰূপ। দ্বিতীয় অর্থটো ইয়াৰ আহৰণ পদ্ধতিৰ লগত জড়িত। সাধাৰণতে ঘৰত প্রথম ভাষা হিচাপে এই ৰূপটো ব্যৱহাৰ কৰা হয়। তৃতীয়তে এই ৰূপটো তেনেই সীমিত পৰিসৰৰ ভিতৰতহে ব্যৱহাৰ কৰা হয়। সাধাৰণতে Vernacular শব্দটো ইয়াৰ প্রথম অর্থৰ লগতহে অধিক সংযুক্ত হৈ থকা দেখা যায়। কিন্তু দৰাচলতে শব্দটোৰ দ্বিতীয় আৰু তৃতীয় অর্থৰ লগতো ই জড়িত হৈ গোটেই শব্দটোকেই এক নতুন সংজ্ঞা দিছে। (There are three components of the meaning of the term vernacular, then, the most basic refers to the fact that a vernacular is an uncodified or unstandardised variety. the second refers to the way it is acquired in the home, as a first variety. The third is the fact that it is used for relatively circumscribed functions. The first component has been most widely used as the defining criterion, but emphasis on one or other of the components has led to the use of the term vernacular with some what different meanings. Janel Holmes, P-74)

৩.২ ভাষা নির্বাচন আৰু ভাষা ক্ষেত্র (Language choice and Domains of language use) ঃ

সাধাৰণতে দেখা যায় যে যেতিয়া কোনো বক্তাই ভাষা নির্বাচন কৰে, তেতিয়া কিছুমান কাৰকৰ দ্বাৰা প্রভাৱিত হয়। উদাহৰণস্বৰূপে, বক্তাজনে কাৰ লগত কথা পাতিছে, কথা পতাৰ সময়ত সামাজিক পৰিবেশ কেনেকুৱা, কথোপকথনৰ উদ্দেশ্য, বিষয় আদি বিভিন্ন কাৰকে ভাষা নির্বাচনত প্রভাৱ পেলায়। কথোপকথনত অংশ গ্রহণ কৰা কোনো ব্যক্তিয়ে কেতিয়া, কি ভাষা ব্যৱহাৰ কৰিব সেয়া সম্পূর্ণৰূপে এনে ধৰণৰ পৰিঘটনাসমূহে নির্ধাৰণ কৰে। " বহুত ভাষাগোষ্ঠীৰ কথোপকথনসমূহক, ভাষা নির্বাচনৰ যিবোৰ ৰূপ বা পদ্ধতি আছে, সেইসমূহৰ বাবে প্রয়োজনীয় বুলি ধৰা হয়। কথোপকথনৰ এই বিশেষ ধৰণৰ পৰিবেশজনিত পদ্ধতিসমূহক ভাষা ক্ষেত্র বুলি ক'ব পাৰি। আমেৰিকান সমাজ ভাষাতত্ত্ববিদ Joshua Fishnan এ এই শব্দটো জনপ্রিয় কৰি তুলিছিল। কোনো এক ক্ষেত্রই এক বিশেষ পৰিবেশত অংশগ্রহণকাৰীসকলৰ মাজত এক বিশেষ ধৰণৰ কথোপকথনক বুজায় (A number of such interactions have been identified as relevant in describing patterns of code choice in many speech communities. They are known as domains of language use, a term popularized by an American sociologist Joshua Fishman. A domain involves typical interactions between participants in typical settings - Janet Holmes, P.21)

ভাষাবিজ্ঞানীসকলে ভাষা ক্ষেত্রসমূহক ভাষিক পৰিবেশ অনুযায়ী কেতবোৰ নির্দিষ্ট ক্ষেত্রত ভাগ কৰিছে। যেনে পৰিয়াল, বন্ধুত্ব, কার্য্যালয় আদি। Fishnan এ উল্লেখ কৰি থৈ যোৱা এনে কেতবোৰ ভাষা ক্ষেত্র হ'ল এনেধৰণৰ ঃ

ভাষাক্ষেত্ৰ	সম্বোধনকৰ্তা	পৰিবেশ	বিষয়	ভাষা
পৰিয়াল	পিতৃ-মাতৃ	ঘৰ	পৰিয়ালত এক শুভ অনুষ্ঠানৰ আয়োজন কৰা প্ৰসংগ	.....
বন্ধুত্ব	বন্ধু	নৈৰ পাৰ	কেনেকৈ সাঁতুৰিব পাৰি অথবা মাছ মাৰিব পাৰি সেই বিষয়ে	.....
ধৰ্ম	পুৰোহিত/ভকত	মন্দিৰ/নামঘৰ	পূজা, সভা কেনেকৈ অনুষ্ঠিত কৰিব পাৰি সেই সন্দৰ্ভত	.....
শিক্ষা	শিক্ষক	বিদ্যালয়	অংকৰ বিষয় এটা বুজোৱাৰ প্ৰসংগত	.....
নিয়োগ	নিয়োগকৰ্তা	কাৰ্য্যালয়	পদোন্নতিৰ বাবে আবেদন কৰা সন্দৰ্ভত	.....

এই ভাষা ক্ষেত্ৰসমূহ মাত্ৰ কেইটামান উদাহৰণহে। এই প্ৰসঙ্গত এটা কথা উনুকিয়াব লাগিব যে ভাষা ক্ষেত্ৰত বিভিন্ন ধৰণৰ প্ৰসঙ্গৰ অৱতাৰণা ঘটিব পাৰে। কিন্তু এই সকলোবোৰ বক্তা আৰু পৰিবেশৰ ওপৰত নিৰ্ভৰ কৰে। ভাষা নিৰ্ধাৰণৰ ক্ষেত্ৰত আন কেতবোৰ কাৰকেও প্ৰভাৱ বিস্তাৰ কৰা দেখা যায়। উদাহৰণ স্বৰূপে, কথোপকথনত অংশ গ্ৰহণ কৰোতাসকলৰ সামাজিক দূৰত্বক এনে এক কাৰক হিচাপে ধৰিব পাৰি। ঠিক তেনেদৰে, কথোপকথনত অংশগ্ৰহণ কৰা ব্যক্তিসকলৰ মাজৰ সামাজিক সম্পৰ্ক, কথোপকথনৰ লক্ষ্য,উদ্দেশ্য আদিয়েও ভাষাক্ষেত্ৰ নিৰ্ধাৰণত তথা ভাষা নিৰ্বাচনত সহায় কৰে।

৩.৩ ভাষা সলনি আৰু ভাষা মিশ্ৰণ (Code switcting and code nixing)

ভাষা সলনি আৰু ভাষা মিশ্ৰণ ধাৰণা দুটা কথোপকথন কাৰ্য্যৰ লগত জড়িত। সাধাৰণতে এই শব্দ দুটা সলনা সলনিকৈ ব্যৱহাৰ কৰা হয়। 'Code' বা সংকেত এনে এক ধাৰণা যি ভাষা, উক্তি, উপভাষা অথবা ভাষাৰ ৰূপ হ'ব পাৰে। এক বহুভাষিক সমাজ ব্যৱস্থাত মানুহে আন বেলেগ বেলেগ ভাষাৰ মানুহৰ লগত কথা বতৰা হয়। বিভিন্ন ভাষা-ভাষী মানুহে যেতিয়া এজনে আনজনৰ লগত ভাব বিনিময় কৰে, তেতিয়া প্ৰচুৰ পৰিমাণে ভাষা সলনি আৰু ভাষা সংমিশ্ৰণ হয়। ভাষা সলনি অথবা ভাষা ৰূপান্তৰকৰণে কথোপকথনত ব্যৱহৃত ভাষাৰ এটাৰ পৰা আনটোলৈ ৰূপান্তৰ বুজায়। ই সাধাৰণতে দুই প্ৰকাৰৰ হ'ব পাৰে ঃ আন্তঃ বাক্যীয় (intrasentential) আৰু আন্তৰ্বাক্যীয় (intersentential)। যেতিয়া একেটা বাক্যতে দুটা বেলেগ বেলেগ ভাষাৰ শব্দ ব্যৱহাৰ কৰা হয়, তেতিয়া ইয়াক আন্তঃবাক্যীয় ভাষা সলনি বুলি ক'ব পাৰি। আনহাতে যদি ভাষা সলনি কাৰ্য্য কেৱল এটা বাক্যৰ ভিতৰত নহয়, এটাতকৈ অধিক বাক্যৰ ক্ষেত্ৰতহে দেখা যায়, তেতিয়া এই পৰিঘটনাটোক আন্তৰ্বাক্যীয় বুলি অভিহিত কৰিব পাৰি। এনেধৰণৰ পৰিস্থিতিত ভাষা সলনিৰ ফলত এটা বাক্যৰ পৰিসৰ অতিক্ৰমি আন এটা বাক্যত বেলেগ এটা ভাষা ব্যৱহাৰ কৰা দেখা যায়। মানুহে বিভিন্ন কাৰণত ভাষা সলনি কৰে। বহুভাষিক আৰু বহুসাংস্কৃতিক শ্ৰেণীকোঠাত ভাষা সলনি আৰু ভাষা সংমিশ্ৰণে শিক্ষকক নতুন নতুন বিষয়সমূহ ছাত্ৰ-ছাত্ৰীক শিকোৱাৰ ক্ষেত্ৰত যথেষ্ট পৰিমাণে সহায় কৰে। বিভিন্ন ভাষাভাষী ছাত্ৰ-ছাত্ৰীৰে ভৰি থকা শ্ৰেণীকোঠাত ভাষা সলনি আৰু ভাষা মিশ্ৰণে শিকা বিষয় এটিৰ অৰ্থ স্পষ্টকৈ বুজাত আৰু ছাত্ৰ-ছাত্ৰীৰ জ্ঞানৰ পৰিসৰ বৃদ্ধিত অৰিহণা যোগায়। এই খিনিতে এটা কথা মন কৰিবলগীয়া যে ভাষা সলনি আৰু ভাষা মিশ্ৰণ দুয়োটা ধাৰণাৰ মাজত এক নিবিড় আৰু আন্তঃ ব্যৱহাৰিক সম্পৰ্ক আছে। কাৰণ, দুয়োটা প্ৰক্ৰিয়া ভাষা ব্যৱহাৰৰ লগত জড়িত। দুয়োটা প্ৰক্ৰিয়াতে একাধিক ভাষাৰ প্ৰয়োগৰ জৰিয়তে মানুহে পাৰস্পৰিক ভাব-চিন্তাৰ আদান-প্ৰদান কৰে।

৩.৪ সংযোগী ভাষা (Lingua franca)

সংযোগী ভাষা হৈছে মানুহৰ মাজৰ যোগাযোগৰ এক মাধ্যম। যেতিয়া মানুহৰ মাতৃভাষা ভিন্ ভিন্ হয়,

অথচ তেওঁলোকে পৰস্পৰে পৰস্পৰৰ সৈতে যোগাযোগ কৰিবলগীয়া পৰিস্থিতিৰ সৃষ্টি হয়, তেতিয়া তেওঁলোকে এনে এক ভাষাৰূপৰ সহায় লয় যিয়ে তেওঁলোকৰ মাজত সংযোগ সাধনত সহায় কৰে। সংযোগী ভাষা এই ধাৰণাটো বহুভাষিকতাৰ লগত জড়িত। যেতিয়া এক বহুভাষিক সমাজ ব্যৱস্থাত বিভিন্ন ভাষাগোষ্ঠীৰ মাজত সংযোগ স্থাপনৰ অৰ্থে কোনো এক নিৰ্দিষ্ট ভাষা ব্যৱহাৰ কৰা হয়, তেতিয়াই ই সংযোগী ভাষাৰ ৰূপ পায়। সাধাৰণতে দেখা যায় যে সংযোগী ভাষাসমূহ প্ৰথমতে ব্যৱসায়-বাণিজ্যৰ ক্ষেত্ৰত ব্যৱহাৰ কৰা ভাষা হিচাপে গঢ় লৈ উঠে, আৰু ইয়ে ভাষা পৰিৱৰ্তনৰ ক্ষেত্ৰত অৰ্থনৈতিক কাৰকৰ প্ৰভাৱৰ বিষয়ে জনায়। "কিছুমান দেশত সৰ্বাধিক উপযোগী আৰু বহুল ব্যৱহৃত সংযোগী ভাষা হৈছে এক কাৰ্য্যালয় সম্বন্ধীয় ভাষা অথবা জাতীয় ভাষা।" (In some countries the most useful and widely used lingua franca is an official language or the national language, - Janet Holmes, P.79)

বহুভাষিক সমাজৰ কাৰণে সংযোগী ভাষাৰ উপযোগিতা বহুত আৰু এইসমূহৰ এক বহুভাষিক প্ৰসংগতহে উত্থান ঘটে। কেতিয়াবা এনে সংযোগী ভাষাই এক জাতীয় ভাষা অথবা কাৰ্য্যালয়ত ব্যৱহৃত ভাষাৰূপে পৰিগণিত হয়।

৩.৫ পিজিন আৰু ক্ৰেঅ'ল (Pidgin and Creole) ঃ

কেতিয়াবা বিভিন্ন ভাষাভাষী গোষ্ঠীসমূহৰ মাজৰ সংযোগৰ ফলত একো একোটা নতুন ভাষাৰূপৰ সৃষ্টি হয়। এই নতুন ভাষাৰূপৰ পৰিণতিয়েই হৈছে পিজিন আৰু ক্ৰেঅ'ল। যেতিয়া দুই বা ততোধিক ভাষাৰ উপাদানসমূহ লগ লাগি এক নতুন ৰূপৰ সৃষ্টি কৰে যিটো ৰূপ কোনো এটা নিৰ্দিষ্ট ভাষাৰ অৱদান নহয়, অথচ যিটো ৰূপৰ মাধ্যমত দুই বা ততোধিক ভাষাভাষী লোকৰ মাজত ভাষিক সংযোগ স্থাপিত হয়, সেই ৰূপটোকে পিজিন বোলে। ই কাৰো নিজস্ব ভাষা অথবা মাতৃভাষা নহয়। যিকেইটা ভাষাগোষ্ঠীৰ লোক এজন আনজনৰ সংস্পৰ্শলৈ আহে, পিজিনে সেই ভাষাসমূহৰ পৰা কেতবোৰ উপাদান লৈ লয় আৰু উপাদানসমূহৰ সংমিশ্ৰণত স্বতন্ত্ৰভাৱে আত্মপ্ৰকাশ কৰে। পিজিন সৃষ্টিৰ মূলতে হৈছে কেৱল যোগাযোগ ব্যৱস্থাৰ সুবিধা। পিজিন আৰু ক্ৰেঅ'ল দুয়োটাৰ ভাষাৰ যোগাযোগৰ বাবেই সৃষ্টি যদিও পিজিন আৰু ক্ৰেঅ'ল দুয়োটাৰে প্ৰকৃতি আৰু কাৰ্যসাধনত পাৰ্থক্য পৰিলক্ষিত হয়। যেতিয়া পিজিন একোটা সুদীৰ্ঘ সময়ৰ বাবে কোনো জনগোষ্ঠীৰ মাজত প্ৰথম ভাষা হিচাপে ব্যৱহাৰ কৰা হয়, তেতিয়া ই ক্ৰেঅ'লৰ মৰ্য্যদা লাভ কৰে। পিজিনৰ ভাষিক গাথনি খুব সৰল। কিন্তু ক্ৰেঅ'লৰ ব্যাকৰণগত বিষয়সমূহ তথা ভাষিক গাথনি যথেষ্ট জটিল। তাৰোপৰি ক্ৰেঅ'ল শব্দ সম্ভাৰেৰে সমৃদ্ধ। ভাষাবিজ্ঞানৰ বিশাল ক্ষেত্ৰখনৰ বিভিন্ন দিশ, যেনে ব্যাকৰণিক বৈশিষ্ট্যসমূহ, ভাষা আহৰণ, দ্বিতীয় ভাষা শিক্ষণ, ভাষা নীতি, বিশ্বায়ন, বহুভাষিকতা আদি বিভিন্ন বিষয়ৰ জটিল ধাৰণাসমূহ ব্যাখ্যা কৰাত পিজিন আৰু ক্ৰেঅ'লে সহায় কৰে।

৩.৬ ডাইগ্ল'ছিয়া আৰু পলিগ্লছিয়া (Diglossia and Polyglossia) ঃ

এই দুয়োটা ধাৰণা ভাষাৰ বেলেগ বেলেগ ৰূপৰ লগত জড়িত। যেতিয়া ভিন্ ভিন্ পৰিবেশত এটা ভাষাৰ ভিন্ ভিন্ ৰূপ সেই ভাষাটো কোৱা লোকসকলে ব্যৱহাৰ কৰে, তেতিয়া তাক ডাইগ্ল'ছিয়া বুলি কোৱা হয়। এই ধাৰণা অনুসৰি, ভাষা একোটাত দুটা ৰূপ থাকে 'উচ্চ ৰূপ' (High Variety) আৰু 'নিম্ন ৰূপ' (Low Variety) সাধাৰণতে দেখা যায় যে ভাষাটোৰ উচ্চ ৰূপটো লিখিত অথবা মান্য ৰূপ যিটো কেৱল আনুষ্ঠানিক পৰিবেশতহে ব্যৱহাৰ কৰা যায়। আনহাতে 'নিম্ন ৰূপ'টো অনানুষ্ঠানিক পৰিবেশত ব্যৱহাৰ কৰা হয় আৰু ই ভাষাটোৰ মান্য ৰূপ নহয়। অৰ্থাৎ একেটা ভাষাৰে দুটা ভিন্ ভিন্ ৰূপ থাকে যি পৰিস্থিতি আৰু প্ৰসঙ্গ অনুযায়ীহে ব্যৱহৃত হয় আৰু ভাষাটো কোৱা প্ৰতিজন লোকেই এই কথাটো স্বীকাৰ কৰি ভাষাটো ব্যৱহাৰ কৰে। "ডাইগ্ল'ছিয়া পদটোৰ ঠেক আৰু প্ৰকৃত অৰ্থ চাবলৈ গ'লে, ই তিনিটা গুৰুত্বপূৰ্ণ বৈশিষ্ট্য বহন কৰে —

১। নিৰ্দিষ্ট ভাষাগোষ্ঠীটোত একেটা ভাষাৰে দুটা পৃথক ৰূপ ব্যৱহাৰ কৰা হয়, এটাক উচ্চ (H) ৰূপ আৰু আনটোক নিম্ন (L) ৰূপ হিচাপে গণ্য কৰা হয়।

২। প্ৰতিটো ৰূপেই কেতবোৰ বিশিষ্ট কাৰ্য্য সাধনৰ বাবে প্ৰয়োগ কৰা হয়; H আৰু L এটা আনটোৰ পৰিপূৰক।

৩। কোনেও দৈনন্দিন কথোপকথনৰ বাবে উচ্চ ৰূপটো ব্যৱহাৰ নকৰে। (In the narrow and original sense of the term, diglossia has three crucial features-1. Two distinct varieties of the same language are used in the community with one

regarded as a high (or H) variety and the other as low (or low) variety. 2. Each variety is used for quite distinct functions; H and L complement each other. 3. No one uses the H variety in every day conversation." -Janet Holmes, P.27)

পলিগ্লাছিয়া হৈছে একেটা ভৌগোলিক ক্ষেত্রত থকা বিভিন্ন ভাষাৰ সহাবস্থান। এক নির্দিষ্ট ভূখণ্ডত এক নির্দিষ্ট সংস্কৃতিৰ ভিতৰতে যেতিয়া বিভিন্ন ভাষাৰ মাজত যোগাযোগ স্থাপন হয়, তেতিয়া পলিগ্লছিয়াৰ সৃষ্টি হয়।

ডাইগ্লছিয়া আৰু পলিগ্লছিয়া দুয়োটা দৰাচলতে বহুভাষিক পৰিস্থিতিৰ সৃষ্টি।

৪.০ সামৰণি ঃ

বহুভাষিকতা সৃষ্টিৰ অন্তৰালত যি কাৰণেই নাথাকক কিয়, ইয়াৰ প্ৰভাৱ সমাজ এখনত সুদূৰপ্ৰসাৰী। বহুভাষিকতাৰ উপকাৰিতা যথেষ্ট পৰিমাণে দেখা পোৱা যায়। ই যোগাযোগ কৌশলৰ বৃদ্ধি কৰে আৰু ভাষিক জ্ঞান বৃদ্ধিত সহায় কৰে। শিক্ষাখণ্ডত ইয়াৰ উপকাৰিতা বহুত। ই ছাত্ৰ-ছাত্ৰীৰ সৃজন ক্ষমতাৰ বিকাশ ঘটোৱাৰ উপৰিও সাংস্কৃতিক সজাগতাৰ সৃষ্টি কৰে। ই শৈক্ষিক আৰু নৈতিক প্ৰমূল্য বৃদ্ধিতো অৰিহণা যোগায়। ভাষিক বৈচিত্ৰ্যৰ বাবে জনাজাত ভাৰতবৰ্ষৰ দৰে এখন দেশত এজন বহুভাষিক ব্যক্তিয়ে বিভিন্নসংস্কৃতিৰ সংস্পৰ্শলৈ অহাৰ জৰিয়তে যথেষ্ট ব্যক্তিগত অভিজ্ঞতা আহৰণ কৰিবলৈ সমৰ্থ হয়। বিশ্ব সজাগতা সৃষ্টিৰ ক্ষেত্ৰতো ই যিকোনো দেশকে সহায় কৰিব পাৰে আৰু এয়া ভাৰতৰ দৰে বিভিন্ন ভাষিক সাংস্কৃতিক গোষ্ঠীৰে সমৃদ্ধিশালী দেশৰ ক্ষেত্ৰতো প্ৰযোজ্য। সামৰণিত কবলৈ হ'লে, বহুভাষিকতা হৈছে যিকোনো বহুভাষী ব্যক্তিৰ কাৰণে সর্বাধিক উপযোগী এক সামাজিক ব্যৱস্থা। ❑

References:

1. Baker, Colin and Wayne E. Right, 2021, "Foundations of Bilingual Education and Bilingualism, 7th Edition, Multilingual Matters, Bristol, ISBN B: 978-1-78892-988-2.
2. Holmes, Janet, 2001, An Introduction sociolinguistics, 2nd Edition, Pearson Education Limited, ISBN-0-582-32861-5-PPR.
3. Anderson, R.A. 1980, Sociolinguistics, Cambridge University Press, ISBN-00521-29668-4
4. Mesthrie, Rajend, 2003, ' Clearing the Ground: Basic Issues Concepts and Approaches' Introducing Sociolinguistics, Edinburgh University Press, ISBN 0 7486 0773 0.
5. Sharma, J.C. 2001, " Multilingualism in India, Language in India, Vol 1. language in India .com/ dec2001/josharma2.html
6. Swach, John, 2000, "Campaign Choice and Code- Switchig" Introducing Sociolinguistics, Edinburgh University Press, ISBN-07486 11932.

প্রবন্ধ

বুৰঞ্জী সাহিত্যত ব্যৱহৃত সম্বন্ধবাচক ৰূপ

ড° কণিমা পাঠক

সহকাৰী অধ্যাপিকা, জাগীৰোড মহাবিদ্যালয়
মৰিগাঁও, অসম

সংক্ষিপ্তসাৰ ঃ

অসমীয়া ভাষাত খ্ৰীষ্টিয় সপ্তদশ শতিকাৰ পৰা ঊনবিংশ শতিকাৰ সময় ছোৱাৰ ভিতৰত ৰচিত সাহিত্য সমূহৰ ভিতৰত বুৰঞ্জী সাহিত্য সমূহ অন্যতম। এই সাহিত্যসমূহ আহোম স্বৰ্গদেউ সকলৰ পৃষ্ঠপোষকতাত ৰচিত হৈছিল। এই সাহিত্যসমূহত বিশেষকৈ আহোম স্বৰ্গদেউসকলৰ কথা, তেওঁলোকৰ শাসন কালৰ কথা, ৰজা ঘৰীয়া কার্য-কলাপ আৰু সেই সময়ৰ সমাজ-ব্যৱস্থাৰ কথাও প্ৰকাশ পাইছিল। আহোমৰ শাসন আৰু ৰজা ঘৰীয়া সমাজৰ কার্য-কলাপ-কীর্ত্তিৰ ইত্যাদিৰ পটভূমিত ৰচিত এই সাহিত্যসমূত ব্যৱহৃত ভাষাটো আধুনিক অসমীয়া ভাষাৰ ওচৰ চপা বুলি ক'ব পাৰি। এই সাহিত্যসমূহত ব্যৱহৃত হোৱা ভাষাটোত টাই-আহোম, অসমীয়া ভাষা, তৎসম, তদ্ভৱ আৰু অনান্য বিভিন্ন শব্দৰ ব্যৱহাৰ পোৱা যায়। এই শব্দসমূহ বস্তুবাচক, প্ৰাণীবাচক, সা-সঁজুলিবাচক, সম্বন্ধবাচক, সংখ্যাবাচক ইত্যাদি বিভিন্ন ধৰণে ভাগ কৰিব পাৰি। আমাৰ আলোচনাত কেবল বুৰঞ্জী সাহিত্য সমূহত ব্যৱহৃত সম্বন্ধবাচক শব্দ সমূহ আৰু এই শব্দ সমূহত ব্যাকৰণগত বৈশিষ্ট্য বা সম্বন্ধবাচক শব্দৰ গঠন সম্পর্কে আলোচনা কৰা হৈছে।

ইয়াত অধ্যয়নৰ সুবিধাৰ বাবে সূর্য্যকুমাৰ ভূঞাৰ দ্বাৰা সম্পাদিত 'সাতসৰী অসম বুৰঞ্জী', 'অসম বুৰঞ্জী' আৰু 'দেউধাই অসম বুৰঞ্জী' গ্ৰন্থ খনহে লোৱা হৈছে। বিষয়টোৰ অধ্যয়নত বিশ্লেষণাত্মক আৰু বর্ণনাত্মক পদ্ধতিৰ অৱলম্বন কৰা হৈছে।

সূচক শব্দ ঃ সম্বন্ধবাচক ৰূপ, সাতসৰী অসম বুৰঞ্জী, অসম বুৰঞ্জী, দেউধাই অসম বুৰঞ্জী, বচনবাচক নিদিষ্টতাবাচক প্ৰত্যয়, পুৰুষবাচক বিভক্তি, সম্বোধনবোধক, সম্বন্ধ-নির্দেশক ইত্যাদি।

ভূ.ভূৰ আৰম্ভণি ঃ

খ্ৰীষ্টিয় সপ্তদশ শতিকাৰ পৰা ঊনবিংশ শতিকাৰ সময় ছোৱাত অসমীয়া গদ্য সাহিত্য বিকাশৰ বাবে অতি গুৰুত্বপূর্ণ সময় বুলি ক'ব পাৰি। বাণীকান্ত কাকতিয়ে সম্পূর্ণভাৱে অসমীয়া ভাষাৰ ভাষিক স্বকীয়তাবোৰ শ্ৰেণীবদ্ধ কৰা সুবিধাৰ বাবে কৰা অসমীয়া সাহিত্যৰ যুগ বিভজনত এই সময় খিনিক 'মধ্যযুগীয় সাহিত্য'ৰ যুগ আখ্যা দিছে। (হাজৰিকা. ৯) এই যুগতে বিভিন্ন ধৰণৰ সাহিত্যত

বিভিন্ন ধৰণৰ গদ্যৰ ৰচনা হৈছিল। এফালে যোড়শ শতিকাৰ শেষ আৰু সপ্তদশ শতিকাৰ আৰম্ভণিত ভট্টদেৱে সৰ্ব সাধাৰণৰ বোধগম্য হোৱাকৈ 'ভাগৱত' আৰু 'গীতা' খন কথা বা গদ্যত ৰচনা কৰে। আনফালে (খ্ৰী. ১৭-১৯) শতিকাত দুই শ্ৰেণীৰ সাহিত্যৰ সৃষ্টি হয়। এক শ্ৰেণীৰ সাহিত্য হৈছে—শ্ৰীমন্ত শংকৰদেৱ-মাধৱদেৱৰ মৃত্যুৰ পাছত সত্ৰ-নামঘৰবোৰক কেন্দ্ৰ কৰি 'চৰিত পুথি' সমূহৰ ৰচনা হয়। বৈষ্ণৱ মহাপুৰুষ আৰু তেওঁলোকৰ শিষ্য-প্ৰশিষ্যসকলৰ জীৱনক কেন্দ্ৰ কৰি আৰু তেওঁলোকৰ জীৱন কাহিনীক ভৱিষ্যৎ প্ৰজন্মক অনুপ্ৰেৰণা যোগোৱাৰ উদ্দেশ্যে এই সমূহ ৰচিত। অসমীয়া বৈষ্ণৱ সাহিত্যৰ এটা প্ৰধান শাখা এই চৰিত পুথিসমূহ গদ্য-পদ্য উভয়তে ৰচিত। গদ্যত লিখিত চৰিত পুথিতকৈ পদ্যত লিখিত চৰিত পুথিৰ সংখ্যা বেছি। গদ্যত লিখিত চৰিত পুথি দুখনমানৰ নাম হৈছে—উপেন্দ্ৰচন্দ্ৰ লেখাৰুদেৱৰ সম্পাদিত 'কথা গুৰুচৰিত', লক্ষ্মীনাথ বেজবৰুৱাই 'বাঁহী' আলোচনীত প্ৰকাশ কৰা আৰু বৰ্তমানে মহেশ্বৰ নেওগে সম্পাদনা কৰা 'বৰদোৱা গুৰুচৰিত'; গোবিন্দ দাসৰ 'সন্ত-সম্প্ৰদা'; ভট্টদেৱৰ নামত প্ৰচলিত 'সৎ সম্প্ৰদা কথা' ইত্যাদি। পদত ৰচিত চৰিত পুথি সমূহৰ ভিতৰত মহাপুৰুষ মাধৱদেৱৰ ভাগিনীয়েক ৰামচৰণ ঠাকুৰৰ 'শংকৰ চৰিত', নীলকণ্ঠ দাসৰ 'দামোদৰ চৰিত', কৃষ্ণ মিশ্ৰৰ 'দামোদৰ চৰিত', পূৰ্ণানন্দৰ 'গোপালদেৱ চৰিত', ৰামনাথ মহন্তৰ 'সন্ত-মুক্তাৱলী', বিভুনাথৰ 'এটকা মহন্তৰ ঝুনা' ইত্যাদি উল্লেখযোগ্য। (শৰ্মা, হেমন্তকুমাৰ ১৭৮-১৭৯)

সপ্তদশ শতিকাৰ পৰা ঊনবিংশ শতিকাৰ ভিতৰত ৰচিত আন এক শ্ৰেণীৰ সাহিত্য হৈছে—আহোম ৰজা সকলৰ একচেটিয়া অৱদান বুৰঞ্জী সাহিত্য সমূহ। বুৰঞ্জীসমূহত আহোম যুগৰ ৰজা আৰু বিষয়া, ডা-ডাঙৰীয়া সকলৰ কাৰ্য-কলাপৰ কথা বৰ্ণিত হোৱাৰ বাহিৰেও দেশৰ সামাজিক, ৰাজনৈতিক, অৰ্থনৈতিক, ধাৰ্মিক, সাংস্কৃতিক ইত্যাদি কথাবোৰ কথিত ভাষাত ৰচনা কৰা হয়। চৰিত পুথিৰ দৰে বুৰঞ্জী সমূহো গদ্য-পদ্য উভয়তে ৰচিত। সতেন্দ্ৰনাথ শৰ্মাই বুৰঞ্জী সমূহক দুটা ভাগত ভাগ কৰিছে। যেনে—ক) অসম বা আহোম ৰাজ্যৰ বুৰঞ্জী, খ) আহোম ৰাজ্যৰ বহিৰ্ভূত ওচৰ-চুবুৰীয়া আন ৰাজ্য বা দেশৰ বুৰঞ্জী। (অসমীয়া সাহিত্যৰ সমীক্ষাত্মক ইতিবৃত্ত, ২১৫) প্ৰথম শাখাটোৰ গদ্যত ৰচিত বুৰঞ্জীৰ ভিতৰত হেমচন্দ্ৰ গোস্বামীয়ে সম্পাদনা কৰা 'পুৰণি অসম বুৰঞ্জী', ৰাজমন্ত্ৰী আতন বুঢ়াগোহাঁইৰ প্ৰণিত 'বাঁহগড়ীয়া বুৰঞ্জী', সুকুমাৰ মহন্তৰ ঘৰত পোৱা 'অসম বুৰঞ্জী', শ্ৰীনাথ বৰুৱা দ্বাৰা ৰচিত 'তুংখুঙীয়া বুৰঞ্জী', কাশীনাথ তামুলী ফুকন আৰু ৰাধানাথ বৰুৱাৰ দ্বাৰা ৰচিত 'অসম বুৰঞ্জী পুথি' , হৰকান্ত বৰুৱা সদৰামিনৰ 'অসম বুৰঞ্জী' ইত্যাদি। পদ্যত ৰচিত বুৰঞ্জীত ভিতৰত দুতিৰাম হাজৰিকাৰ 'কলি ভাৰত' আৰু বিশ্বেশ্বৰ বৈদ্যাধিপৰ 'বেলিমাৰৰ বুৰঞ্জী'। দ্বিতীয় স্তৰৰ বুৰঞ্জীসমূহৰ ভিতৰত 'ত্ৰিপুৰা বুৰঞ্জী', 'কছাৰী বুৰঞ্জী', 'জয়ন্তীয়া বুৰঞ্জী', 'পাদশাহ বুৰঞ্জী' ইত্যাদি। ১৭-১৯ শ শতিকাৰ সময়ছোৱাৰ ভিতৰত ব্যৱহাৰীক সাহিত্য নামেৰে আন এক শ্ৰেণীৰ সাহিত্যৰো ৰচনা হৈছিল।

০.০২ অধ্যয়নৰ পৰিসৰ আৰু পদ্ধতি ঃ

অধ্যয়নৰ সুবিধাৰ্থে এই অধ্যয়নত কেৱল বুৰঞ্জী সাহিত্যসমূহৰ সূৰ্য্যকুমাৰ ভূঞাৰ দ্বাৰা সম্পাদিত 'সাতসৰী অসম বুৰঞ্জী', 'দেউধাই অসম বুৰঞ্জী' আৰু 'অসম বুৰঞ্জী' গ্ৰন্থ খনহে লোৱা হৈছে। এই গ্ৰন্থ কেইখনৰ ব্যৱহাৰ হোৱা অসমীয়া ভাষাৰ সম্বন্ধবাচক শব্দ আৰু ইয়াৰ গঠন সম্পৰ্কে আলোচনা কৰা হৈছে।

বিষয়টোৰ অধ্যয়নত বিশ্লেষণাত্মক আৰু বৰ্ণনাত্মক পদ্ধতিৰ অৱলম্বন কৰা হৈছে।

১.০০ বুৰঞ্জী সাহিত্যত ব্যৱহৃত সম্বন্ধবাচক শব্দসমূহ ঃ

যিবোৰ শব্দৰ দ্বাৰা সমাজত ব্যক্তিৰ মাজত সম্বন্ধৰ নিৰ্দেশ কৰা হয়; তেনে শব্দসমূহক সম্বন্ধবাচক শব্দ বুলি কোৱা হয়। সম্বন্ধবাচক শব্দ সমূহৰ ব্যৱহাৰৰ দ্বাৰা সমাজৰ ব্যক্তিসকলৰ মাজত থকা পাৰস্পৰিক সম্বন্ধৰ কথা জানিব পাৰি। সম্বন্ধবাচক শব্দসমূহক দুটা ভাগত ভাগ কৰিব পাৰি; যেনে— সম্বন্ধ নিৰ্দেশক (নি.) আৰু সম্বোধনবোধক (সম্বো.)। বুৰঞ্জী সাহিত্য সমূহত ব্যৱহৃত সম্বন্ধবাচক শব্দ সমূহ এনেধৰণৰ—

জীয়তি পততি (নি.) (সা.অস.বু. ১২/৪)
তিৰতা (নি.) (সা.অস.বু. ১৭৮/৪)
ভনীয়েক (নি.) (সা.অস.বু. ৬/২)
অনাইয়েক (নি.) (সা.অস.বু. ৬/২)
বুপা (সম্বো.) (সা.অস.বু. ১০/৩)
বুপাদেৱ (সম্বো.) (অস.বু. ২৪৭/১০৬)
নাতি (নি.) (সা.অস.বু. ৫১/১৫)
মিত্ৰ (নি., সম্বো.) (সা.অস.বু. ১৪/৫)
নাতি (নি.) (সা.অস.বু.১৫/৫)
পুচাউ (সম্বো.) (সা.অস.বু. ২৩/৮)

জীয়েক (নি.) (সা.অস.বু. ১৮/৬)
জীয়ৰী (নি.) (সা.অস.বু. ৬৩/১৯)
পুতেক (নি.) (সা.অস.বু. ২৩/৮)
বোৱাৰী (নি., সম্বো.) (সা.অস.বু. ২৩/৮)
বোহাৰী (নি., সম্বো.) (দে.অস. ৪৬/১৯)
ককায়েৰ (নি., ২য় পুৰুষ) (সা.অস.বু. ২৯/৯)
ককাই (সম্বো.) (অস.বু. ৯/৪)
মাক (নি., ৩য় পুৰুষ) (সা.অস.বু.৩৬/১১)
তোলনীয়া পো (নি.) (সা.অস.বু. ৩৯/১১)
ভনীয়েক (নি. ৩য় পুৰুষ) (সা.অস.বু. ৪৫/১৩)
পিতৃ-পিতামহ (নি.) (সা.অস.বু. ৫০/১৫)
পিতৃদেৱতা (নি.) (সা.অস. ১০৬/৩৫)
পো-নাতি (নি.) (সা.অস.বু. ৬২/১৯)
পুনাতি (সম্বো., নি.), (অস.বু. ১৫/৬)
জোৱায়েক (নি., ৩য় পুৰুষ) (সা.অস.বু. ৬২/১৯)
মিছাউ (সম্বো., নি.) (সা.অস.বু. ৬৩/১৯)
ভতিজা জীয়েক (নি.) (সা.অস.বু. ৮৪/২৬)
বাপেক (নি., ৩য় পুৰুষ) (সা.অস.বু. ৮৬/২৭), (অস.বু. ২/২)
ভায়েক (নি., ৩য় পুৰুষ) (সা.অস.বু. ৮৭/২৭), (অস.বু. ২৫/৯)
জীয়েকৰ ভায়েকৰ জীয়েক (নি., ৩য় পুৰুষ) (সা.অস.বু. ৮৯/২৮)
এনায়েক (নি., ৩য় পুৰুষ) (সা.অস.বু. ১১১/৩৯)
আনায়েক (নি., ৩য় পুৰুষ) (সা.অস.বু. ১১৩/৪০)
ভাগিনী (নি.) (সা.অস.বু. ১৩৫/৫৪)
ঘৰিণী (নি.) (সা.অস.বু. ১৫৬/৬৪), (৯/৪)
পিতা (নি.) (সা.অস.বু. ১৫৭/৬৫)
জেঠেৰী (সম্বো., নি.) (সা.অস.বু. ১৬৪/৬৭), (দে.অস.বু. ২/৮৫)
জীয়া-পুত্ৰ (নি.) (সা.অস.বু. ১৭২/৭২)
জীউ (নি.) (৭৪/৩৪)
ভাত্ৰ (নি.) (সা.অস.বু. ১৭৭/৭৪)
ল'ৰা-তিৰতা (নি.) (সা.অস.বু. ১৭৮/৭৫)
শহুৰ (নি.) (সা.অস.বু. ১৮৬/৭৮), (অস.বু. ১৭৩/৭৩)
জোৱাই (সম্বো., নি.) (সা.অস.বু. ২০৭/৮৮)
দদায়েক (নি., ৩য় পুৰুষ) (সা.অস.বু. ২৫২/১১০), (অস.বু. ৯৯/৪৪)
জী (নি.) (সা.অস.বু. ২৭৩/১৩১)
নাতিনী (নি.) (সা.অস.বু. ২৯১/১৪২)
পুথাও (সম্বো.) (সা.অস.বু. ২৯৩/১৪৩), (অস.বু. ২৭৮/১২২)
পুথাউ (সম্বো.) (সা.অস.বু. ১৯৩/৮২)
ভতিজা (নি.) (সা.অস.বু. ২৯৭/১৪৪), (অস.বু. ২৯/১১)
দেউকাকা (ককায়েক), মাতা, বেটা (সম্বো.) (অস.বু. ৭৯/৩৬)
ভাগিনী (নি.) (সা.অস.বু. ২৯৭/১৪৪)
পয়েৰ (নি.) (অস.বু. ১৩৫/৫৯)
ভাগিনি (নি.) (অস.বু. ১৬২/৬৯)
বাপ (সম্বো., নি.) (অস.বু.১১৭/৫২)
বাপু (সম্বো.) (অস.বু. ২০৮/৮৬)
বেটী (নি., সম্বো.) (অস.বু. ২১০/৮৭)
বায়েক (নি.) (অস.বু. ১৬৬/৭০)
ভিনীহি (সম্বো., নি.) (অস.বু. ২৪৫/১০৫)
মোমা, মামা (সম্বো., নি.) (অস.বু.১৬৪/৭০, ১৮২/৭৬)
আইচাউ (সম্বো.) (অস.বু. ২৪৭/১০৬)
আইচ্চা (সম্বো., নি.) (দে.অস. ২২২/৭৬)
ৰাজমাও (সম্বো.) (অস.বু. ২৪৭/১০৬)
বৈনাই (সম্বো., নি.) (দে.অস. ২/৮৫)
বোপাই (সম্বো.) (দে.অস. ৩৪৩/৮৩)
জোঁৱাই (সম্বো.) (দে.অস. ৩৭৭/৮৩)
পো, জীউ, ভাই (নি.) (অস.বু. ৭৪/৩৪)
মিত্ৰ (নি., সম্বো.) (অস.বু. ৪৪/১৮)

১.০১ পুৰুষবাচক বিভক্তি ঃ

'বুৰঞ্জী সাহিত্য'ৰ গদ্যত মাজে মাজে কথোপ-কথন ৰীতিৰ প্ৰয়োগ থাকিলেও বেছিভাগ কথা তৃতীয় পুৰুষত কাহিনীৰ দৰে বৰ্ণনা কৰি যোৱা ধৰণৰ; সেইবাবে সম্বোধনবোধন শব্দতকৈ সম্বন্ধ নিৰ্দেশক সম্বন্ধবাচক শব্দৰ ব্যৱহাৰ বেছি; সেয়েহে পুৰুষবাচক বিভক্তিৰ প্ৰয়োগৰ ক্ষেত্ৰতো তৃতীয় পুৰুষৰ বিভক্তি '-এক' ৰ প্ৰয়োগ বেছি। অৱশ্যে দ্বিতীয় পুৰুষৰ বিভক্তি '-এৰ' প্ৰয়োগ পোৱা যায়। এই পুৰুষবাচক বিভক্তি কেইটা তুচ্ছাৰ্থে মান্যাৰ্থে ক্ষেত্ৰত একেটাই ব্যৱহাৰ হৈছে। উদাহৰণস্বৰূপে—

দ্বিতীয় পুৰুষ ঃ ককায়েৰে (ককাই +এৰ +এ) (সা.অস.বু. ২৯/৯) (-এ কাৰক বিভক্তি)

পুথাএঁৰ (পুথা + এৰ/এঁৰ) (অস.বু. ১৯৪/৮১)

তৃতীয় পুৰুষ ঃ

অনাইয়েকেৰে (অনাই/এনাই + এক + এৰে) (সা.অস.বু. ৬/২) (-এ,-ৰে কাৰক বিভক্তি)

নাতিয়েকে (নাতি +এক +এ) (সা.অস.বু. ৪৫/১৩) (-এ কাৰক বিভক্তি)
ককায়েকৰ (ককাই +এক +ৰ) (অস.বু. ২৯/৯) (-ৰ কাৰক বিভক্তি)
পুথায়েকক (পুথাই +এক +ক) (সা.অস.বু. ২৭৩/১৩১) (-ক কাৰক বিভক্তি)
বোহাৰীয়েকক (বোহাৰী +এক +ক) (অস.বু. ৪৬/১৯)
এনায়েক (এনাই +এক) (দে.অস.বু. ৭/৪)
—ইয়াত পুৰুষবাচক বিভক্তিৰ পাছত কাৰক বিভক্তিৰ যোগ হৈছে।

১.০২ সম্বোধনবোধক নির্দিষ্টতাবাচক প্রত্যয় ঃ

বুৰঞ্জী সাহিত্যত -অ' আৰু -হে সম্বোধনৰ ক্ষেত্রত ব্যৱহাৰ হোৱা ৰূপ। যিহেতু এইবিধ সাহিত্যৰ গদ্যত তৃতীয় পুৰুষ অর্থাৎ সম্বন্ধ নির্দেশক সম্বন্ধবাচক ৰূপৰ ব্যৱহাৰ বেছি; সেইবাবেই সম্বোধনবোধক প্রত্যয়ৰ ব্যৱহাৰ পোৱা নাযায়। উদাহৰণস্বৰূপে —

অ' দেউ (দে.অস.বু. ২২/৭৬)
হে পিতৃ (সা.অস.বু. ১০৬/৩৫)

১.০৩ বচনবাচক নির্দিষ্টতাবাচক প্রত্যয় ঃ

বচনবাচক নির্দিষ্টতাবাচক প্রত্যয় সমূহক দুটা ভাগত ভাগ কৰা হৈছে। যেনে — একবচনবাচক নির্দিষ্টতাবাচক প্রত্যয় আৰু বহুবচনবাচক নির্দিষ্টতাবাচক প্রত্যয় । বুৰঞ্জী সাহিত্যত ব্যৱহৃত বচনবাচক নির্দিষ্টতাবাচক প্রত্যয় সমূহ এনেধৰণৰ —

এক বচনবাচক নির্দিষ্টতাবাচক প্রত্যয় ঃ
ভাগিনীটি (সা.অস.বু. ১৩৫/৫৪)
পুতেকটি (অস.বু. ১৫৫/৬৬)
লৰাটি (অস.বু. ১৬৬/৭০) (-ইয়াত '-টি' প্রত্যয়টো এক বচনৰ নিদির্ষ্টতাবাচক বুজোৱাৰ উপৰিও ক্ষুদ্রার্থবোধক অর্থও সূচিত কৰিছে।)

বহুবচনবাচক নির্দিষ্টতাবাচক প্রত্যয় ঃ
বাপুসকল (অস.বু. ২৬১/১১৩)
ভায়েকহত (সা.অস.বু. ৮৭/২৭)
পুত্র-নাতিসৰ (সা.অস.বু. ১৩৪/৫৪)
ঘৰণীবোৰ (সা.অস.বু. ১৫৬/৬৪)
পো-ভাইবোৰ (অস.বু. ৮২/৩৭)

২.০০ বুৰঞ্জী সাহিত্যত ব্যৱহৃত সম্বন্ধবাচক ৰূপৰ গঠন আৰু প্রয়োগ ঃ

বুৰঞ্জী সাহিত্যসমূহত আহোমৰ শাসন, ৰজাসকলৰ কার্যাৱলী অর্থাৎ অসমত থকা আহোমৰ সমাজৰ পটভূমিত ৰচনা কৰা হৈছিল। সেইবাবে অসমত প্রচলিত অনান্য সংস্কৃত তৎসম-তদ্ভৱ সম্বন্ধবাচক ৰূপৰ উপৰিও টাই-আহোম ভাষাত প্রচলিত সম্বন্ধবাচক ৰূপ আৰু উজনি অসমৰ ভাষাৰ প্রভাৱো দেখা যায়। উদাহৰণস্বৰূপে — আই চচা (দে.অস.বু. ২২২/৭৬), আই চাউ (অস.বু.২৪৭/১০৬), মিছাউ (সা.অস.বু. ৬৩/১৯), পুথাও (সা.অস.বু.২৯৩/১৪৩), এনাই/অনাই (সা.অস.বু. ৬/২), দেউকাকা (ককায়েকক কৰা সম্বোধন) (অস.বু. ৭৮/৩৬)। সম্বোধনৰ ক্ষেত্রত 'বাপ্', 'বাপু', 'বুপা', 'আই', 'আইদেউ' ইত্যাদি । 'বুপা' ৰূপটো বয়সত সৰু ল'ৰা বা ৰাজকোঁৱৰক সম্বোধন কৰিবলৈ ব্যৱহাৰ কৰা হৈছে। যেনে — বুপা (অস.বু. ১৯৪/৮১), বুপাদেৰ (ৰাজকোঁৱৰক ৰাণীয়ে সম্বোধনত ব্যৱহাৰ কৰিছে) (অস.বু. ২৪৭/১০৬)। এই সম্বোধনবোধক ৰূপটো উজনি অসমৰ ভাষা অর্থাৎ আঞ্চলিক ভাষাৰ প্রভাৱত হৈছে বুলি ক'ব পাৰি। সম্বন্ধবাচক ৰূপত নির্দিষ্টতাবাচক প্রত্যয়ৰ প্রয়োগৰ ক্ষেত্রতো দেখা যায় যে— বুৰঞ্জী-সাহিত্যত '-টি' (ক্ষুদ্রার্থবোধক) টোৰ বহুল প্রয়োগ দেখা গৈছে।

বুৰঞ্জী সাহিত্যতে সম্বন্ধ বুজোৱা ৰূপসমূহ তৃতীয় পুৰুষক বুজোৱাৰ বাবে ব্যৱহাৰ হোৱাত সম্বন্ধ নির্দেশক ৰূপৰ বেছি ব্যৱহাৰ হৈছে। পুৰুষবাচক বিভক্তিৰ প্রয়োগৰ ক্ষেত্রতো সেইহে তৃতীয় পুৰুষত ব্যৱহাৰ হোৱা সম্বন্ধ ৰূপ আৰু পুৰুষবাচক বিভক্তিৰ ব্যৱহাৰ অধিক। সম্বন্ধবাচক ৰূপৰ গঠনত সম্বন্ধ নির্দেশক ৰূপত বা সম্বোধন ৰূপত '-আই' আৰু সম্ভ্রমসূচক '-দেউ' প্রত্যয়ৰ দৰে ব্যৱহাৰ কৰি সম্বোধনৰ ক্ষেত্রত ব্যৱহাৰ কৰা হয়। উদাহৰণস্বৰূপে—

বুপা/বাপ +আই = বোপাই (দে.অস.বু. ৩৭৭/৮৩)
কাকা + আই = কাকাই/ককাই (দে.অস.বু. ২০/১০), (অস.বু. ৯/৪)
বৈণী/ভনী +আই = বৈনাই (দে.অস.বু. ২/৮৫)

'-দেউ' (বয়সত ডাঙৰক সন্মান প্রর্দশন কৰি) আৰু '-আই' (মা) সম্বোধনৰ ক্ষেত্রত সুকীয়াকৈ ব্যৱহাৰ পোৱা গৈছে। বিশেষ্য ৰূপ বা অন্য সম্বোধনবোধক ৰূপৰ পিছতো সংযোগ কৰি ব্যৱহাৰ কৰা হৈছে। উদাহৰণস্বৰূপে—

অ' দেউ (দে.অস.বু. ২২/৭৬)
দেউকাকা (ককায়েক সম্বোধন কৰাৰ বাবে ব্যৱহাৰ হৈছিল) (অস.বু. ৭৮/৩৬)

সম্বন্ধবাচক ৰূপত বয়সৰ পার্থক্য বুজাবলৈ মূল সম্বন্ধ ৰূপটোৰ পাছত -সৰু, -বৰ, -ডাঙৰ, -মাজু ইত্যাদি বিশেষণ ৰূপৰ প্রয়োগ দেখা যায়। উদাহৰণস্বৰূপে— সৰু মিছাউ, বৰমিছাউ, ডাঙৰ মিছাউ (সা.অস.বু. ৬৩/১৯)

বুৰঞ্জী-সাহিত্যত ব্যৱহৃত সম্বন্ধবাচক ৰূপসমূহ আধুনিক মান্য অসমীয়া ভাষাৰ (standerd Assamese language) ওচৰ চপা। তদুপৰি একেটা সম্বন্ধ ৰূপৰ কেইবাটাও সম্বন্ধবাচক ৰূপ পোৱা গৈছে। উদাহৰণস্বৰূপে—

জোঁৱাই (দে.অস.বু. ৩৭৭/৮৩), জোৱাই (সা.অস.বু. ২০৭/৮৮)
ঘৰিণী (অস.বু. ৯/৪), ঘৈণী (অস.বু. ২৮/১০)
বোৱাৰী (সা.অস.বু. ২৩/৮), বোহাৰী (অস.বু. ৪৬/১৯)
দদা (সা.অস.বু. ২৫২/১১০), ককাই (অস.বু. ৯/৪),
ভগিনী (অস.বু.৯০/৪০), ভগনী (অস.বু. ৯০/৪১)
মোমা (অস.বু. ১৬৪/৭০), মামা (অস.বু. ১৮২/৭৬)

— বুৰঞ্জী-সাহিত্যত পুৰণি অসমীয়া ভাষাত পোৱা সম্বন্ধবাচক ৰূপসমূহৰ বাহিৰেও আধুনিক অসমীয়া ভাষাৰ (ইয়াত মান্য অসমীয়াৰ কথা কোৱা হৈছে) কেইটামান সম্বন্ধবাচক ৰূপ পোৱা গৈছে। সেইকেইটা হৈছে— ককাই (দে.অস.বু. ২০/১০), জোঁৱাই (দে.অস.বু. ৩৭৭/৮৩), জোৱাই (সা.অস.বু. ২০৭/৮৮), ভতিজা, ভাগিনী (সা.অস.বু. ২৯৭/১৪৪), জেঠেৰী (সা.অস.বু. ১৬৪/৬৭), ভিনীহি (অস.বু. ২৪৫/১০৫), ঘৈণী (অস.বু. ২৮/১০) ইত্যাদি।

৩.০০ উপসংহাৰ ঃ

পৰিশেষত ক'ব পাৰি যে বুৰঞ্জী সাহিত্যত মান্য-অসমীয়া ভাষাত ব্যৱহৃত সম্বন্ধবাচক ৰূপৰ ব্যৱহাৰ বেছি পোৱা হৈছে। ইয়াৰ কাৰণ এনেধৰণৰ হ'ব পাৰে যে সমাজ তথা ধর্মীয় আলাপ- বুৰঞ্জী-সাহিত্যত আহোম শাসনৰ কথা আৰু উজনি অসমৰ ভাষাটোৰ প্রভাৱ বেছি; ইয়াণ্ডাবু সন্ধি (খ্রী.১৮২৬)ৰ পাছত খ্রীষ্টান মিছনাৰীসকলে উজনি অসমৰ ভাষাটোতে অভিধান আদি ৰচনা কৰাত পৰৱর্তী সময়ত সেই ভাষাটোৱে মান্যভাষাৰ মর্য্যদা পায়। ইয়াৰ পৰা এটা কথাত উপনীত হ'ব পাৰি যে — অসমীয়া ভাষাৰ সম্বন্ধবাচক শব্দৰ গঠনৰ আহোম ভাষাৰো প্রভাৱ আছে। টাই- ভাষাগোষ্ঠীৰ ভিতৰত আহোম ভাষাটো বর্তমান অপ্রচলিত। বুৰঞ্জী সাহিত্য সমূহত আহোম শাসনৰ কথা, সেই সময়ৰ সমাজৰ কথা ইত্যাদি বিষয় সংৰক্ষণ হোৱাৰ ওপৰিও আহোম ভাষাৰ বিভিন্ন শব্দৰ সংৰক্ষণ হৈ আছে। সম্বন্ধবাচক শব্দৰ দৰে বুৰঞ্জী সাহিত্যত ব্যৱহৃত অনান্য শব্দৰ বিষয়েও সুকীয়া সুকীয়াকৈ অধ্যয়ন কৰিব পাৰি। ❑

সহায়ক গ্রন্থ ঃ

ভূঞা, সূর্য্য কুমাৰ। সাতসৰী অসম বুৰঞ্জী। সম্পা.। পঞ্চম সংস্কৰণ। গুৱাহাটী ঃ গুৱাহাটী বিশ্ববিদ্যালয় প্রেছ, ২০১৬। প্রকাশিত।
———, অসম বুৰঞ্জী। চতুর্থ প্রকাশ। গুৱাহাটী ঃ অসম চৰকাৰৰ বুৰঞ্জী আৰু পু�ৰাতত্ত্ব বিভাগ, ২০১০ । প্রকাশিত।
———, দেউধাই অসম বুৰঞ্জী। চতুর্থ প্রকাশ। গুৱাহাটী ঃ অসম চৰকাৰৰ বুৰঞ্জী আৰু পুৰাতত্ত্ব বিভাগ, ২০০১ । প্রকাশিত।
শর্মা, সতেন্দ্রনাথ। অসমীয়া সাহিত্যৰ সমীক্ষাত্মক ইতিবৃত্ত। নৱম সংস্কৰণ। গুৱাহাটী ঃ অৰুণোদয় প্রেছ, ২০০৪। প্রকাশিত।
শর্মা, হেমন্তকুমাৰ। অসমীয়া সাহিত্যত দৃষ্টিপাত। ত্রয়োদশ সংস্কৰণ। গুৱাহাটী ঃ বীণা লাইব্রেৰী, ২০১১। প্রকাশিত।
হাজৰিকা, বিশ্বেশ্বৰ। অনু.। অসমীয়া ভাষাৰ গঠন আৰু বিকাশ (বাণীকান্ত কাকতি, আছামিছ্ ইট্চ ফৰ্মেচন এণ্ড ডেভেলপ্মেন্ট)। বৰপেটা সাহিত্য সভাৰ দ্বাৰা প্রকাশিত, গুৱহাটী ঃ বীণা লাইব্রেৰী। প্রকাশিত।

সাংকেতিক চিহ্ন ঃ

সা.অস.বু ঃ সাতসৰী অসম বুৰঞ্জী
অস.বু ঃ অসম বুৰঞ্জী
দে.অস.বু ঃ দেউধাই অসম বুৰঞ্জী

প্ৰ বন্ধ

শিকন ব্যৱস্থাপনা প্ৰণালীৰ জৰিয়তে প্ৰদান কৰা কৰ্মৰত শিক্ষকসকলৰ বৃত্তিমূলক বিকাশ প্ৰশিক্ষণ কাৰ্যসূচীঃ ইয়াৰ ফলপ্ৰসূতাৰ ওপৰত সাহিত্য পৰ্যালোচনাৰ পৰা পোৱা ফলাফল

জুল দত্ত

গৱেষক ছাত্ৰ
মণিৰাম দেৱান স্কুল অৱ মেনেজমেণ্ট,
কৃষ্ণ কান্ত সন্দিকৈ ৰাজ্যিক মুক্ত বিশ্ববিদ্যালয়
ম'বাই ল- ৮৮২২৯৪৪৫৫৬
ই-মেল ঃ jul.dutta@scertassam.in

ড° নৃপেন্দ্ৰ নাৰায়ণ শৰ্মা

অধ্যাপক,
মণিৰাম দেৱান স্কুল অৱ মেনেজমেণ্ট
কৃষ্ণ কান্ত সন্দিকৈ ৰাজ্যিক মুক্ত বিশ্ববিদ্যালয়

সাৰাংশ ঃ

শিক্ষকসকলে শিক্ষাৰ্থীসকলৰ ভৱিষ্যৎ গঢ় দিয়াত এক গুৰুত্বপূৰ্ণ ভূমিকা পালন কৰে। সেয়েহে, শিক্ষাৰ্থীসকলৰ বাবে সৰ্বশ্ৰেষ্ঠ শিকনৰ ফলাফল নিশ্চিত কৰিবলৈ শিক্ষকসকল সুপ্ৰশিক্ষিত, যোগ্য আৰু অনুপ্ৰাণিত হোৱা উচিত। শিক্ষকসকলে শ্ৰেণীকোঠাত ফলপ্ৰসূভাৱে পাঠদান কৰিব পৰাকৈ শেহতীয়া জ্ঞান আৰু কৌশলেৰে সজ্জিত হ'ব লাগে তথা শিক্ষাখণ্ডৰ শেহতীয়া উন্নয়নৰ বিষয়ে অৱগত হ'ব লাগে। শৈক্ষিক ব্যৱস্থাত গুণগত মান নিশ্চিত কৰিবলৈ শিক্ষকসকলক ফলপ্ৰসূ বৃত্তিমূলক বিকাশ কাৰ্যসূচীৰ জৰিয়তে উপযুক্ত জ্ঞান আৰু দক্ষতা প্ৰদান কৰোৱা অতি আৱশ্যক। এনে বৃত্তিমূলক বিকাশ কাৰ্যসূচীৰ ফলপ্ৰসূতা, কাৰ্যসূচী বিতৰণ আৰু ইয়াৰ কাৰ্যকৰী ব্যৱস্থাপনাৰ পদ্ধতিৰ ওপৰত যথেষ্ট নিৰ্ভৰশীল। ডিজিটেল আন্তঃগাঁথনিৰ উন্নতিত প্ৰযুক্তিয়ে এক গুৰুত্বপূৰ্ণ ভূমিকা পালন কৰি আহিছে, যাৰ ফলত অনালাইন পদ্ধতিৰ জৰিয়তে প্ৰশিক্ষণ আৰু উন্নয়ন কাৰ্যসূচীৰ গুণগত বিষয়বস্তু প্ৰদানৰ সুবিধা হৈছে আৰু ই ক্ৰমান্বয়ে জনপ্ৰিয় হৈ পৰিছে।

শৈক্ষিক ব্যৱস্থাত শিক্ষকসকলৰ গুৰুত্বৰ বিষয়ে বৰ্ধিত সজাগতাৰ বাবে শেহতীয়া বছৰবোৰত কৰ্মৰত শিক্ষকসকলৰ বাবে বৃত্তিমূলক বিকাশ কাৰ্যসূচী আৰু ইয়াৰ ফলপ্ৰসূতাই যথেষ্ট গুৰুত্ব পাইছে। কৰ্মৰত শিক্ষকসকলৰ বৃত্তিমূলক বিকাশৰ প্ৰতি লক্ষ্য ৰাখি ৰাষ্ট্ৰীয় শৈক্ষিক অনুসন্ধান আৰু প্ৰশিক্ষণ পৰিষদ (National Council of Educational Research and Training) আৰু ভাৰত চৰকাৰৰ শিক্ষা মন্ত্ৰ্যালয়ে লোৱা এটা ৰাষ্ট্ৰীয় পদক্ষেপ হৈছে অনলাইন মঞ্চ- DIKSHA-ৰ জৰিয়তে প্ৰদান কৰা বৃত্তিমূলক বিকাশ কাৰ্যসূচী-NISHTHA।

এই গৱেষণা পত্ৰখনে শিক্ষকসকলৰ জ্ঞান আহৰণ, দক্ষতা বিকাশ আৰু উৎপাদনশীলতাৰ ওপৰত শিকন ব্যৱস্থাপনা প্ৰণালী- DIKSHA-ৰ জৰিয়তে প্ৰদান কৰা বৃত্তিমূলক বিকাশ কাৰ্যসূচী-NISHTHA-ৰ ফলপ্ৰসূতা জুখিবলৈ এক মূল্যায়নমূলক গাঁথনি গঢ়ি তোলাৰ প্ৰয়াস কৰা হৈছে। এই মূল্যায়নমূলক গাঁথনিটো বিদ্যমান সাহিত্য, অধ্যয়ন, নথিপত্ৰ আৰু প্ৰতিবেদন বিশ্লেষণৰ ওপৰত ভিত্তি কৰি তৈয়াৰ কৰা হৈছে। অনুভৱ কৰা হৈছে যে এই গাঁথনিটোৱে কৰ্মৰত শিক্ষকসকলৰ বৃত্তিমূলক বিকাশ কাৰ্যসূচীৰ ফলপ্ৰসূতা বুজিবলৈ সহায়ক

হ'ব আৰু লগতে নীতি নির্ধাৰক আৰু শিক্ষক শিক্ষানুষ্ঠানসমূহক বৃত্তিমূলক বিকাশ কার্যসূচীসমূহৰ প্রস্তুত আৰু বিতৰণ উন্নত কৰাত সহায় কৰিব।

প্রাধান্যমূলক শব্দ (Key words) ঃ বৃত্তিমূলক বিকাশ কার্যসূচী (Professional Development Programme), শিকন ব্যৱস্থাপনা প্রণালী (Learning Management System), NISHTHA, DIKSHA

১) অৱতৰণিকা ঃ

শিক্ষক হৈছে যিকোনো শৈক্ষিক কার্যসূচীৰ ফলপ্রসূতাৰ আটাইতকৈ গুৰুত্বপূর্ণ নির্ণায়ক। ৰাষ্ট্রীয় শিক্ষক শিক্ষা পৰিষদে (NCTE) (১৯৯৮) শিক্ষকৰ শিক্ষাৰ গুণগত মানৰ উন্নয়ন সন্দর্ভত সুস্পষ্টভাৱে প্রকাশ কৰিছে যে, "শিক্ষক হৈছে যিকোনো শৈক্ষিক কার্যসূচীৰ আটাইতকৈ গুৰুত্বপূর্ণ উপাদান। যিকোনো পর্যায়ত শৈক্ষিক প্রক্রিয়া ৰূপায়ণৰ বাবে মুখ্যতঃ শিক্ষকেই দায়বদ্ধ"। শৈক্ষিক ব্যৱস্থাৰ মান নিশ্চিত কৰিবলৈ, শিক্ষকসকলক ফলপ্রসূ বৃত্তিমূলক বিকাশ কার্যসূচীৰ জৰিয়তে অবিৰতভাৱে উপযুক্ত জ্ঞান আৰু দক্ষতা প্রদান কৰাটো অতি আৱশ্যক। এনে কার্যসূচীৰ ফলপ্রসূতা কার্যসূচীৰ বিতৰণ আৰু কার্যকৰী ব্যৱস্থাপনাৰ পদ্ধতিৰ ওপৰত যথেষ্ট নির্ভৰশীল।

বৃত্তিমূলক বিকাশ কার্যসূচী ঃ

বৃত্তিমূলক বিকাশ প্রশিক্ষণ কার্যসূচী হৈছে বৃত্তিমূলক দক্ষতা আৰু জ্ঞান উন্নত কৰাত সহায় কৰিবলৈ প্রস্তুত কৰা শিকন আৰু দক্ষতা বিকাশৰ কার্যকলাপৰ এক ব্যৱস্থা। শিক্ষকসকলৰ বাবে বৃত্তিমূলক বিকাশ কার্যসূচীসমূহ তেওঁলোকৰ বিশেষ প্রয়োজনীয়তাৰ ভিত্তিত জ্ঞান আৰু দক্ষতা বৃদ্ধি কৰাত সহায় কৰিবলৈ প্রস্তুত কৰা হয়।বৃত্তিমূলক বিকাশ প্রশিক্ষণ কার্যসূচীত বিভিন্ন বিষয় যেনে- পাঠদানৰ কৌশল, প্রযুক্তি সংহত শিকন, ছাত্র-ছাত্রীৰ নিয়োজিত কৌশল, পাঠ পৰিকল্পনা, শ্রেণীকোঠা পৰিচালনা আৰু মূল্যায়ন আদি অন্তর্ভুক্ত হ'ব লাগে। এনেবোৰ প্রশিক্ষণ কার্যসূচীয়ে শিক্ষকসকলক তেওঁলোকৰ ছাত্র-ছাত্রীসকলক ভালদৰে বুজাবলৈ ফলপ্রসূ পাঠদান কৌশল উদ্ভাৱন কৰাত সহায় কৰে। এনেবোৰ বৃত্তিমূলক প্রশিক্ষণে শিক্ষকসকলক তেওঁলোকৰ ছাত্র-ছাত্রীসকলক অনুপ্রাণিত আৰু নিয়োজিত কৰি ৰাখিবলৈ সৃষ্টিশীল আৰু উদ্ভাৱনীমূলক পাঠদানৰ বাবে প্রয়োজনীয় দক্ষতাৰে সজ্জিত কৰি তোলে।

শিকন ব্যৱস্থাপনা প্রণালী ঃ

প্রযুক্তিয়ে প্রশিক্ষণৰ বিষয়বস্তু অধিক কার্যক্ষমভাৱে প্রদান কৰাত গুৰুত্বপূর্ণ ভূমিকা পালন কৰি আহিছে। ই প্রশিক্ষণৰ বিষয়বস্তু দ্রুতভাৱে প্রদান, অনুসৰণ আৰু মূল্যায়ন আদি কৰাত বিশেষ সুবিধা প্রদান কৰে। শিকন ব্যৱস্থাপনা প্রণালী হৈছে এক ডিজিটেল-শিকন মঞ্চ। ই বর্তমানৰ নৱ-শৈক্ষিক ধাৰাৰে সমৃদ্ধ শিকন আৰু প্রশিক্ষণ ফলপ্রসূভাৱে প্রদানৰ বাবে ডিজিটেল আন্তঃগাঁথনি। এই মঞ্চক প্রতিজন ব্যক্তিৰ প্রয়োজন অনসৰি প্রশিক্ষণ কার্যসূচীসমূহ অনুকূলিত কৰি ব্যৱহাৰ কৰিব পাৰি যদিহে ইয়াক সহজভাৱে উপলব্ধ কৰিব পাৰি। শিকন ব্যৱস্থাপনা প্রণালীয়ে প্রতিষ্ঠানসমূহক খৰচ-বহনক্ষমভাৱে প্রশিক্ষণ কার্যসূচীক পৰিকল্পনা, সংগঠিত আৰু ৰূপায়ণৰ বাবে কেন্দ্রীভূত আৰু স্বয়ংক্রিয় প্রশাসন আদি বিশিষ্টতা প্রদান কৰে। তদুপৰি ই পাৰস্পৰিকভাৱে ক্রিয়াশীল আৰু নমনীয়। শিকন ব্যৱস্থাপনা প্রণালীয়ে শিক্ষানুষ্ঠানসমূহক বৃহৎসংখ্যক প্রশিক্ষার্থীসকলৰ কাষলৈ লৈ যাবলৈ সক্ষম কৰিছে আৰু কম সময়তে বৃহৎসংখ্যক লোকক প্রশিক্ষণ প্রদান কৰিবলৈ সামর্থ্য প্রদান কৰিছে।

DIKSHA(Digital Infrastructure for Knowledge Sharing) ঃ

DIKSHA হৈছে ৰাষ্ট্রীয় শৈক্ষিক অনুসন্ধান আৰু প্রশিক্ষণ পৰিষদ (NCERT) আৰু ভাৰত চৰকাৰৰ শিক্ষা মন্ত্র্যালয়ৰ উদ্যোগত আৰম্ভ কৰা এক ই-শিকন মঞ্চ, যিয়ে শিক্ষক আৰু শিক্ষার্থীসকলে জ্ঞান অর্জন কৰাৰ পদ্ধতিত এক বিপ্লৱ আনিছে। ই ৰেব-পর্টেল আৰু ম'বাইল এপৰ ৰূপত উপলব্ধ আৰু শিক্ষক প্রশিক্ষণ কার্যসূচীৰ প্রসাৰ আৰু প্রদানৰ বাবে এক শক্তিশালী শিকন ব্যৱস্থাপনা প্রণালী হিচাপে কাম কৰি আহিছে। DIKSHA হৈছে সকলোৰে বাবে উপলব্ধ এক ই-সমলৰ ভঁৰাল, বিভিন্ন ডিজিটেল ই-সমল যেনে- ছবি, অডিঅ', ভিডিঅ' আৰু আন্তঃক্রিয়ামূলক সমল আদি DIKSHA-ত উপলব্ধ। শিক্ষকসকলৰ ব্যক্তিগত আৰু

বৃত্তিমূলক বিকাশৰ বাবে বহুলভাৱে ব্যৱহৃত মঞ্চসমূহৰ ভিতৰত সমগ্র ভাৰতৰ ভিতৰতে এক অন্যতম মঞ্চ হৈছে DIKSHA। ৰাষ্ট্রীয় এই উদ্যোগৰ সৈতে সংগতি ৰাখি, অসম চৰকাৰেও ৰাজ্যখনৰ ডিজিটেল শিক্ষাৰ বাবে DIKSHA ৰাজ্যখনত কার্যকৰী কৰিছে।

NISHTHA (National Initiative for School Head and Teachers' Holistic Advancement) (বিদ্যালয়প্ৰধান আৰু শিক্ষকসকলৰ সামগ্ৰিক অগ্ৰগতিৰ বাবে লোৱা ৰাষ্ট্ৰীয় পদক্ষেপ) ঃ

NISHTHA হৈছে ভাৰত চৰকাৰৰ শিক্ষা মন্ত্ৰালয়ৰ উদ্যোগত আৰম্ভ হোৱা কৰ্মৰত শিক্ষকসকলৰ বাবে উৎসৰ্গীকৃত এক অভিলাষী বৃত্তিমূলক বিকাশ প্ৰশিক্ষণ কাৰ্যসূচী। ইয়াৰ প্ৰধান লক্ষ্য হৈছে ৰাজ্যিক শিক্ষা গৱেষণা আৰু প্ৰশিক্ষণ পৰিষদ (SCERTs), জিলা শিক্ষা আৰু প্ৰশিক্ষণ প্ৰতিষ্ঠান, খণ্ড সমল কেন্দ্ৰ (Block Resource Centres) আৰু মণ্ডল সমল কেন্দ্ৰসমূহ(Cluster Resource Centres)ৰ সমল ব্যক্তিসকলৰ উপৰি ৰাজ্য আৰু কেন্দ্ৰীয়শাসিত অঞ্চলসমূহৰ সকলো চৰকাৰী বিদ্যালয়ৰ শিক্ষক আৰু বিদ্যালয়প্ৰধান শিক্ষকসকলৰ সামৰ্থ্য গঢ়ি তোলা।

আৰম্ভণিতে, ২০১৯ চনত NISHTHA কাৰ্যসূচী প্ৰাথমিক পৰ্যায়ৰ শিক্ষক আৰু বিদ্যালয়ৰ প্ৰধান শিক্ষকসকলৰ বাবে মুখামুখি মোডত আৰম্ভ কৰা হৈছিল। ক'ভিড-১৯ মহামাৰী সম্পৰ্কীয় ব্যাঘাতৰ ফলস্বৰূপে NISHTHA মুখামুখি মোড বন্ধ হৈ পৰে। ৰাষ্ট্ৰীয় শিক্ষানীতি- ২০২০য়ে কৰ্মৰত শিক্ষক প্ৰশিক্ষণত কাৰ্যসূচীত এক নতুন মাত্ৰা সংযোজন কৰে। প্ৰতিজন শিক্ষক আৰু বিদ্যালয়প্ৰধান শিক্ষকে স্বইচ্ছাৰে নিজৰ বৃত্তিমূলক বিকাশৰ বাবে প্ৰতি বছৰে কমেও ৫০ ঘণ্টাৰ নিৰন্তৰ বৃত্তিমূলক বিকাশ কাৰ্যসূচীৰ সুযোগত অংশগ্ৰহণ কৰাটো এই শিক্ষানীতিয়ে নিশ্চিত কৰে। শিক্ষকসকলৰ নিৰন্তৰ বৃত্তিমূলক বিকাশ কাৰ্যসূচীৰ সুযোগ আৰু লগতে মহামাৰীৰ পৰিস্থিতিৰ প্ৰতি লক্ষ্য ৰাখি শিক্ষকসকলৰ বাবে বৃত্তিমূলক বিকাশৰ কাৰ্যসূচীসমূহ NISHTHA-ৰ অধীনত অনলাইন মোডত প্ৰস্তুত কৰি উলিওৱা হৈছে (http://nishtha.ncert.gov.in/) ।

NISHTHA অনলাইন সংহত শিক্ষক প্ৰশিক্ষণ কাৰ্যসূচী বিদ্যালয় শিক্ষাৰ বিভিন্ন পৰ্যায়ৰ বাবে আৰম্ভ কৰা হৈছে। পৰ্যায়সমূহ হ'ল-

- প্ৰাথমিক স্তৰৰ বাবে NISHTHA১.০ (প্ৰথম শ্ৰেণী -অষ্টম শ্ৰেণীলৈ)
- মাধ্যমিক স্তৰৰ বাবে NISHTHA২.০ (নৱম শ্ৰেণী -দ্বাদশ শ্ৰেণীলৈ)
- NIPUN ভাৰতৰ বাবে NISHTHA ৩.০ (প্ৰাথমিক শিশুৰ যত্ন আৰু শিক্ষা (Early Childhood Care and Education)ৰ পৰা পঞ্চম শ্ৰেণীলৈ)

ৰাষ্ট্ৰীয় উদ্যোগৰ সৈতে সংগতি ৰাখি, অসমতো ৰাজ্যখনৰ কৰ্মৰত শিক্ষকসকলৰ বৃত্তিমূলক বিকাশৰ বাবে অনলাইন NISHTHA কাৰ্যসূচী ৰূপায়ণ কৰা হৈছে।

২) অধ্যয়নৰ উদ্দেশ্যসমূহ ঃ

ক) গুণগত মানৰ প্ৰশিক্ষণ কাৰ্যসূচীৰ ডিজাইন আৰু প্ৰদানৰ সন্দৰ্ভত শিকন ব্যৱস্থাপনা প্ৰণালীৰ ভূমিকা আৰু গুৰুত্ব অধ্যয়ন কৰা, আৰু

খ) শিকন ব্যৱস্থাপনা প্ৰণালীৰ জৰিয়তে প্ৰদান কৰা বৃত্তিমূলক বিকাশ প্ৰশিক্ষণ কাৰ্যসূচীৰ ফলপ্ৰসূতা সন্দৰ্ভত সাহিত্য পৰ্যালোচনা কৰা।

৩) গৱেষণাৰ পদ্ধতি ঃ

গুণগত মানৰ প্ৰশিক্ষণ কাৰ্যসূচীৰ ডিজাইন আৰু প্ৰদানৰ প্ৰেক্ষাপটত শিকন ব্যৱস্থাপনা প্ৰণালীৰ ভূমিকা আৰু গুৰুত্বই সাম্প্ৰতিক সময়ত যথেষ্ট মনোযোগ আকৰ্ষণ কৰিছে আৰু অধ্যয়নৰ এক গুৰুত্বপূৰ্ণ ক্ষেত্ৰ হিচাপে পৰিগণিত হৈছে। এই অধ্যয়নত ডিজিটেল মঞ্চ- DIKSHA-ৰ জৰিয়তে প্ৰদান কৰা বৃত্তিমূলক বিকাশ প্ৰশিক্ষণ কাৰ্যসূচী- NISHTHA-ৰ ফলপ্ৰসূতা জুখিবলৈ এটা মূল্যায়নমূলক গাঁথনি বিকাশৰ ওপৰত গুৰুত্ব আৰোপ কৰা হৈছে। মূল্যায়ন গাঁথনিটো বিদ্যমানৰ সাহিত্য, অধ্যয়ন, নথি পত্ৰ আৰু প্ৰতিবেদনৰ বিশ্লেষণৰ ওপৰত ভিত্তি কৰি প্ৰস্তুত কৰা হৈছে।

৪) সাহিত্য পৰ্যালোচনা (Literature Review) ঃ

শিক্ষকসকলৰ বাবে বিকশিত বৃত্তিমূলক বিকাশ প্ৰশিক্ষণ কাৰ্যসূচী ঃ

- শৈক্ষিক ব্যৱস্থাৰ বৰ্তমানৰ ধাৰা আৰু নীতিৰ সৈতে জড়িত হৈ থাকিবলৈ বৃত্তিমূলক বিকাশ কাৰ্যসূচী হৈছে শিক্ষকসকলৰ বাবে এক অপৰিহাৰ্য আহিলা (Mizell, ২০১০)। ই শিক্ষকসকলক নতুন জ্ঞান আৰু দক্ষতা

শিকিবলৈ আৰু প্ৰয়োগ কৰাৰ সুযোগ প্ৰদান কৰে, যিয়ে শিক্ষকসকলক কৰ্মক্ষেত্ৰত তেওঁলোকৰ প্ৰদৰ্শন উন্নত কৰাত সহায় কৰে।

- Goswami (২০১৫)-য়ে পৰামৰ্শ দিছিল যে অপ্ৰশিক্ষিত বিদ্যালয়ৰ শিক্ষকসকলে বৃত্তিগতভাৱে উন্নতি লাভ কৰিবলৈ প্ৰশিক্ষণ কাৰ্যসূচী গ্ৰহণ কৰিব লাগে। তেওঁ আৰু কয় যে এই কাৰ্যসূচীসমূহে শিক্ষকসকলৰ বৃত্তিমূলক বিকাশত যথেষ্ট প্ৰভাৱ পেলায়।
- Kaur (২০১৬)-য়ে কৰ্মৰত শিক্ষকসকলৰ প্ৰশিক্ষণ কাৰ্যসূচীৰ ওপৰত কৰা অধ্যয়নত শিক্ষকসকলৰ ধনাত্মক মনোভাবৰ উন্নতি সাধনত এই প্ৰশিক্ষণ কাৰ্যসূচীসমূহ ফলপ্ৰসূ হোৱা বুলি বিবেচনা কৰিছে। এই অধ্যয়নৰ পৰা এটা কথা প্ৰতীয়মান হৈছে যে কৰ্মৰত শিক্ষক প্ৰশিক্ষণ কাৰ্যসূচী সম্পূৰ্ণ হোৱা পিছত শিক্ষকসকলৰ মনোভাব আৰু শিক্ষকসকলৰ কাৰ্যকৰিতা যথেষ্ট উন্নত হৈছে।
- Agravat (২০১৭)-ৰ অধ্যয়নত বৃত্তিমূলক বিকাশ প্ৰশিক্ষণ মডিউলসমূহে শিক্ষকসকলক তেওঁলোকৰ নিৰন্তৰ বৃত্তিমূলক বিকাশৰ দিশত অত্যন্ত প্ৰভাৱিত কৰিবলৈ সক্ষম হোৱা বুলি বিবেচনা কৰিছে আৰু তাৰ ফলস্বৰূপে শিক্ষকসকলৰ বৰ্তমানৰ শিক্ষকৰ ভূমিকাত ৰূপান্তৰ আনিছে।
- নিৰন্তৰ বৃত্তিমূলক বিকাশ কাৰ্যকলাপসমূহ বিষয়মূলক জ্ঞান উন্নীতকৰণ তথা শেহতীয়া নতুন পদক্ষেপ আৰু নীতি আদি তথ্যৰ জ্ঞান বৃদ্ধি কৰাত সহায়ক হয়। নিৰন্তৰ বৃত্তিমূলক বিকাশ কাৰ্যসূচীৰ এক শক্তি হ'ল ই সমগ্ৰ শিক্ষা-প্ৰতিষ্ঠানসমূহত নেটৱৰ্কিঙৰ সুযোগ দিয়ে (Bartleton, ২০১৮)

শিকন ব্যৱস্থাপনা প্ৰণালী- শিকন আৰু প্ৰশিক্ষণৰ বাবে এটা ডিজিটেল মঞ্চ ঃ

- আজিৰ দ্ৰুতগতিত বিকশিত হোৱা এই ডিজিটেল জগতখনত সংস্থাসমূহে নিশ্চিত কৰিব লাগিব যে তেওঁলোকৰ প্ৰশিক্ষণ কাৰ্যসূচীসমূহ খৰচ-বহনক্ষম, কাৰ্যক্ষম আৰু পুংখানুপুংখ হোৱা উচিত (Babavani & Prabhu, ২০১৮)। প্ৰযুক্তিৰ সহায়ত সংস্থাসমূহৰ বাবে এই লক্ষ্যসমূহ লাভ কৰিবলৈ সমাধান উপলব্ধ আছে। তেনে এটা সমাধান হৈছে শিকন ব্যৱস্থাপনা প্ৰণালী, যিটো শিকন আৰু প্ৰশিক্ষণ প্ৰদানৰ বাবে এটা ডিজিটেল মঞ্চ (Mulholland & Nissenbaum, ২০১৭)।
- শিকন ব্যৱস্থাপনা প্ৰণালীয়ে শিকন আৰু প্ৰশিক্ষণ কাৰ্যসূচী প্ৰদানৰ বাবে বিভিন্ন সুবিধা প্ৰদান কৰে, যেনে-পাঠ্যক্ৰমৰ সামগ্ৰী, প্ৰদত্ত কৰ্ম (Assignment), মতামত সংগ্ৰহ আদিৰ ব্যৱস্থাপনা (Roy, Chatterjee, & Sarkar, ২০১৮)।
- Jamal আৰু Shanaah (২০১১)-য়ে গৱেষণামূলক অধ্যয়নত দেখিছে যে শিকন ব্যৱস্থাপনা প্ৰণালীয়ে ছাত্ৰ-ছাত্ৰীসকলক তেওঁলোকৰ শিকন কাৰ্যকলাপত সহায় কৰে। অনলাইন পাৰস্পৰিক ক্ৰিয়া-কলাপ আৰু আলোচনাৰ সুবিধা শিকন ব্যৱস্থাপনা প্ৰণালীৰ এক উল্লেখযোগ্য বৈশিষ্ট্য। শিকন ব্যৱস্থাপনা প্ৰণালীয়ে শিক্ষকসকলক পাঠ্যক্ৰমৰ সমল, আবণ্টন কৰা আৰু ঘোষণা পৰিচালনাৰ জৰিয়তে ছাত্ৰ-ছাত্ৰীৰ সৈতে যোগাযোগ কৰিবলৈ সুবিধা প্ৰদান কৰে।
- নিৰ্দেশনামূলক সমল প্ৰদান আৰু জ্ঞান আহৰণৰ ক্ষেত্ৰত শিকন ব্যৱস্থাপনা প্ৰণালী ফলপ্ৰসূ বুলি প্ৰমাণ কৰা হৈছে (Tasi, ২০১৬)। ইয়াৰ মূল কাৰণ হৈছে শিক্ষক আৰু ছাত্ৰ-ছাত্ৰীৰ মাজত যোগাযোগ সহজ কৰি তোলাৰ ক্ষমতা, কিয়নো ই শিক্ষকসকলক পাঠ্যক্ৰমৰ সামগ্ৰী, প্ৰদত্ত কৰ্ম (Assignment) আৰু ঘোষণা পৰিচালনা কৰিবলৈ সুবিধা প্ৰদান কৰে।
- শিকন ব্যৱস্থাপনা প্ৰণালীৰ ব্যৱহাৰযোগ্যতা আৰু অভিগম্যতা বৈশিষ্ট্য আৰু শিকন শৈলীৰ মাজত এক ইতিবাচক সম্পৰ্ক আছে (Thiruselvi, ২০১৫)। অধ্যয়নটোত প্ৰকাশ পাইছে যে ছাত্ৰ-ছাত্ৰীসকলক শিক্ষকসকলে শিকন ব্যৱস্থাপনা প্ৰণালীৰ সকলো বৈশিষ্ট্য

ব্যৱহাৰ কৰিবলৈ উৎসাহিত কৰি বিভিন্ন শিকনশৈলীৰে ছাত্ৰ-ছাত্ৰীসকলক উপকৃত কৰিব লাগে।

- শিকন ব্যৱস্থাপনা প্ৰণালী শিক্ষানুষ্ঠানসমূহৰ এক অবিচ্ছেদ্য কাৰ্যকৰী অংগ হৈ পৰিছে। শিকন ব্যৱস্থাপনা প্ৰণালীয়ে প্ৰশিক্ষণৰ লক্ষ্য পূৰণ কৰিবলৈ ব্যক্তি আৰু দলৰ বাবে অনুকূলিত শিকন ব্যৱস্থা প্ৰদান কৰে। শিকন ব্যৱস্থাপনা প্ৰণালীয়ে বহুমূখী কৌশলগত কাৰ্য যেনে- প্ৰতিভা ব্যৱস্থাপনা, কৰ্মক্ষমতা জোখা, পুৰস্কাৰ তথা ক্ষতিপূৰণ আৰু লগতে পৰামৰ্শ সম্পৰ্কীয় বিষয় যেনে- সঠিক প্ৰতিভা নিযুক্তি, নেতৃত্ব বিকাশ আৰু পৰৱৰ্তী পৰিকল্পনা আদি প্ৰদান কৰে (Ilyas, Kadir, & Adnan, ২০১৭)।

NISHTHA-(মুখামুখি মোড) কাৰ্যসূচী ঃ

ভাৰত চৰকাৰৰ শিক্ষা মন্ত্ৰালয়ে ২১ আগষ্ট ২০১৯ তাৰিখে বৃত্তিমূলক বিকাশ কাৰ্যসূচী- NISHTHA মুখামুখি মোড আনুষ্ঠানিকভাৱে আৰম্ভ কৰিছিল। পৰৱৰ্তী সময়ত ৩৪ খন ৰাজ্য আৰু কেন্দ্ৰীয়শাসিত অঞ্চলসমূহত NISHTHA কাৰ্যসূচী আৰম্ভ কৰে। এই কাৰ্যসূচীৰ সফল ৰূপায়ণ নিশ্চিত কৰিবলৈ NCERT-য়ে ৩৩ খন ৰাজ্য আৰু কেন্দ্ৰীয়শাসিত অঞ্চলত ৰাজ্যিক পৰ্যায়ত ৰাজ্যিক সমল গোট (State Resource Group) প্ৰশিক্ষণ আয়োজন কৰিছিল। ইয়াৰ পিছত ২৩ খন ৰাজ্য আৰু কেন্দ্ৰীয়শাসিত অঞ্চলত জিলা পৰ্যায়ৰ শিক্ষক প্ৰশিক্ষণ কাৰ্যসূচী অনুসৰণ কৰা হৈছিল। NISHTHA মুখামুখি প্ৰশিক্ষণ সম্পাদন কৰাৰ বাবে ৰাষ্ট্ৰীয় শৈক্ষিক অনুসন্ধান আৰু প্ৰশিক্ষণ পৰিষদ (NCERT), ৰাষ্ট্ৰীয় শিক্ষা পৰিকল্পনা আৰু প্ৰশাসন প্ৰতিষ্ঠান (National Institute of Educational Planning and Administration) আৰু কেন্দ্ৰীয় বিদ্যালয় সংগঠন (Kendriya Vidyalaya Sangathan)-ৰ সদস্যসকলক লৈ ৰাষ্ট্ৰীয় সমল গোট (National Resource Group) গঠন কৰা হৈছিল। মুখ্য সমল ব্যক্তি (Key Resource Person) আৰু ৰাজ্যিক সমল ব্যক্তি-নেতৃত্ব (State Resource Person-Leadership) ৰাজ্য আৰু কেন্দ্ৰীয়শাসিত অঞ্চলৰ দ্বাৰা চিনাক্ত কৰা হৈছিল, যিয়ে শৈক্ষিক-খণ্ড পৰ্যায়ত শিক্ষকসকলক পোনপটীয়াকৈ প্ৰশিক্ষণ প্ৰদান কৰিছিল, যাৰ ফলত একাধিক পৰ্যায়ৰ প্ৰশিক্ষণৰ প্ৰয়োজনীয়তা নাইকিয়া হৈছিল।

NISHTHA-(মুখামুখি মোড) কাৰ্যসূচীৰ প্ৰতিবেদন (১৯-১০-২০২২ অনুসৰি) ঃ

(**উৎস**- NISHTSHA ৰেৰ পৰ্টেল)

(**লিংক** -https://itpd.ncert.gov.in/mss/nishthadashboard/dashboard.php)

- **ৰাজ্যিক সমল গোট প্ৰশিক্ষণৰ ৰাষ্ট্ৰীয় প্ৰতিবেদন**

SRG প্ৰশিক্ষণ সম্পূৰ্ণ কৰা ৰাজ্যৰ সংখ্যা	২৮
SRG প্ৰশিক্ষণ চলি থকা ৰাজ্যৰ সংখ্যা	৬
SRG প্ৰশিক্ষণ বাবে মনোনীত ৰাজ্যৰ সংখ্যা	২
মুঠ ৰাজ্য	৩৬

SRG	আৰম্ভ কৰা ৰাজ্যৰ মুঠ সংখ্যা	৩৪
SRGs	লক্ষ্য	অৰ্জন কৰা হৈছে
SRPLs	৫৪৯০	৪০১১
KRPs	২৭৪৫২	১৯৪০৮
সৰ্ব মুঠ	৩২৯৪২	২৩৪১৯

- **অসমৰ SRG প্ৰশিক্ষণৰ লক্ষ্য আৰু সাফল্যতাৰ প্ৰতিবেদন**

SRPLs		KRPs		স্থিতি
লক্ষ্য	অৰ্জন কৰা হৈছে		লক্ষ্য	অৰ্জন কৰা হৈছে
২৫১	২৪৮	১২৫৫	১১২৮	সম্পূৰ্ণ হ'ল

- **বিদ্যালয়প্ৰধান আৰু শিক্ষকসকলৰ প্ৰশিক্ষণৰ ৰাষ্ট্ৰীয় প্ৰতিবেদন**

বিদ্যালয়প্ৰধান আৰু শিক্ষক প্ৰশিক্ষণ সম্পূৰ্ণ কৰা ৰাজ্যৰ সংখ্যা	১০
বিদ্যালয়প্ৰধান আৰু শিক্ষক প্ৰশিক্ষণ চলি থকা ৰাজ্যৰ সংখ্যা	১৭
বিদ্যালয়প্ৰধান আৰু শিক্ষক প্ৰশিক্ষণৰ বাবে মনোনীত ৰাজ্যৰ সংখ্যা	৯
মুঠ ৰাজ্য	৩৬

বিদ্যালয়প্ৰধান আৰু শিক্ষক প্ৰশিক্ষণ আৰম্ভ কৰা ৰাজ্যৰ সংখ্যা		২৭
বিদ্যালয়প্ৰধান আৰু শিক্ষকসকল	লক্ষ্য	অৰ্জন কৰা হৈছে
বিদ্যালয়ৰ প্ৰধানসকল	৩৪৯৩৮৫	১৭১৬৭৯
শিক্ষকসকল	৩৬৩২১০০	১৫৭৮২১৪
সৰ্ব মুঠ	৩৯৮১৪৮৫	১৭৪৯৮৯৩

বিদ্যালয়ৰ প্ৰধানসকল		শিক্ষকসকল	
লক্ষ্য	অৰ্জন কৰা হৈছে	লক্ষ্য	অৰ্জন কৰা হৈছে
৩০৮৪৬	১৮৭৩৫	১৫২৯৩০	১২৬৭৭৮

ক'ভিড-১৯ৰ ব্যাঘাতৰ বাবে অসমতো NISHTHA মুখামুখি মোড কাৰ্যসূচী বন্ধ হৈ পৰে আৰু তাৰ বাবে অসমে ৰাজ্যত এই কাৰ্যসূচী সম্পূৰ্ণ কৰিব নোৱাৰিলে।

অনলাইন মোডত NISHTHA প্ৰশিক্ষণ কাৰ্যসূচী ঃ

ৰাষ্ট্ৰীয় শিক্ষা নীতি-২০২০-ত উল্লেখ কৰা পৰামৰ্শ অনুসৰি শিক্ষক আৰু বিদ্যালয়ৰ প্ৰধান শিক্ষকসকলৰ সামগ্ৰিক উন্নতি নিশ্চিত কৰাৰ বাবে অনলাইন NISHTSHA প্ৰশিক্ষণ কাৰ্যসূচী প্ৰস্তুত কৰা হৈছে। অনলাইন NISHTHA প্ৰশিক্ষণ কাৰ্যসূচী এনেদৰে প্ৰস্তুত কৰা হৈছে যে শিক্ষক, বিদ্যালয়ৰ প্ৰধান শিক্ষক, শিক্ষক প্ৰশিক্ষক আৰু শিক্ষাখণ্ডৰ সকলো স্তৰৰ কৰ্মকৰ্তাসকলে একেলগে এই কাৰ্যসূচীক অংশগ্ৰহণ কৰিব পাৰে।

অনলাইন NISHTSHA প্ৰশিক্ষণ কাৰ্যসূচীৰ বিশেষত্বসমূহ ঃ

অনলাইন পাঠ্যক্ৰমসমূহত প্ৰশিক্ষাৰ্থীসকলক নিয়োজিত কৰি ৰাখিবলৈ আৰু বিভিন্ন শিকনশৈলীক সম্বোধন কৰিবলৈ ভিডিঅ', পাঠ্য সামগ্ৰী, আন্তঃক্ৰিয়ামূলক কাৰ্যকলাপ, প্ৰতিফলিত কাৰ্যকলাপ, বাহ্যিক লিংক, ৰেফাৰেন্স সামগ্ৰী আদি বিভিন্ন সম্পদ আছে।

- **প্ৰাথমিক স্তৰৰ বাবে অনলাইন NISHTHA ১.০ (প্ৰথম শ্ৰেণী -অষ্টম শ্ৰেণীলৈ) ঃ**

অনলাইন NISHTHA ১.০ মডিউলসমূহ শিক্ষাৰ্থীকেন্দ্ৰিক শিকনশৈলী আৰু ছাত্ৰ-ছাত্ৰীসকলৰ সামগ্ৰিক বিকাশৰ ওপৰত বিশেষ গুৰুত্ব আৰোপ কৰি নিৰ্মাণ কৰা হৈছে। পাঠ্যক্ৰম আৰু সামগ্ৰিক শিক্ষা, স্বাস্থ্য আৰু সুস্থতা, ব্যক্তিগত-সামাজিক গুণাগুণ, কলা সংহত শিকন, বিদ্যালয় শিক্ষাৰ পদক্ষেপ, বিষয়-নিৰ্দিষ্ট শিকনশৈলী, শিকন-শিক্ষণত আই.চি.টি (ICT)ৰ একত্ৰীকৰণ, নেতৃত্ব, যৌন অপৰাধ পৰা শিশু সুৰক্ষা (POSCO) আইন-২০১২ আৰু ক'ভিড-১৯ মহামাৰীৰ সময়ত দায়িত্বশীল আচৰণ আদিৰ দৰে বিষয়সমূহ এই কাৰ্যসূচীৰ পাঠ্যক্ৰমত সংলগ্ন কৰা হৈছে।

অনলাইন NISHTHA ১.০ (প্ৰাথমিক স্তৰৰ বাবে) কাৰ্যসূচীৰ প্ৰতিবেদন ঃ

(**উৎস**- NISHTSHA ৰেৰ পৰ্টেল)

(**লিংক**-https://n20.ncert.org.in/analytics.php)

- **ভাৰতত পাঠ্যক্ৰম অনুসৰি মুঠ পঞ্জীয়ন বনাম মুঠ সম্পূৰ্ণ হোৱাৰ সংখ্যা**

মুঠ পঞ্জীয়ন	মুঠ সম্পূৰ্ণ	মুঠ প্ৰমাণপত্ৰ প্ৰদান
৫১৭২৫০২৯	৪৬১৭৫৬০৩	১৯৫২০৩৩৭

- **অসমত পাঠ্যক্ৰম অনুসৰি মুঠ পঞ্জীয়ন বনাম মুঠ সম্পূৰ্ণ হোৱাৰ সংখ্যা**

মুঠ পঞ্জীয়ন	মুঠ সম্পূৰ্ণ
৬০৩৭৭	৪৯৮২৭

ৰাষ্ট্ৰীয় শিক্ষানীতি- ২০২০-ৰ দৃষ্টিভংগী বাস্তৱায়িত কৰিবলৈ অনলাইন কাৰ্যসূচী আৰম্ভ আৰু ৰূপায়ণ কৰা হৈছিল আৰু ইয়াক ২০২১-২২ চনৰ ভিতৰত মৌলিক সাক্ষৰতা আৰু সাংখ্যিকতা পৰ্যায় আৰু মাধ্যমিক পৰ্যায় সামৰি ল'বলৈ সম্প্ৰসাৰিত কৰা হৈছিল।

• মাধ্যমিক স্তৰৰ বাবে অনলাইন NISHTHA ২.০ (নৱম শ্ৰেণী -দ্বাদশ শ্ৰেণীলৈ) ঃ

মাধ্যমিক পৰ্যায়ৰ শিক্ষক আৰু বিদ্যালয়ৰ প্ৰধান শিক্ষকসকলৰ বৃত্তিমূলক বিকাশৰ প্ৰতি লক্ষ্য ৰাখি অনলাইন NISHTHA ২.০ মাধ্যমিক পৰ্যায়ত প্ৰৱৰ্তন কৰা হৈছিল। এই কাৰ্যসূচীত মুঠ ১৯টা পাঠ্যক্ৰম আছে, ইয়াৰে ১২টা সাধাৰণ পাঠ্যক্ৰম আৰু আনহাতে বাকী ৭টা শিকনশৈলীমূলক পাঠ্যক্ৰম। শিকনশৈলীৰ পাঠ্যক্ৰমসমূহে সামৰি লোৱা বিষয়সমূহ হ'ল বিজ্ঞান, গণিত, সমাজ বিজ্ঞান আৰু ভাষা। প্ৰতিজন মাধ্যমিক পৰ্যায়ৰ শিক্ষক আৰু বিদ্যালয়ৰ প্ৰধান শিক্ষকে ১২টা সাধাৰণ পাঠ্যক্ৰম আৰু নিজৰ বিষয় অনুসৰি যিকোনো এটা শিকলশৈলীৰ পাঠ্যক্ৰম সম্পূৰ্ণ কৰিব লাগিব। NISHTHA ২.০-য়ে মাধ্যমিক পৰ্যায়ৰ শিক্ষক আৰু বিদ্যালয়ৰ প্ৰধান শিক্ষকসকলক তেওঁলোকৰ জ্ঞান সম্প্ৰসাৰণ আৰু শিক্ষকতা দক্ষতা বৃদ্ধিৰ এক সুন্দৰ সুযোগ প্ৰদান কৰিছে।

• NIPUN ভাৰতৰ বাবে অনলাইন NISHTHA ৩.০ (FLN) (প্ৰাথমিক শিশুৰ যত্ন আৰু শিক্ষা (ECCE)ৰ পৰা পঞ্চম শ্ৰেণীলৈ) ঃ

শিশুৰ ভৱিষ্যতৰ শৈক্ষিক বিকাশৰ ভেটি হৈছে শিশুৰ প্ৰাৰম্ভিক সময়ৰ শিকন। আৰু ইয়াৰ গুৰুত্বক স্বীকাৰ কৰি ৰাষ্ট্ৰীয় শিক্ষা নীতি-২০২০-এ ২০২৬-২৭ চনৰ ভিতৰত সাৰ্বজনীন মৌলিক সাক্ষৰতা আৰু সাংখ্যিকতা (Foundatioanl Literacy and Numeracy) লাভ কৰাৰ প্ৰয়োজনীয়তাৰ ওপৰত গুৰুত্ব আৰোপ কৰিছে। নীতিত উল্লেখ কৰিছে যে, "২০২৬-২৭ চনৰ ভিতৰত আমাৰ সৰ্বোচ্চ অগ্ৰাধিকাৰ হ'ব লাগিব প্ৰাথমিক বিদ্যালয়সমূহত সাৰ্বজনীন মৌলিক সাক্ষৰতা আৰু সাংখ্যিকতা লাভ কৰা। যদি মৌলিক শিক্ষা প্ৰথমে প্ৰাপ্ত নহয় তেন্তে এই নীতিৰ বাকী অংশ আমাৰ শিক্ষাৰ্থীসকলৰ বাবে মুখ্যতঃ অপ্ৰাসংগিক হ'ব"। এই লক্ষ্য ৰূপায়ণ কৰিবলৈ NEP-২০২০-এ NISHTHA ৩.০ (FLN) কাৰ্যসূচীৰ পৰামৰ্শ দিয়ে। এই কাৰ্যসূচীত শিক্ষক, প্ৰধান শিক্ষক, শৈক্ষিক সমল ব্যক্তি আৰু শিক্ষাখণ্ডৰ প্ৰশাসকসকলৰ সামৰ্থ্য গঢ়ি তুলিবলৈ ১২টা ভিন্ন পাঠ্যক্ৰম উপলব্ধ কৰোৱা হৈছে।

৫) অনলাইন মঞ্চ- DIKSHA-ৰ জৰিয়তে প্ৰদান কৰা বৃত্তিমূলক বিকাশ কাৰ্যসূচী- NISHTHA-ৰ ফলপ্ৰসূতা ঃ

বৃত্তিমূলক বিকাশ কাৰ্যসূচী- NISHTSHA-ৰ অনলাইন পাঠ্যক্ৰমবোৰ শিক্ষক আৰু বিদ্যালয়ৰ প্ৰধান শিক্ষকসকলৰ সামগ্ৰিক উন্নতিৰ বাবে প্ৰস্তুত কৰা হৈছে, যাতে ভাৰতৰ শিক্ষাৰ মান উন্নত হয়। এই পাঠ্যক্ৰমবোৰ আন্তঃক্ৰিয়ামূলক আৰু আকৰ্ষণীয় কাৰ্যকলাপ, ভিডিঅ', ঘটনা অধ্যয়ন আৰু আলোচনাৰ সৈতে সমৃদ্ধ। ইয়াৰ উপৰি এই পাঠ্যক্ৰমবোৰ নমনীয় আৰু শিক্ষাৰ্থীসকলে নিজৰ শিকনৰ গতিত এই পাঠ্যক্ৰমবোৰ সম্পূৰ্ণ কৰিব পাৰে।

NISHTHA কাৰ্যসূচীৰ অন্তৰ্ভুক্ত পাঠ্যক্ৰমসমূহ শিক্ষক আৰু বিদ্যালয়ৰ প্ৰধান শিক্ষকসকলক তেওঁলোকৰ ভূমিকাত সফল হ'বলৈ প্ৰয়োজনীয় দক্ষতা, জ্ঞান আৰু মনোভাবৰ সৈতে সজ্জিত কৰি তুলিবৰ বাবে বিশেষভাৱে প্ৰস্তুত কৰা হৈছে। এই পাঠ্যক্ৰমবোৰত স্বাস্থ্য আৰু কল্যাণ, পাঠ্যক্ৰম আৰু সামগ্ৰিক শিক্ষা, ব্যক্তিগত-সামাজিক গুণাগুণ, কলা-একত্ৰিত শিক্ষা, বিদ্যালয় শিক্ষাৰ পদক্ষেপ, বিষয় নিৰ্দিষ্ট শিক্ষা, শিকন-শিক্ষণত আই.চি.টি.-ৰ একত্ৰীকৰণ আৰু নেতৃত্বৰ দৰে বিষয়বোৰৰ ওপৰত বিশেষ গুৰুত্ব দিয়া হৈছে।

NISHTHA কাৰ্যসূচীৰ জৰিয়তে শিক্ষকসকলৰ মাজত ডিজিটেল বিভাজন দূৰ কৰাত সফল হৈছে আৰু শিক্ষকসকলে ইণ্টাৰনেট সংযোগৰ সৈতে যিকোনো স্থানৰ

পৰা এই কার্যসূচীত যোগদান কৰিব পাৰে। DIKSHA হৈছে এক কার্যকৰী অনলাইন মঞ্চ তথা শিকন প্রশিক্ষণৰ বিষয়বস্তুৰ ফলপ্রসূ প্রদানৰ বাবে এটা খৰচ-বহনক্ষম শিকন ব্যৱস্থাপনা প্রণালী। বিভিন্ন শিকনশৈলী আৰু গতিৰ প্রশিক্ষার্থীসকলৰ বাবে DIKSHA-ই এক নমনীয় শিকন বিকল্প প্রদান কৰে। DIKSHA সকলোৰে বাবে সহজতে ৱেব-পৰ্টেল আৰু ম'বাইল এপত বিনামূলীয়াকৈ উপলব্ধ। ইয়াৰ উপৰি DIKSHA-ত বিভিন্ন প্রকাৰৰ বিষয়বস্তুও উপলব্ধ। তদুপৰি DIKSHA-ই শিক্ষার্থীসকলক তেওঁলোকৰ শিকন কার্যকলাপত সহায় কৰিবলৈ মতামত সংগ্রহ, অনলাইন পাৰস্পৰিক ক্রিয়া-কলাপ আৰু আলোচনাৰ কার্যকলাপ আদি বৈশিষ্ট্যসমূহ অন্তর্ভুক্ত কৰিছে।

সামগ্রিকভাৱে DIKSHA মঞ্চৰ জৰিয়তে প্রদান কৰা NISHTHA বৃত্তিমূলক বিকাশ কার্যসূচীৰ ফলপ্রসূতা অতি ইতিবাচক। এই কার্যসূচীয়ে শিক্ষক আৰু অন্যান্য শিক্ষা বৃত্তিৰ লগত জড়িতসকলক ভাৰতত শিক্ষাৰ মান উন্নত কৰাৰ বাবে প্রয়োজনীয় দক্ষতা আৰু জ্ঞান প্রদান কৰাত ফলপ্রসূ হৈছে।

৬) উপসংহাৰ আৰু পৰামর্শ ঃ

ডিজিটেল যুগে শিকন আৰু প্রশিক্ষণ কার্যসূচী প্রদানৰ বাবে এক কার্যকৰী ডিজিটেল মঞ্চৰ প্রয়োজনীয়তা কঢ়িয়াই আনিছে। DIKSHA-ই শিক্ষকসকলক বৃত্তিমূলক বিকাশ কার্যসূচীত যোগদান আৰু জড়িত হোৱাৰ বাবে এক বিস্তৃত আৰু আন্তঃক্রিয়ামূলক শিকন পৰি�ৰেশ প্রদান কৰিছে। ইয়াৰ উপৰি DIKSHA খৰচ-বহনক্ষম এক কার্যকৰী ডিজিটেল মঞ্চ। DIKSHA-ৰ সহায়ত শিক্ষকসকলে যিকোনো ডিজিটেল ডিভাইচৰ যোগেদি, যিকোনো ঠাইৰ পৰা কার্যসূচীৰ বিষয়বস্তু উপলব্ধ কৰিব পাৰে, আৰু যাৰ ফলস্বৰূপে কার্যসূচীৰ বিষয়বস্তুসমূহ ভৌগলিক সীমা অতিক্রম কৰি একলগে সমগ্র প্রশিক্ষার্থীৰ মাজলৈ লৈ যোৱাত সফল হৈ উঠিছে।

অনলাইন NISHTHA কার্যসূচীত শেহতীয়া শিকনশৈলী, শিকন ফলাফলৰ ওপৰত আধাৰিত গঠনমূলক আৰু অভিযোজিত মূল্যাংকন আৰু দক্ষতাৰ ওপৰত আধাৰিত শিকন আৰু শিকনশৈলী আদি সামৰি লোৱা হৈছে, যেনে- অভিজ্ঞতামূলক শিকন, কলা-একত্রিত, ক্রীড়া-একত্রিত আৰু কাহিনী-আধাৰিত পদ্ধতি। যিবোৰ প্রকৃততে শিক্ষকসকলৰ বৃত্তিমূলক বিকাশ আৰু বিদ্যালয় শিক্ষা প্রণালীত মানৰ উদ্বেগ প্রাপ্ত কৰাৰ বাবে প্রয়োজন।

ডিজিটেল মঞ্চ DIKSHA-এ শিকন প্রক্রিয়াক অধিক আকর্ষণীয় কৰি তুলিবলৈ ছিমুলেচন (Simulation) আৰু ভার্চুৱেল ৰিয়েলিটি (Virtual Reality)ৰ দৰে অধিক আন্তঃক্রিয়ামূলক উপাদান প্রৱর্তন কৰাৰ কথা বিবেচনা কৰিব লাগে। ইয়াৰ উপৰি এই মঞ্চই শিক্ষকসকলক শিকিবলৈ আৰু প্রেৰণা দিবলৈ লিডাৰবর্ড (Leaderboard) আৰু পুৰস্কাৰ আদিৰ দৰে গেমিফিকেশন (Gamification) উপাদানসমূহ একত্রিত কৰিব পাৰে। তদুপৰি শিক্ষকসকলৰ বাবে শিকন অভিজ্ঞতা অধিক মনোগ্রাহী কৰি তুলিবলৈ কৃত্রিম বুদ্ধিমত্তা (Artificial Intelligence) আৰু মেচিন লার্নিং (Machine Learning) প্রযুক্তিৰ ব্যৱহাৰ কৰিব পাৰে আৰু ইয়াৰ দ্বাৰা শিকন প্রক্রিয়াটো অধিক ফলপ্রসূ আৰু কার্যক্ষম কৰি তুলিব পাৰে।

অনলাইন বৃত্তিমূলক বিকাশ কার্যসূচীৰ পাঠ্যক্রমৰ বিষয়বস্তু প্রয়োজনভিত্তিক হ'ব লাগে আৰু শিক্ষকসকলৰ নির্দিষ্ট প্রয়োজনীয়তা অনুসৰি প্রস্তুত কৰিব লাগে। বৃত্তিমূলক বিকাশ কার্যসূচীত শিক্ষকসকলক তেওঁলোকৰ দক্ষতা বিকাশত সহায় কৰিবলৈ ঘটনা অধ্যয়ন (Case Studies), ভূমিকা পালন, অনুকৰণ আৰু অন্যান্য আন্তঃক্রিয়ামূলক অনুশীলনৰ দৰে কার্যকলাপো অন্তর্ভুক্ত কৰিব লাগে। অনলাইন বৃত্তিমূলক বিকাশ কার্যসূচীৰ পাঠ্যক্রমৰ বিষয়বস্তুত শিক্ষা-ক্ষেত্রখনৰ শেহতীয়া উন্নয়নৰ লগতে ব্যক্তিগত আৰু বৃত্তিমূলক বিকাশৰ বাবে আটাইতকৈ ফলপ্রসূ দক্ষতাসমূহ অন্তর্ভুক্ত হ'ব লাগে। ইয়াৰ উপৰি পাঠ্যক্রমটোৱে এই দক্ষতাসমূহ কর্মক্ষেত্রত আৰু দৈনন্দিন জীৱনত কেনেকৈ প্রয়োগ কৰিব পাৰি তাৰ নির্দেশনা প্রদান কৰিব লাগে।

ফলপ্রসূতাৰ ওপৰত কৰা সাহিত্য পর্যালোচনাৰ পৰা এটা কথা প্রতীয়মান হৈছে যে শিকন ব্যৱস্থাপনা প্রণালীৰ জৰিয়তে প্রদান কৰাবৃত্তিমূলক বিকাশ কার্যসূচীৰ কার্যকৰীতা বিভিন্নদিশ সন্দর্ভত গৱেষণা হৈছে যাৰ সহায়ত আমি ইয়াৰ ফলপ্রসূতাৰ ওপৰত নিশ্চিত হ'ব পাৰো। প্রযুক্তিগত অভিগম্যতাৰ বাধাৰ বাহিৰে ইয়াৰ ফলপ্রসূতা সন্দর্ভত সন্দেহৰ অৱকাশ নাই, যদিহে ই প্রয়োজনীয়তাৰ আধাৰত নিৰন্তৰভাৱে অনুষ্ঠিত কৰা হয়। ❑

১) তথ্যসূত্র ঃ

Agravat M. R. (2017). An investigation of continuous professional development of teachers of English at college level in Gujarat (Doctoral thesis). AMET University. Chennai. Retrieved from http://hdl.handle.net/10603/314885

Babavani, S. & Prabhu, M. (2018). Learning Management Systems: An Overview. International Journal of Advanced Research in Computer Science and Software Engineering, 8(5), 31-34.

Bartleton L. (2018). A Case study of teachers' perceptions of the impact of continuing professional development on their professional practice in a further education college in the West Midlands. Educational futures. 1758-2199. Retrieved from http://hdl.handle.net/2436/621633

Bhardwaj A. (2019). "Employee Training and Development Through E-Learning" (A Study Of Some Selected Units In Power Sector) (Doctoral thesis). University of Kota, Kota (Raj). Retrieved from https://www.uok.ac.in/notifications/Amrita%20Bhardwaj%20Business%20Administration.pdf

Bordia, M. (2019). Measuring the effectiveness of in-service teacher training a comparative study of government and private elementary school teachers (Doctoral thesis). IIS (Deemed to be University). Jaipur. Retrieved from http://hdl.handle.net/10603/287406

Central Institute of Educational Technology. (n.d.). DIKSHA Training. Retrieved from https://ciet.ncert.gov.in/activity/dikshatraining

DIKSHA.(n.d.). Retrieved from https://diksha.gov.in/

Goswami, A. (2015). Effectiveness of Teachers Training programme at the Elementary Schools Stage in Assam (Doctoral thesis). Rajiv Gandhi University. Itanagar. Retrieved from http://hdl.handle.net/10603/212375

Ilyas M., Kadir K. A. and Adnan Z., (2017). Training and Development in Organizations: Strategic Innovations and Applications. International Business Management, 11: 370-374, DOI: 10.36478/ibm.2017.370.374. Retrieved from https://medwelljournals.com/abstract/?doi=ibm.2017.370.374

Jamal, H., & Shanaah, A. (2012). The Role of Learning Management Systems in Educational Environments: An Exploratory Case Study. Linnaeus University. Sweden. Retrieved from http://lnu.diva-portal.org/smash/get/diva2:435519/FULLTEXT01.pdf

Kaur R. (2016). Effectiveness of in-service teacher training programmes at elementary stage in Punjab an evaluative study (Doctoral thesis). Punjabi University. Patiala. Retrieved from http://hdl.handle.net/10603/251165

Mizell H. (2010). Why professional development matters. United States of America. ISBN 978-0-9800393-9-9. Retrieved from https://learningforward.org/wp-content/uploads/2017/08/professional-development-matters.pdf

Mulholland, P. & Nissenbaum, H. (2017). The Impact of Learning Management Systems on Teacher Practice. International Journal of Educational Technology in Higher Education, 14(1), 45-64.

National Education Policy (2020), Ministry of Human Resource Department, Govt. of India. Retrieved from https://www.education.gov.in/sites/upload_files/mhrd/files/NEP_Final_English_0.pdf

NCERT. (n.d.). National Initiative for School Heads' and Teachers' Holistic Advancement (NISHTHA). Retrieved from http://nishtha.ncert.gov.in

NCTE (1998). Quality Concerns in Secondary Teacher Education. New Delhi. Retrieved from http://14.139.60.153/bitstream/123456789/2274/1/QUALITY%20CONCERNS%20IN%20SECONDARY%20TEACHER%20EDUCATION_D-10148.pdf

Roy, R., Chatterjee, P. & Sarkar, A. (2018). Learning Management System: A Tool for E-Learning. International Journal of Computer Science and Mobile Computing, 7(12), 238-244.

Tassi, A. (2016). Electronic Learning Management System Integration Impact on Tertiary Care Hospital Learners' Educational Performance (Doctoral thesis). Walden University. Walden. Retrieved from https://scholarworks.waldenu.edu/cgi/viewcontent.cgi?article=3797&context=dissertations

Thiruselvi P. (2015). Usability and Accessibility Features of Learning Management System and its Relation to Learning Styles(Doctoral thesis). Bharathiar University. Tamilnadu. Retrieved from http://hdl.handle.net/10603/233205

প্রবন্ধ

য়েছে দৰজে ঠংচিৰ মিছিং উপন্যাসত প্রকাশিত জনজাতীয় সমাজ ঃ এক চমু অৱলোকন

চিম্পী গগৈ

গৱেষক ছাত্রী
অসমীয়া বিভাগ,
গুৱাহাটী বিশ্ববিদ্যালয়
ই-মেইলঃ chimpeegogoi111@gmail.com

সংক্ষিপ্তসাৰ ঃ

বিশ্বৰ সাহিত্যিক ক্ষেত্রখনৰ বিভিন্ন ধাৰাসমূহৰ ভিতৰত মানৱজীৱন তথা সমাজৰ বিভিন্ন দিশ সুন্দৰৰূপত প্রতিবিম্বিত হোৱা এক অন্যতম ধাৰা হৈছে উপন্যাস। উপন্যাসত একোখন সমাজৰ নানান দিশে প্রকাশ লাভ কৰে। পৃথিৱীৰ বিভিন্ন ভাষাৰ সাহিত্যৰ দৰে অসমীয়া সাহিত্যৰ ভঁৰাল চহকী কৰাত গুৰুত্বপূর্ণ ভূমিকা গ্রহণ কৰিছে এই উপন্যাস সাহিত্যই। অসমীয়া সাহিত্যৰ এগৰাকী বিশিষ্ট কথাশিল্পী হৈছে য়েছে দৰজে ঠংচি। এই গৰাকী সাহিত্যিকে অসমীয়া সাহিত্যলৈ অতুলনীয় অৱদান আগবঢ়াই আহিছে। তেখেতৰ এখন উল্লেখযোগ্য উপন্যাস হৈছে 'মিছিং'। এই উপন্যাসখনৰ জৰিয়তে ঔপন্যাসিকে অৰুণাচলৰ এটি অন্যতম জনজাতি চেৰদুকপেনসকলৰ সমাজৰ বিভিন্ন দিশ পাঠকৰ দৃশ্যপটত দাঙি ধৰিবলৈ সক্ষম হৈছে। আমাৰ এই আলোচনাত উক্ত উপন্যাসখনত প্রকাশ পোৱা চেৰদুকপেন জনজাতিৰ সমাজজীৱন, ৰীতি-নীতি, পৰম্পৰা, লোকবিশ্বাস আদিৰ বিষয়ে এক চমু আলোচনা দাঙি ধৰাৰ প্রয়াস কৰা হ'ব।

সূচক শব্দ ঃ মিছিং, লোকবিশ্বাস, জনজাতি, উপন্যাস, পৰম্পৰা।

০.০ অৱতৰণিকা

সমগ্র ভাৰতবর্ষৰ দৰে ভাৰতৰ উত্তৰ-পূর্বাঞ্চল হৈছে বাৰেৰহণীয়া সংস্কৃতিৰ ৰহঘৰা। এই সাংস্কৃতিক সমন্বয়স্থলীত অতি প্রাচীনকালৰেপৰা বিভিন্ন জাতি-জনজাতিৰলোকে সমিলমিলেৰে বসবাস কৰি আহিছে। এই লোকসকলে উত্তৰ-পূব ভাৰতৰ পাহাৰ-ভৈয়াম এক অদৃশ্য সম্প্রীতিৰ দোলেৰে একাকাৰ কৰি বান্ধি ৰাখিছে। অৰুণাচলত জন্ম লাভ কৰা চেৰদুকপেন জনজাতিৰ বিশিষ্ট সাহিত্যিক য়েছে দৰজে ঠংচিয়ে অসমীয়া সাহিত্যৰ ভঁৰাল চহকী কৰাত অনবদ্য অৱদান আগবঢ়াই আহিছে। অসমীয়া ভাষাত সাহিত্যচর্চা কৰা এই সাহিত্যিকগৰাকীয়ে

বহুকেইখন উল্লেখযোগ্য উপন্যাস ৰচনা কৰিছে। তাৰে ভিতৰত অন্যতম উপন্যাসকেইখনমান হ'ল- চমন, মৌন ওঁঠ মুখৰ হৃদয়, শৰ কটা মানুহ, বিষকন্যাৰ দেশত, মিছিং, মই আকৌ জনম ল'ম (প্রথম আৰু দ্বিতীয় খণ্ড) আদি।

০.১ অধ্যয়নৰ উদ্দেশ্য আৰু লক্ষ্য

য়েছে দৰজে ঠংচিৰ মিছিং নামৰ উপন্যাসখন অসমীয়া সাহিত্যত এক অন্যতম সংযোজন। উপন্যাসখন এটা বিশেষ জনজাতিৰ সমাজ জীৱনৰ আধাৰত ৰচিত। সেই জনজাতিটো হৈছে অৰুণাচলৰ চেৰদুকপেন জনজাতি। গতিকে য়েছে দৰজে ঠংচিৰ 'মিছিং' উপন্যাসত প্রকাশিত জনজাতীয় সমাজ ঃ এক চমু অৱলোকন শীর্ষক বিষয়টিৰ অধ্যয়নৰ উদ্দেশ্য হৈছে ঔপন্যাসিকে জনজাতিটোৰ কোনবোৰ দিশ কাহিনীকথনৰ মাজেৰে দাঙি ধৰিছে তাৰ আলোচনা কৰা।

০.২ অধ্যয়নৰ পদ্ধতি, সমল আৰু পৰিসৰ

গৱেষণা কর্ম এক জটিল আৰু প্রণালীৱদ্ধ প্রক্রিয়া। বিষয়বস্তুৰ প্রকৃতি অনুযায়ী গৱেষণাৰ পদ্ধতিও সুকীয়া হয়। আমাৰ এই প্রস্তাৱিত বিষয়ৰ অধ্যয়নৰ ক্ষেত্রত বিশ্লেষণাত্মক(Analytical) পদ্ধতি প্রয়োগ কৰা হৈছে। এই অধ্যয়নত মূলতঃ পুথিভঁৰালৰ সহায় লোৱা হৈছে। অধ্যয়নৰ সহায়ক হোৱাকৈ মুখ্য সমল হিচাপে আলোচ্য উপন্যাসখন আৰু গৌণ সমল হিচাপে বিষয়বস্তুৰ লগত সম্পর্কিত পূর্বে লিখিত বিভিন্ন গ্রন্থ, পত্রিকা, আলোচনাদিৰপৰা প্রাপ্ত তথ্য-পাতিৰ সহায় লোৱা হৈছে।

আমাৰ এই অধ্যয়নৰ পৰিসৰত ঔপন্যাসিক য়েছে দৰজে ঠংচিৰ এখন অন্যতম উপন্যাস -মিছিংৰ আলোচনা সামৰি লোৱা হৈছে।

০.৩ বিষয়ৰ পূর্বকৃত অধ্যয়ন

অসমীয়া উপন্যাসত প্রকাশিত জনজাতীয় সমাজজীৱন তথা জনজাতীয় জীৱনভিত্তিক অসমীয়া উপন্যাসৰ বিষয়ে ইতিমধ্যে বহুজন গৱেষক, সমালোচকে বিভিন্ন গ্রন্থ, প্রবন্ধ আদি প্রকাশ কৰিছে। তাৰ ভিতৰত উল্লেখযোগ্য কেইখনমান গ্রন্থ হৈছে- নগেন ঠাকুৰে সম্পাদনা কৰা 'এশ বছৰৰ অসমীয়া উপন্যাস', হোমেন বৰগোহাঞিয়ে সম্পাদনা কৰা 'অসমীয়া সাহিত্যৰ বুৰঞ্জী(ষষ্ঠ খণ্ড)', অমল চন্দ্র দাসে সম্পাদনা কৰা 'অসমীয়া উপন্যাস পৰিক্রমা' আদি।

বিশিষ্ট কথাশিল্পী য়েছে দৰজে ঠংচিৰ সাহিত্যৰাজিৰ সম্পর্কে কৰা গৱেষণা গ্রন্থৰ ভিতৰত জিতাঞ্জলি বৰপূজাৰীৰ অসমীয়া উপন্যাসত উত্তৰ-পূর্বাঞ্চলৰ জনজাতীয় জীৱন ঃ এক বিশ্লেষণাত্মক অধ্যয়ন (১৯৯১), নিলিমা বৰাৰ য়েছে দৰজে ঠংচি আৰু লুম্মেৰ দাইৰ উপন্যাসত প্রতিফলিত জনজাতীয় জীৱনৰ তুলনামূলক অধ্যয়ন (২০১৭) আদি উল্লেখযোগ্য গ্রন্থ। এইকেইখন উল্লেখযোগ্য গ্রন্থৰ উপৰিও আন বহুজন আলোচক গৱেষকে বিভিন্ন অধ্যয়নৰ প্রসংগত ঠংচিৰ সাহিত্যকর্মৰ বিষয়ে বিভিন্নধৰণৰ গ্রন্থাদি প্রকাশ কৰিছে। এইসমূহৰ উপৰিও বিভিন্ন আলোচনী আদিৰ পাতত ঠংচিৰ সাহিত্যৰাজিৰ সৈতে সম্পর্কিত নানা ধৰণৰ গৱেষণামূলক প্রবন্ধ-পাতি প্রকাশ হৈ আহিছে।

১.০ মূল আলোচ্য বিষয়

মানৱজাতিৰ ইতিহাসৰ আৰম্ভণিৰেপৰা বিশ্বাস আৰু অন্ধবিশ্বাস দুয়োটাই মানৱসমাজৰ সৈতে অংগাংগীৱদ্ধপত সংপৃক্ত হৈ আছে। পৃথিৱীৰ সকলো মানৱজাতিয়েই কম বেছি পৰিমাণে অন্ধবিশ্বাসী। বিশ্বাস আৰু অন্ধবিশ্বাসক একেটা মুদ্রাৰে ইপিঠি সিপিঠি বুলি ক'ব পাৰি। আনকি পৃথিৱীৰ সকলো ধর্মৰ মূল ভেটি এই অন্ধবিশ্বাসৰ ওপৰত প্রতিষ্ঠিত বুলিও কোনো কোনো লোকে ক'ব বিচাৰে। গতিকে সাহিত্য যিহেতু সমাজৰ দাপোণস্বৱূপ, ইয়াত সমাজৰ এই বিশ্বাস, অন্ধবিশ্বাস আদি কম বেছি পৰিমাণে প্রতিফলিত হয়। য়েছে দৰজে ঠংচিৰ 'মিছিং' নামৰ উপন্যাসখনতো অৰুণাচল প্রদেশৰ চেৰদুকপেন জনজাতিৰ মাজত প্রচলিত বিশ্বাস, অন্ধবিশ্বাস, পৰম্পৰা, ৰীতি-নীতি, উৎসৱ-পার্বন আদি বিভিন্ন লোকসাংস্কৃতিক উপাদান সুন্দৰ ৰূপত উদ্ভাসিত হৈ উঠিছে।

আমাৰ আলোচ্য এই 'মিছিং' নামৰ সংক্ষিপ্ত কলেৱৰৰ উপন্যাসখন য়েছে দৰজে ঠংচিৰদ্বাৰা ৰচিত এখন অন্যতম সুখপাঠ্য উপন্যাস। উপন্যাসখনে পোন প্রথমে প্রকাশ লাভ কৰিছিল ২০০৮ চনত। ইয়াৰ কাহিনী তেখেতৰ অন্যান্য উপন্যাসতকৈ কিছু ব্যতিক্রমধর্মী। কম পৰিসৰৰ ভিতৰতে ঔপন্যাসিকে অতি স্বচ্ছন্দভাৱে চেৰদুকপেন জনজাতিৰ বিভিন্ন দিশ আমাৰ আগত দাঙি

ধৰিছে। 'মিছিং' শব্দৰ অর্থ হৈছে দেহৰপৰা ওলাই ফুৰা প্রেতাত্মা। গতিকে শিৰোনামটোৰপৰাই আমি উপন্যাসখনৰ সাম্ভাব্য বিষয়বস্তুৰ সম্পর্কে কিছু অনুমান কৰি ল'ব পাৰোঁ।

উপন্যাসখনৰ মূল বিষয়বস্তু হৈছে চেৰদুকপেন সমাজত প্রচলিত লোকবিশ্বাস, ৰীতি-নীতি। এই লোকবিশ্বাসৰ সৈতে ঔপন্যাসিকে কেইবাটাও সৰু-বৰ কাহিনী সংযোগ কৰিছে। আৰম্ভণিতে কাহিনী কথক অথবা উপন্যাসখনৰ এটা অন্যতম মুখ্য চৰিত্র টোপগে মহাজনৰ পুত্র আবু ঠংদোক ব্যৱসায় সংক্রান্তিয় কামৰ বাবে গুৱাহাটীলৈ আহি এখন হোটেলত সোমাইছে। ঠিক তেতিয়াই আবু ঠংদোকহঁতৰ ঘৰৰপৰা বহু বছৰৰ পূর্বে পলাই অহা সিং ড্রাইভাৰে তেওঁক দেখা কৰিবলৈ আহি মনে মনে পলাই অহাৰ আঁৰত থকা মিছিঙৰ দীঘলীয়া কাহিনী ক'বলৈ আৰম্ভ কৰিছে। সেই কাহিনীৰ লগে লগে ঔপন্যাসিকে আন কেইবাটাও সৰু সৰু কাহিনীৰ অৱতাৰণা কৰিছে। সিং ড্রাইভাৰ ঠংদোকহঁতৰ ঘৰলৈ অহাৰ পূর্বৰ কাহিনীও ঔপন্যাসিকে লগে লগে কৈ গৈছে। দুদিন ধৰি সিং ড্রাইভাৰে পল্টনবজাৰৰ হোটেলৰ বন্ধ কোঠাত নিজৰ অতীতৰ সকলো কথা আবু ঠংদোক ক'লে। কিদৰে সিং ড্রাইভাৰে সৈন্যবাহিনীৰপৰা পলাই আহি ৰঙাপাৰাত আত্মগোপন কৰি আছিল, কেনেকৈ মহাজন টোপগে ঠংডোকে লগ পাই তেওঁক ড্রাইভাৰ কৰি ঘৰলৈ আনে এই সকলো বিৱৰণ উপন্যাসখনৰ আৰম্ভণিতে সুন্দৰ ৰূপত ঔপন্যাসিকে দাঙি ধৰিছে। এদিন বশিষ্ঠ মন্দিৰ চাবলৈ বুলি হোটেলৰপৰা ওলাই যোৱাৰ সময়ত ৰাস্তাৰ কাষত দেউতাক টোপগে ঠংদোকৰ নামত এটা মটৰ গেৰেজৰ নামফলক দেখি আবু ঠংদোক আচৰিত হৈ পৰে। লগে লগে গাড়ীৰপৰা নামি তেওঁ গেৰেজৰ ভিতৰত প্রৱেশ কৰে। কিছু সময় গেৰেজৰ মালিকৰ সৈতে কথা-বতৰা পতাৰ অন্তত আবু ঠংদোকে গম পালে যে সেইয়া প্রকৃততে মালিকজনৰ পিতৃ অর্থাৎ সিং ড্রাইভাৰৰ গেৰেজ। নিজৰ মালিক অর্থাৎ টোপগে মহাজনৰ প্রতি থকা আনুগত্য, ভক্তিভাৱ সিং ড্রাইভাৰে পলাই আহিও নিজৰ অন্তৰত কিমান গভীৰলৈ পুহি ৰাখিছে সেইয়া কাহিনীৰ মাজেৰে বুজিব পাৰি। পুতেকৰপৰা আবু ঠংদোকে গম পালে যে সিং ড্রাইভাৰৰ প্রকৃত নাম মাইপাক সিং। লগতে সিং ড্রাইভাৰৰ পত্নী, ল'ৰা-ছোৱালীৰপৰা জানিব পাৰিলে

যে কেন্সাৰ ৰোগী সিং ড্রাইভাৰ সেই সময়ত ভেলোৰত আছে। ফোনত আবুয়ে সিং ড্রাইভাৰৰ লগত কথা পাতি বুজিলে যে সেইকেইদিন হোটেলত নিজৰ অতীতৰ কাহিনী কোৱালোকজন প্রকৃততে সিং ড্রাইভাৰৰ মিছিঙহে আছিল। আবু ঠংদোক তেওঁলোকৰ ঘৰলৈ অহা বুলি জানিব পাৰি সিং ড্রাইভাৰে পিছদিনাই ভেলোৰৰপৰা চিকিৎসা এৰি গুচি আহে আৰু আবুৰ দেউতাকে দি যোৱা মূল্যৱান মূর্ত্তিটো আবুৰ হাতত অর্পণ কৰি শেষ নিশ্বাস ত্যাগ কৰে।

উত্তৰ-পূর্বাঞ্চলৰ অন্যান্য জনজাতিৰ দৰে চেৰদুকপেনসলেও ভূত-প্রেতত বিশ্বাস কৰে। তেওঁলোকৰ পৰম্পৰাগত লোকবিশ্বাস অনুসৰি বেমাৰ বা দুর্ঘটনাত মৃত্যু হ'বলগীয়া মানুহৰ আত্মা মৃত্যুৰ পূর্বে শৰীৰৰপৰা ওলাই ঘুৰি ফুৰে। তাকেই মিছিং বুলি কোৱা হয়। কোনো মানুহৰ মিছিং যদি কেতিয়াবা আন মানুহে প্রত্যক্ষ কৰে তেন্তে সেই মানুহজন বেছি দিনলৈ জীয়াই নাথাকে তেওঁলোকে বিশ্বাস কৰে। আমাৰ আলোচ্য উপন্যাসখনৰ শিৰোনামতেই উপন্যাসখনৰ কাহিনীৰ মূল বিষয়বস্তু লুকাই আছে। উপন্যাসখনৰ এটা অন্যতম মুখ্য

চৰিত্ৰ হ'ল টোপগে ঠংদোক মহাজনৰ অতি বিশ্বস্ত সিং ড্ৰাইভাৰ ওৰফে মাইপাক সিং। এই সিং ড্ৰাইভাৰে এদিন হঠাৎ তেওঁলোকৰ ঘৰৰপৰা মনে মনে পলাই অহাৰ আঁৰৰ প্ৰকৃত কাৰণ আছিল মিছিং। সিং ড্ৰাইভাৰে ৰূপাত থাকোঁতে দুবাৰ স্বচক্ষে মিছিং প্ৰত্যক্ষ কৰিছিল। দুয়োটা ঘটনাই আছিল অত্যন্ত লোমহৰ্ষক। প্ৰথমবাৰৰ ঘটনাটো ঘটিছিল ১৯৭১ চনৰ ১ জানুৱাৰী তাৰিখে-

''সেইদিনা তানজিন গাঁও কো-অপাৰেটিভৰ চাউল কঢ়িয়াই লৈ যোৱাৰ কথা আছিল। চৰকাৰী গুদামৰ পৰা ৰেচনৰ চাউল, নিমখ, আটা আদি বিভিন্ন কো-অপাৰেটিভ গুদামলৈ কঢ়িওৱাৰ কেৰিজ কনট্ৰেক্ট টোপগে মহাজনে পাইছিল আৰু মোৰ কাম আছিল ৰান টোনাৰত সেইবিলাক কঢ়িয়াই নিৰ্দিষ্ট কো-অপাৰেটিভ বিলাকত পৌছাই দিয়া।''[১]

সিং ড্ৰাইভাৰৰ লগত সেইদিনা গাড়ীত উঠি গৈছিল আবু ঠংদোকৰ বন্ধু চাংলেকি। ৰঙা মাটিৰ ৰাস্তাটো বৰষুণৰ ফলত বোকাময় আৰু পিছল হৈ আছিল। সেই ৰাস্তাতে তেওঁলোকে এখন ডাঠ হাবি পালে। জাৰকালিৰ সেই সন্ধিয়াটোত ডাঠ সেউজীয়া হাবিখন ঢাকি ৰখা পাতল কুঁৱলীৰ মাজে মাজে তেওঁলোকে এগৰাকী তিৰোতা নতুন কাপোৰ পিন্ধি অকলে গৈ থকা দেখা পালে।

''আমাৰ গাড়ীৰ আগে আগে গৈ থকা তিৰোতাজনী মই তাত জুমখেতি কৰি থকা মানুহ বুলি ধৰি লৈ বাট এৰি দিবৰ বাবে বাৰে বাৰে হর্ণ বজাবলৈ আৰম্ভ কৰি দিলোঁ। কিন্তু তিৰোতাজনীয়ে....গাড়ীৰ লাইটৰ পোহৰত আমি কি দেখা পালো জানা?....তোমালোকে দেখিছিলা তোমালোকৰফালে উভতি চোৱাৰ লগে লগে হঠাতে তাইৰ চেহেৰা বদলি গৈছিল, কপালৰপৰা শৰীৰৰ অংশ ফাটি তেজেৰে লুতুৰি-পুতুৰি হৈ খহি পৰিছিল—যেন এইমাত্ৰ কোনোবাই চোকা অস্ত্ৰৰে তাইৰ চেহেৰা চেলাইহে দিছে।''[২]

এইয়া আছিল সিং ড্ৰাইভাৰে জীৱনত প্ৰথমবাৰৰ বাবে মিছিং প্ৰত্যক্ষ কৰাৰ কাহিনী। এই ঘটনা ঘটাৰ এমাহমানৰ পিছত তানজিন গাঁৱত ৰাং পূজা পতা হৈছিল। চেৰদুকপেন জনজাতিৰ লোকসকলে বিশ্বাস কৰে যে ৰাং পূজাত লামা ৰিমপোচেৰপৰা আশীৰ্বাদ ল'লে সকলো পাপ মোচন হৈ যায়। সেয়েহে এই পূজালৈ দুৰ-দূৰণিৰপৰা ভক্ত সকলৰ আগমণ ঘটে। সেয়েহে উপন্যাসখনত বর্ণিত ৰাং পূজাত তানজিন ৰিমপোচেৰপৰা আশীৰ্বাদ লোৱাৰ উদ্দেশ্যেৰেও এদল ভক্ত সিং ড্ৰাইভাৰৰ সৈতে গাড়ীত যাবলৈ ওলায় আৰু তেতিয়াই বাটত তেওঁলোকৰ মূৰৰ ওপৰত এক বিপদ ভাঙি পৰে। হঠাৎ বাটৰ কাষৰ গছ ভাঙি তেওঁলোকৰ গাড়ীখনৰ ওপৰত পৰে আৰু সেই গছৰ চেপাত দাৱাৰ বিধৰা মাক অর্থাৎ কিছু দিন পূৰ্বে সিং ড্ৰাইভাৰ আৰু চাংলেকিয়ে দেখা পোৱা মিছিঙৰ মানৱদেহধাৰী মানুহগৰাকীৰ মৃত্যু হয়। ইয়াৰ পাছত সিং ড্ৰাইভাৰৰ জীৱনত আন এটা ঘটনা ঘটিছিল। এদিন গধূলি সিং ড্ৰাইভাৰ আৰু হেণ্ডিমেন কাঞ্চা বাহাদুৰে তানজিন গাঁৱৰপৰা ৰূপা অভিমুখে খোজেৰে আহি থাকোঁতে হঠাৎ সিং ড্ৰাইভাৰে গাড়ীৰ এক প্ৰচণ্ড শব্দ শুনা পালে। শব্দ হোৱা স্থানত উপস্থিত হৈ ড্ৰাইভাৰে দেখা পালে তেজেৰে লুতুৰি-পুতুৰি হৈ থকা মহাজন ঠংদোকক। লগতে গোম্পাৰ তিনিআলিৰ তলৰ পাহাৰত ৰান টোনাৰ গাড়ীখন পৰি থকা দেখা পালে। সিং ড্ৰাইভাৰে হতবাক হৈ দুর্ঘটনাস্থলীলৈ নামি গৈ কেইবাটাও শৰদেহ পৰি থকা দেখা পালে। ''তোমাৰ মাহী মা, তোমাৰ দেউতা, মোৰ হেণ্ডিমেন কাঞ্চাবাহাদুৰ আদিৰ মৃতদেহবোৰ দেখি মই ভয়ত কঁপি উঠিছিলোঁ। বাংলাদেশৰ যুদ্ধত ইমান গুলিয়াগুলি, চাৰিওফালে মৃত্যুৰ তাণ্ডৱলীলা আদিৰ মাজতো মই ইমান ভয় খোৱা নাছিলোঁ।''[৩] সিং ড্ৰাইভাৰ মহাজনৰ ঘৰৰপৰা বিশ্বাসঘাতকতা কৰি পলাই অহাৰ আঁৰত আছিল এই ঘটনা। তেওঁ মহাজনৰ মিছিং প্ৰত্যক্ষ কৰাৰ পাছত ভয় কৰিছিল কিজানিবা সেই ঘটনাত তেওঁৰো মৃত্যু ঘটিব বুলি। সেইয়ে তেওঁ কাকো নজনোৱাকৈ মনে মনে তাৰপৰা পলায়ণ কৰিছিল। এইদৰে উপন্যাসখনত মিছিঙৰ বিৱৰণ দাঙি ধৰা হৈছে। লগতে চেৰদুকপেনসকলৰ লোকবিশ্বাসত মিছিঙৰ গুৰুত্ব, ইয়াৰ লগত জড়িত বিভিন্ন ৰীতি-নীতি, পৰম্পৰা আদি উপন্যাসখনত সুন্দৰ ৰূপত বর্ণনা কৰা হৈছে। চেৰদুকপেনসকলে বিশ্বাস কৰে যে যি সকলো মানুহে মিছিং দেখা নাপায়। যি মানুহৰ আগত মিছিংটোৱে নিজক প্ৰকট কৰিব বিচাৰে তেওঁহে দেখা পায়। আৰু যি মানুহৰ আত্মা দুর্বল হৈ থাকে তেনেলোকেহে মিছিং দেখা পায়।

চেৰদুকপেনসকল মূলতঃ বৌদ্ধ ধর্মীয় যদিও

তেওঁলোকৰ ধৰ্মীয় আচাৰ-অনুষ্ঠানত জনজাতীয় ৰীতি-নীতি, পৰম্পৰাৰ বহুখিনি প্ৰভাৱ পৰা দেখিবলৈ পোৱা যায়। এই সম্পৰ্কে মহেশ্বৰ নেওগে এইদৰে কৈছে- "তেওঁলোকৰ বৌদ্ধ-ধৰ্মত জনজাতীয় ধৰণ-ধাৰণাৰ বহুতোখিনি সংমিশ্ৰণ পৰিছে।"[৪] তেওঁলোকৰ দৈনন্দিন জীৱনতো তাৰ প্ৰতিফলন দেখিবলৈ পোৱা যায়। মৃতকৰ সৎকাৰৰ ক্ষেত্ৰত দেখা যায় যে, স্বাভাৱিকভাৱে মৃত্যু হোৱা লোক আৰু দুৰ্ঘটনা আদিত পতিত হৈ মৃত্যুবৰণ কৰা লোকৰ শৱ সৎকাৰ পদ্ধতি সুকীয়া সুকীয়া। দুৰ্ঘটনাত মৃত্যু হ'লে বহুতো ৰীতি-নীতি পালন কৰিবলগীয়া হয়। যেনে—

"অপমৃত্যু হোৱা মানুহৰ মৃতদেহ ঘৰত নালাগে গাঁওলৈও নিব নোৱাৰি, অপমৃত্যু হোৱা মানুহৰ লগত একে সময়ত থকা মানুহো পূজা-পাতল নকৰালৈকে, দেহা শুচি নকৰালৈকে অন্য কোনো মানুহৰ কাষ চাপিব নোৱাৰে। গতিকে টোপগে মহাজনে মানুহ পঠিয়াই, কামত লগাই বাটৰ দুই মূৰে চোৰাতৰ পাত ৰাখি তাৰ ওপৰখন শিলেৰে জাপি ঠাইখন কৰ্দন কৰি দিলে। মানুহে চোৰাত পাতৰ ওপৰত জাপি থোৱা শিল দেখিলেই গম পাব সেইফালে যোৱাটো উচিত নহয়।"[৫]

এনে দুৰ্ঘটনাত অপদেৱতাৰ কুদৃষ্টি থাকে বুলি তেওঁলোকে বিশ্বাস কৰে। সেয়ে দুৰ্ঘটনাস্থলীত খিক্ চিজিৰদ্বাৰা অপদেৱতা অৰ্থাৎ কেন্ আঁতৰাবৰ বাবে খিক্ চাবা পূজা অনুষ্ঠিত কৰা হয়। সেই পূজাৰ বৰ্ণনা উপন্যাসখনত এনেদৰে পোৱা যায়—

"খিক্ চিজিসকলে অপদেৱতা কেন্, আঁতৰাবৰ বাবে পূজা-পাতল আৰম্ভ কৰি দিলে, ওচৰতে সজা ফানথিং হিং অৰ্থাৎ সকলোকে কেন্ অপদেৱতাৰ পৰা আত্মশুদ্ধি কৰিবলৈ বিশেষ কাঠ আৰু খেৰ দি নিৰ্মিত; তাত কুকুৰা মাৰি মাজত ওলোমাই ৰখা তোৰণৰ মাজেদি উপস্থিত থকা সকলোকে প্ৰদক্ষিণ কৰিবলৈ দি মূৰত খেৰৰ জুমুঠিৰে মন্ত্ৰ মাতি জাৰি দিলে।"[৬]

এই পূজাৰ অন্তত দুৰ্ঘটনাত মৃত্যু হোৱা লোকৰ মৃতদেহ নি দূৰৈত পোতা হয়। এনে মৃতদেহ খৰি দি সৎকাৰ কৰা নহয়। আনহাতে স্বাভাৱিকভাৱে মৃত্যু হোৱা লোকৰ শ্ৰাদ্ধ আদি অতি ধুমধামেৰে পালন কৰা হয়।

চোচ্‌কৰ উৎসৱ হ'ল এক পবিত্ৰ ধৰ্মীয় গ্ৰন্থৰ উৎসৱ। গাঁৱৰ মূল গোম্পাত ছয়দিন ধৰি এই উৎসৱ পালন কৰা হয়। উৎসৱৰ প্ৰথম দিনা শোভাযাত্ৰা কৰা হয়। উপন্যাসখনত চেৰদুকপেনসকলে পালন কৰা চোচ্‌কৰ উৎসৱৰ সুন্দৰ বৰ্ণনা আছে।

"দিনটো আছিল বছৰেকীয়া চেচ্‌কৰ উৎসৱৰ দ্বিতীয় দিন। আগদিনা মহা সমাৰোহেৰে চোচ্‌কৰপ শোভাযাত্ৰা হৈ গৈছে। গাঁৱৰ মূল গোম্পাৰ পৰা আৰম্ভ কৰি ধৰ্মীয় শোভাযাত্ৰাত আগে আগে ঢোলৰ ছেলত নাচি -বাগি গৈছিল কেংপা দুজন। মূৰত লাওখোলাৰ মুখা, নাঙঠ দেহত কঙ্কালৰ ৰেখা, কঁকালত কাঠেৰে নিৰ্মিত দীঘল লিঙ্গ, দুয়ো অশ্লীল অঙ্গী-ভঙ্গী কৰি লামাসকলৰ আগে আগে গৈ আছিল।...গোটেই দিন গাঁৱৰ চাৰিওফালে সিঁচৰতি হৈ থকা মঠ-মন্দিৰবিলাকত ধৰ্মীয় শোভাযাত্ৰাৰে প্ৰদক্ষিণ কৰাৰ পাছত গধূলি মূল গোম্পাত শোভাযাত্ৰা শেষ কৰি মানুহবিলাক ঘৰাঘৰি গৈছিল।

দ্বিতীয় দিনা ৰাতিপুৱাৰে পৰা গোম্পাত আজিলামু নৃত্য আৰম্ভ হৈছিল।"[৭]

এই উৎসৱত আজিলামু নৃত্য প্ৰদৰ্শন কৰা হয়। এই নৃত্য বহুকেইজন শিল্পীয়ে একেলগে কৰে। "এই নৃত্যত 'চাজেৰণুৰজান' নামৰ ৰজা জনে তেওঁৰ পত্নী 'ৰাণী লামুক' নয়াপা আৰু নয়াৰো দৈত্যৰ কাৰাগাৰৰ পৰা উদ্ধাৰ কৰি কিদৰে দৈত্যৰ লগত বন্ধুত্ব স্থাপন কৰে, এই কাহিনীক বৰ্ণনা কৰি যি নৃত্য কৰা হয় সিয়েই আজিলামু ভুজঙীয়া নৃত্য।"[৮]

চেৰদুকপেন জনজাতিৰ মাজত প্ৰচলিত বিভিন্ন লোকবিশ্বাসৰ ভিতৰত আন এক লোকবিশ্বাস হৈছে 'দোঁ-ইচিং'। চেৰদুকপেনসকলৰ লোকবিশ্বাস অনুসৰি দোঁ-ইচিঙ হৈছে মৃতদেহ খোৱা এক প্ৰেতাত্মা। দোঁ-ইচিং খেদিবলৈ গাঁৱৰ লোকসকলে দোঁ তিনবা পূজা অনুষ্ঠিত কৰে। এই দোঁ তিনবা পূজা দুইধৰণৰ পদ্ধতিৰে কৰা হয়। এক পদ্ধতি অনুসৰি লামাৰদ্বাৰা বৌদ্ধ তান্ত্ৰিক পুথি পাঠ কৰি অহিংসাৰ পথেৰে ভূত বিলাকক বিদায় দিয়া হয়। আনটো পদ্ধতিত আদিম পদ্ধতিৰে ঝি ঝি অৰ্থাৎ পুৰোহিতৰদ্বাৰা মাকৈ, যৱ আদি শস্যৰ গুটিত মন্ত্ৰ মাতি ভূতৰ ওপৰলৈ মাৰি পঠিওৱা হয়। তেনে কৰিলে ভূত পলায় বুলি তেওঁলোকে বিশ্বাস কৰে। আমাৰ আলোচ্য উপন্যাসখনত ঔপন্যাসিকে দোঁ-ইচিং আৰু দোঁ তিনবা পূজাৰ এক কাল্পনিক অথচ বাস্তৱ ঘটনাৰ দৰে বোধ হোৱা এখনি সুন্দৰ চিত্ৰ প্ৰতিফলন কৰিবলৈ সক্ষম হৈছে।

/

ঔপন্যাসিকে যিখন সমাজৰ চিত্ৰ উপন্যাসখনত দাঙি ধৰিছে সেইয়া আছিল স্বাধীনতাৰ পৰৱৰ্তীকালছোৱাৰ বৰ্তমানৰ অৰুণাচল প্ৰদেশৰ এখন অত্যন্ত পিছপৰা অঞ্চলৰ জনজাতীয় সমাজ। সেই সময়ত এখন গাড়ী থকাটো অত্যন্ত গৌৰৱৰ কথা আছিল। আবু ঠংদোকৰ পিতৃ টোপগে ঠংদোকেই আছিল সেই সময়ত তেওঁলোকৰ অঞ্চলৰ প্ৰথমখন গাড়ীৰ মালিক। সেইয়ে তেওঁৰ মান-সন্মানো আন জনজাতীয় লোকতকৈ অধিক আছিল। উপন্যাসখনত ইয়াৰ সুন্দৰ এখনি চিত্ৰ দাঙি ধৰা হৈছে—

"দেউতাৰ এখন পুৰণা চেভৰলত্ ৰান টোনাৰ গাড়ী আছিল। দ্বিতীয় বিশ্বযুদ্ধত মিলিটেৰীয়ে ব্যৱহাৰ কৰি পুৰণা হৈ যোৱাৰ পাছত জোৰা-টাপলি মাৰি কোনোমতে ঠেলি-হেঁচুকি চলাই থকা সেই পুৰণা ৰান টোনাৰ গাড়ীখনেই আমাৰ ডাঙৰ অঞ্চলটোত একমাত্ৰ গাড়ী আছিল। অঞ্চলটোত প্ৰথম গাড়ীৰ মালিক হোৱা বাবে দেউতাৰ গৌৰৱৰ সীমা নাছিল।"[৯]

সেই সময়ত তেওঁলোকৰ অঞ্চলটোৰ ৰাস্তা-ঘাট অত্যন্ত বেয়া আছিল। বেছিভাগেই ৰঙা মাটিৰ ৰাস্তা। অলপ বৰষুণ পৰিলেই পিচল হৈ পৰে। সিং ড্ৰাইভাৰে উপন্যাসখনত ৰাস্তাৰ বৰ্ণনা এইদৰে দিছে—"ছিলঙৰ ৰাস্তাৰ মাটিৰ দৰে। অলপ বৰষুণ দিলেই মাটিবিলাক একেবাৰে পিচল হৈ পৰিছিল আৰু গাড়ী চলাবলৈ বৰ মুস্কিল হৈ পৰিছিল।"[১০] পিছে আবু ঠংদোকৰ মুখত সেই কেঁচা ৰাস্তা গুচি পকী হোৱা আৰু অতি শীঘ্ৰে নেচনেল হাইৱে হ'বলৈ ওলোৱাৰ কথা জানিব পাৰি সিং ড্ৰাইভাৰ অতি উৎফুল্লিত হৈ পৰে।

উপন্যাসখনত চিত্ৰিত সমাজখন পিছপৰা হ'লেও বিজ্ঞান-প্ৰযুক্তিবিদ্যাৰ প্ৰভাৱপুষ্ট সমাজ। শিক্ষাৰ পোহৰ পৰা এখন আধুনিক সমাজ। ৰায়াৰলেছ, গাড়ী-মটৰ, মনি-অৰ্ডাৰ আদিৰ সুবিধা সেই সমাজখনত আছিল। তদুপৰি টোপগে মহাজনৰ পুতেক বি.এ. পঢ়া এজন শিক্ষিত যুৱক। তেওঁ হৈছে আধুনিক চিন্তাধাৰাৰ গৰাকী। সেয়ে তেওঁলোকৰ ৰান টোনাৰ গাড়ীখন যেতিয়া পাহাৰৰ তললৈ বাগৰি পৰি তাত থকা যাত্ৰীৰ মৃত্যু ঘটে তেতিয়া তেওঁৰ মনত পুৰণিকলীয়া চিন্তাধাৰা গুচি নতুন চেতনা জাগ্ৰত হৈ উঠে। আৰু তেতিয়া তেওঁ লগে লগে তললৈ নামি গৈ দুৰ্ঘটনাগ্ৰস্ত হোৱা লোকসকলৰ উদ্ধাৰ কাৰ্যত নামি পৰে। তেওঁক দেখি তেওঁলোকৰ গাঁৱৰ আন আন শিক্ষিত যুৱকসকলো উদ্ধাৰ কাৰ্যত নামি যায়। দেউতাক টোপগে ঠংদোকো আছিল আধুনিক মানসিকতাৰে পৰিপুষ্ট ব্যক্তি। সেযেহে নিজৰ আদৰৰ সৰু পত্নীৰ দুৰ্ঘটনাত মৃত্যু হোৱাৰ সত্ত্বেও তেওঁৰ মৃতদেহ ঘৰলৈ আনি সসন্মানেৰে সৎকাৰ কৰিবলৈ সাহস কৰিছে। মহাজনৰ এনে কাৰ্যত গাঁৱৰ অন্যান্য লোকসকলে আপত্তি দৰ্শাইছিল। তাৰ উত্তৰত মহাজন ঠংদোকে পুতেকৰ আগত এইদৰে কৈছে—"আছে। ইয়াৰ উত্তৰ মই সমাজক দিব পাৰিম। মই জানো, মোৰ পিঠিত মোৰ বিৰুদ্ধে সমাজে নানা কথা কৈ আছে। কোৱাতো স্বাভাৱিক। মোৰ প্ৰতি সমাজে ভুল বুজাতো স্বাভাৱিক। এইবিলাক সকলো জানিও মই সমাজ-বিৰুদ্ধ এইবিলাক কাম কৰিছোঁ সমাজৰ ভালৰ কাৰণে, সমাজক নতুন বাট দেখুৱাবৰ কাৰণে।"[১১] ইয়াৰ পূৰ্বেও তেওঁ আন এক সমাজ-বিৰুদ্ধ কাম কৰিছিল। সেয়া হৈছে প্ৰথমা পত্নীৰ জীৱিত অৱস্থাত দ্বিতীয় বিবাহ কৰা। ইয়াৰপৰা বুজা যায় যে চেৰদুকপেন সমাজত প্ৰথমা পত্নী জীয়াই থকালৈকে কোনো পুৰুষে দ্বিতীয় বিবাহ কৰা নিষেধ।

উপসংহাৰ

এইদৰে আলোচনা কৰিলে দেখা যায় যে চেৰদুকপেন জনজাতিৰ জীৱন আধাৰিত য়েছে দৰজে ঠংচিৰ এই উ পন্যাসখনত তেওঁলোকৰ সমাজত অতীজৰপৰা প্ৰচলন হৈ অহা লোকবিশ্বাস, ৰীতি-নীতি, পৰম্পৰা আদিৰ বহুল বিৱৰণ পোৱা যায়।

উপন্যাসখনত টোপগে ঠংদোক আৰু তেওঁৰ পুত্ৰ আবু ঠংদোকৰ আধুনিক চিন্তাধাৰাৰে পৰিচালিত কাৰ্যাৱলীৰদ্বাৰা তেওঁলোকৰ সমাজলৈ বৈজ্ঞানিক মানসিকতাৰ এক নতুন দিগন্তৰ সূচনা হোৱা বুলি ক'ব পাৰি। এই ধৰণৰ ধনাত্মক পৰিৱৰ্তনে সমাজ একোখনক পুৰণি ধ্যান-ধাৰণা, অন্ধবিশ্বাস আদিৰপৰা আঁতৰাই আগু�ৱাই লৈ যোৱাত সহায় কৰে। তদুপৰি উপন্যাসখনত সময়ৰ লগে লগে ৰূপাৰ সেই পিছপৰা সমাজখনলৈ ৰাস্তা-ঘাট, শিক্ষা-দীক্ষা আদিৰ ক্ষেত্ৰত কেনেধৰণৰ পৰিৱৰ্তন আহিছে তাৰো এক সুন্দৰ চিত্ৰ প্ৰতিফলিত হৈছে। ❑

অন্ত্যটীকা ঃ

১) ঠংচি, য়েজে দৰজে। মিছিং। বনলতা। পৃ. ১৮
২) সদ্যোক্ত । পৃ. ১৯
৩) সদ্যোক্ত । পৃ. ৫১
৪) ভট্টাচার্য, প্রমোদচন্দ্র। অসমৰ জনজাতি, পৃ. ২৪০
৫) ঠংচি, য়েজে দৰজে। প্রাগুক্ত । পৃ. ২৭
৬) সদ্যোক্ত । পৃ. ২৮
৭) সদ্যোক্ত । পৃ. ৫৬
৮) ববা, দেৱজিৎ (সম্পা.)। উত্তৰ-পূৰ্বাঞ্চলৰ জনগোষ্ঠীয় লোক-সংস্কৃতি। ৬৬২-৬৬৩
৯) ঠংচি, য়েজে দৰজে। প্রাগুক্ত । পৃ. ৫
১০) সদ্যোক্ত । পৃ. ১৭
১১) সদ্যোক্ত । পৃ. ৬০

সহায়ক গ্রন্থপঞ্জী-

মূল গ্রন্থ

ঠংচি, য়েজে দৰজে। মিছিং। বনলতা। পাণবজাৰ, গুৱাহাটী-১। তৃতীয় প্রকাশ। ডিচেম্বৰ, ২০১৪ চন

প্রাসংগিক গ্রন্থ -

সম্পাদিত গ্রন্থ

ঠাকুৰ, নগেন (সম্পা.)। এশ বছৰৰ অসমীয়া উপন্যাস। জ্যোতি প্রকাশন। পাণবজাৰ, গুৱাহাটী-১। দ্বিতীয় প্রকাশ, পুনৰ মুদ্রণ,নৱেম্বৰ ২০১৮ চন

দাস, অমল চন্দ্র (সম্পা.)। অসমীয়া উপন্যাস পৰিক্রমা । বনলতা। পাণবজাৰ, গুৱাহাটী-১। প্রথম সংস্কৰণ। মে', ২০১২

বৰগোহাঞি, হোমেন (সম্পা.)। অসমীয়া সাহিত্যৰ বুৰঞ্জী (ষষ্ঠ খণ্ড)। আনন্দৰাম বৰুৱা ভাষা-কলা-সংস্কৃতি সংস্থা। অসম, ৰজাদুৱাৰ, উত্তৰ গুৱাহাটী। তৃতীয় প্রকাশ ২০১৫

ববা, দেৱজিৎ (সম্পা.)। উত্তৰ-পূৰ্বাঞ্চলৰ জনগোষ্ঠীয় লোক-সংস্কৃতি। এম. আৰ. পাব্লিকেশ্যন। পাণবজাৰ, গুৱাহাটী-১। চতুর্থ প্রকাশ। ১০-৯-২০১৮

ভট্টাচার্য, প্রমোদ চন্দ্র (সম্পা.)। অসমৰ জনজাতি । অসম সাহিত্য সভা। তৃতীয় সংস্কৰণ, ২০০৮

গৱেষণা গ্রন্থ-

ববা, নিলিমা। যেছে দৰজে ঠংচি আৰু লুম্মেৰ দাইৰ উপন্যাসত প্রতিফলিত জনজাতীয় জীৱনৰ তুলনামূলক অধ্যয়ন, (গুৱাহাটী বিশ্ববিদ্যালয়) ২০১৭।

বৰপূজাৰী, জিতাঞ্জলী। অসমীয়া উপন্যাসত উত্তৰ-পূৰ্বাঞ্চলৰ জনজাতীয় জীৱন ঃ এক বিশ্লেষণাত্মক অধ্যয়ন, (গুৱাহাটী বিশ্ববিদ্যালয়) ১৯৯১।

গল্প

ছুটি

ৰবীন্দ্ৰ সাহিত্যত কিশোৰ, অপৰিণত বয়সৰ ল'ৰা আৰু নিষ্পাপ শৈশৱৰ বাবে এটি সুকীয়া স্থান পৰিলক্ষিত হয়। একাধিক গল্প, কবিতা, নাটক আদিত তেখেতে কিছু কালজয়ী শিশু আৰু কিশোৰৰ চৰিত্ৰ অংকণ কৰিছে। তেখেতৰ আত্মজীৱনীমূলক ৰচনা, "জীৱনস্মৃতিৰ" পাততে নিজৰ বাল্য আৰু কিশোৰ বয়সৰ যি স্মৃতি তেওঁ ৰোমন্থন কৰিছে, তাত দেখা পোৱা যায়, জমিদাৰৰ পুত্ৰ হ'লেও মাতৃহীন কিশোৰ ৰবিয়ে কেনেকৈ ভৃত্য ৰাজতন্ত্ৰত অবহেলা আৰু অনাদৰত ডাঙৰ হৈছিল, আবদ্ধ ঘৰৰ খিৰিকীৰ পৰা বহির্জগতখন তেখেতে কেনেকৈ অৱলোকন কৰিছিল আৰু প্ৰকৃতিৰ মধুৰ সৌন্দৰ্য্যৰ প্ৰতি আকৰ্ষণ অনুভৱ কৰিছিল— এনেবোৰ ঘটনা। এনেকুৱা এক মনোভাৱৰ পৰা ৰবীন্দ্ৰনাথ ঠাকুৰে তেখেতৰ এটি বিখ্যাত চুটিগল্প 'ছুটি'ৰ নায়ক ফটিকক সৃষ্টি কৰিছিল, ফটিক নামৰ এই চিৰকিশোৰটিৰ বেদনাময় কাহিনী পাঠকৰ মন চুই যায়। সাধাৰণ গাঁৱলীয়া ল'ৰা ফটিক চহৰত মোমায়েকৰ ঘৰত থকাকৈ অহাৰ পিচত মামীয়েকৰ পৰা যি নিষ্কৰুণ, হৃদয়হীন ব্যৱহাৰ পালে, সেয়াই তাৰ বাবে আছিল মাৰাত্মক। ফলত মাকৰ কাষলৈ যাবলৈ তাৰ মন চৰমভাৱে অস্থিৰ হৈ পৰিছিল। তাৰপিছত ৰৰষুণত তিতি সি নিজৰ ওপৰত যি অত্যাচাৰ কৰিলে, সেই অত্যাচাৰত সি গুৰুতৰ অসুস্থ হ'ল আৰু সেই অসুস্থতাই তাক সংসাৰৰ পৰা চিৰছুটী দিলে, এই পৰিপ্ৰেক্ষিততেই এই গল্পৰ নামকৰণ 'ছুটি'।

শিৱানী দে
(মূল ঃ ৰবীন্দ্ৰনাথ ঠাকুৰ)

ললিত চন্দ্ৰ ভৰালী কলেজ
মালীগাঁও, গুৱাহাটী-৭৮১০১১
ম'বাইল-৯১০১২৬০৫২০

ল'ৰাবিলাকৰ চর্দাৰ ফটিক চক্ৰৱৰ্তীৰ মনত হঠাতে এটা নতুন ভাৱৰ উদয় হ'ল। নদীৰ পাৰত এটা প্ৰকাণ্ড শালকাঠ মাস্তুল বনোৱাৰ প্ৰতীক্ষাত পৰি আছিল। স্থিৰ কৰা হ'ল সকলোৱে লগ লাগি এইটোক ঠেলি ঠেলি লৈ যোৱা হ'ব।

যিজনে এই কাঠ থৈছে, কামৰ সময়ত তেখেতে কেনেকুৱা বিস্ময়, বিৰক্তি আৰু অসুবিধাত পৰিব, সেই কথা ভাৰি ল'ৰাবিলাকে এই প্ৰস্তাৱত সম্পূৰ্ণ অনুমোদন জনালে।

কঁকাল বান্ধি সকলোৱে যেতিয়া মনোযোগৰ সৈতে কামত প্ৰবৃত্ত হোৱাৰ উপক্ৰম কৰিলে, সেই সময়ত ফটিকৰ কনিষ্ঠ মাখনলাল গম্ভীৰ হৈ সেই কাঠৰ ওপৰত বহি ল'লে। ল'ৰাবিলাকে তাৰ এই উদাসীনতা দেখা পাই কিছু বিমর্ষ হ'ল।

এজনে আহি ভয়ে ভয়ে তাক অকণমান ঠেলি দিলে। কিন্তু সি অকণো বিচলিত নহ'ল। এই অকাল-তত্ত্বজ্ঞানী ল'ৰাজনে তাতে বহি লৈ সকলো প্ৰকাৰ খেল-ধেমালিৰ অসাৰতা সম্পৰ্কে নীৰবে চিন্তা কৰিব ধৰিলে।

ফটিক আহি খঙতে ক'লে- "অই মাৰ খাবি। এতিয়া উঠ।" ইয়াৰ পিছত

সি আৰু ভালকৈ বহি স্থায়ীৰূপে আসনখন দখল কৰি ল'লে।

এনেকুৱা ক্ষেত্ৰত উপস্থিত ল'ৰাবিলাকৰ ওচৰত ৰাজসন্মান ৰক্ষা কৰিবলৈ হ'লে অবাধ্য ভায়েকৰ গালত অনতিবিলম্বে ঠাচ্‌কে চৰ এটা লগাই দিয়া ফটিকৰ কৰ্তব্য আছিল, সাহস নহ'ল। কিন্তু সি এনেকুৱা এটা ভাৱ ধাৰণ কৰিলে, যেন ইচ্ছা কৰিলে এতিয়াই ইয়াক ৰীতিমতে শাস্তি দিব পাৰে। কিন্তু নকৰিলে। কাৰণ আগতকৈ আৰু এটা ভাল খেলা তাৰ মূৰত উদয় হৈছে। তাত কিছু বেছি আনন্দ আছে। প্ৰস্তাৱ লোৱা হ'ল, মাখনৰ সৈতে কাঠখন ঠেলি ঠেলি লৈ যোৱা হ'ব।

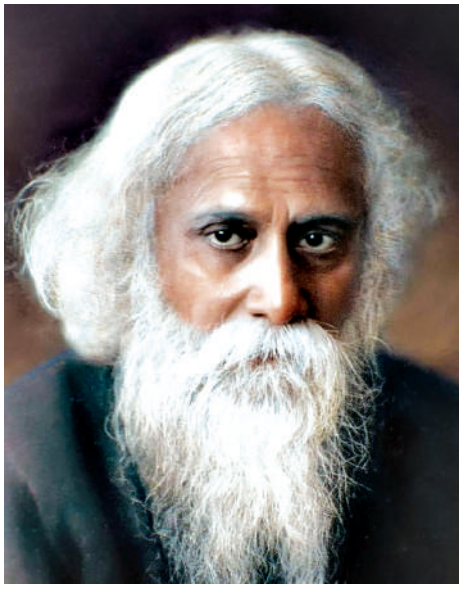

মাখনে ভাৱিলে, ইয়াত তাৰ গৌৰৱ আছে। কিন্তু অন্যান্য পার্থিব গৌৰৱৰ নিচিনা ইয়াৰ লগত আনুষঙ্গিক বিপদৰ সম্ভাৱনাও যে আছে, সেয়া তাৰ নিজৰ বা কাৰোৱেই মনত নপৰিল।

ল'ৰাবিলাকে কঁকাল বান্ধি ঠেলিবলৈ আৰম্ভ কৰিলে। 'মাৰো ঠেলা হেঁইয়া, চাব্বাচ জোৱান হেইয়া'। কাঠৰ গুড়ি এক পাক ঘূৰিব নাপাওতেই মাখন তাৰ গাম্ভীৰ্য গৌৰৱ আৰু তত্ত্বজ্ঞান লৈ ভূমিসাৎ হ'ল।

খেলাৰ আৰম্ভনিতেই এনেকুৱা আশাতীত ফল লাভ কৰি বাকী ল'ৰাবিলাকে বিশেষ আনন্দ পালে। কিন্তু ফটিকে কিছু ভয় খালে। মাখন তৎক্ষণাৎ ভূমিশয্যা এৰি উঠি আহি ফটিকৰ ওপৰত পৰিল আৰু অন্ধৰ দৰে তাক মাৰিব ধৰিলে। তাৰ নাক-মুখ আঁচুৰি কামুৰি কান্দি কান্দি ঘৰৰপিনে গতি কৰিলে। খেলা ভাঙি গ'ল। ফটিকে কেইটামান কহুঁৰাৰ ঠাৰি উঠাই আনি অর্ধনিমগ্ন নাও এখনত বহি মনে মনে ঠাৰি এডাল চোবাব ধৰিলে।

ঠিক এই সময়ত এখন বিদেশী নাও ঘাটত আহি লাগিল। কেঁচা গোফ আৰু পকা চুলিৰ আদবয়সীয়াল লোক এজন নাওৰ পৰা নামি আহিল। ল'ৰাজনক সুধিলে, "চক্ৰৱৰ্তীহঁতৰ ঘৰ কোনপিনে?"

ল'ৰাজনে কহুৱা চোবাই চোবাই ক'লে- "সৌফালে"। কিন্তু কোনফালে যে নির্দেশ কৰিলে এয়া কাৰো বুজিবলৈ সাধ্য নাই।

মানুহজনে আকৌ সুধিলে, "ক'ত?"

সি ক'লে, "নাজানো"। কৈ আগৰ দৰেই কহুঁৰাৰ ঠাৰিৰ পৰা ৰস গ্ৰহণ কৰিবলৈ আৰম্ভ কৰিলে। মানুহজনে তেতিয়া আন লোকৰ সহায়ত চক্ৰৱৰ্তীহঁতৰ ঘৰৰ সন্ধান লৈ আগবাঢ়ি গ'ল।

অবিলম্বে বাঘা বাগদি আহি ক'লে, "ফটিক দাদা, মায়ে মাতিছে।"

ফটিকে ক'লে, "নাযাওঁ"।

বাঘাই তাক বলপূৰ্বক কোলাত তুলি লৈ গ'ল। ফটিকে নিষ্ফল আক্ৰোশত হাত-ভৰি মাৰিব ধৰিলে।

ফটিকক দেখামাত্ৰে মাকে অগ্নিমূৰ্তি ধৰি ক'লে, "তই আকৌ মাখনক মাৰিছ?"

ফটিকে ক'লে, "নাই, মই মাৰা নাই"।

"আকৌ মিছা কথা কৈছোঁ?"

মাখনক প্ৰশ্ন কৰাত মাখনে নিজৰ পূৰ্ব নালিশৰ সমর্থন কৰি ক'লে, "হয় মাৰিছে।"

তেতিয়া আৰু ফটিকৰ সহ্য নহ'ল। দ্ৰুত গতিত সি মাখনক এক সশব্দ চৰ লগাই ক'লে, "আকৌ মিছা কথা"।

মায়ে মাখনৰ পক্ষ লৈ ফটিকক ধৰি তাৰ পিঠিত দুই তিনিটা কোব দিলে, ফটিকে মাকক ঠেলি দিলে।

মাকে চিঞৰি উঠিল, "তই মোৰ গাত হাত তুলিলি?" ঠিক সেই সময়তে সেই কেঁচাপকা চুলিৰ ভদ্ৰলোকজন ঘৰত সোমাই আহি ক'লে, "কি হৈ আছে তোমালোকৰ?"

ফটিকৰ মা বিস্ময় আনন্দত অভিভূত হৈ ক'লে, "অ আই, ককাইদেউ দেখোন, তুমি কেতিয়া আহিলা?" বুলি ককায়েকক প্ৰণাম কৰিলে।

বহুদিন হ'ল ককায়েকে পশ্চিম অঞ্চলত কামৰ বাবে

গৈছিল। ইতিমধ্যে ফটিকৰ মাকৰ দুটা সন্তান হৈছে। সিঁহতে যথেষ্ট ডাঙৰো হৈছে। তাইৰ স্বামীৰ মৃত্যু হৈছে। কিন্তু এবাৰো ককায়েকৰ সাক্ষাৎ পোৱা নাই। আজি বহুদিনৰ মূৰত ঘৰলৈ ঘূৰি আহি বিশ্বম্ভৰ বাবুয়ে তেখেতৰ মৰমৰ ভনীজনীক লগ ধৰিব আহিছে।

কেইটামান দিন খুব ভালকৈ পাৰ হ'ল। অৱশেষত বিদায় লোৱাৰ দুই-এদিন পূৰ্বে বিশ্বম্ভৰ বাবুয়ে তেখেতৰ ভণ্টিক ল'ৰাবিলাকৰ পঢ়াশুনা আৰু মানসিক উন্নতি সম্পৰ্কে কিছু প্ৰশ্ন কৰিলে। উত্তৰত ফটিকৰ অবাধ্য উচ্ছৃংখলতা, পাঠত অমনোযোগ আৰু মাখনৰ সুশান্ত, সুশীলতা আৰু বিদ্যানুৰাগৰ বিৱৰণ শুনিলে।

ভনীয়েকে ক'লে- "ফটিকে মোৰ হাড় জ্বলাই আছে।"

শুনি বিশ্বম্ভৰ বাবুয়ে প্ৰস্তাৱ দিলে যে তেওঁ ফটিকক কলিকতাত লৈ গৈ নিজৰ কাষত ৰাখি পঢ়ুৱাব।

বিধবাই এই প্ৰস্তাৱত অতি সহজেই সম্মত হ'ল।

ফটিকক সুধিলে - "কি ফটিক, মোমায়েকৰ লগত কলিকতা যাবি?"

ফটিকে জপিয়াই উঠিলে আৰু ক'লে- "যাম", ফটিকক বিদায় দিবলৈ মাকৰ একো আপত্তি নাছিল, কাৰণ তেখেতৰ মনত সদায় এটা আশংকা আছিল, কেতিয়া সি মাখনক পানীত পেলাই দিয়ে, কেতিয়া সি মাখনৰ মূৰ ভাঙে বা কিবা দূৰ্ঘটনা ঘটায়। তথাপি ফটিকৰ বিদায় লোৱাৰ ইমান আগ্ৰহ দেখা পাই তেখেতৰ বেয়া লাগি গ'ল।

"কোনদিনা যাবা? কেতিয়া যাবা?" কৰি ফটিকে তাৰ মোমায়েকক অস্থিৰ কৰি তুলিলে। উৎসাহত তাৰ ৰাতি টোপনি নাহে।

অৱশেষত বিদায় পৰত ফটিকে আনন্দৰ উদাৰতাবশতঃ তাৰ বৰশী, চিলা, লেটাই সব মাখনক পুত্ৰপৌত্ৰাদি ক্ৰমে ভোগদখল কৰিবলৈ পুৰা অধিকাৰ দি গ'ল।

কলিকতাত মোমায়েকৰ ঘৰত গৈ প্ৰথমতে মামীয়েকৰ লগত কথা হ'ল। মামীয়েকে এই অনাৱশ্যক পৰিবাৰ বৃদ্ধিত যে বিশেষ সন্তুষ্ট হৈছিল তেনে নহয়। তেখেতে নিজৰ তিনিটা ল'ৰাক লৈ নিজৰ নিয়মত সংসাৰ কৰি আছিল। ইয়াৰ মাজত হঠাতে এটি তেৰ বছৰৰ অচিনাকি, অশিক্ষিত, গাঁৱলীয়া ল'ৰা এৰি দিলে কেনেকুৱা

এটা বিপ্লবৰ সম্ভাৱনা উপস্থিত হয়। বিশ্বম্ভৰৰ ইমান বয়স হ'ল, কিন্তু কাণ্ডজ্ঞান নাই।

বিশেষকৈ তেৰ/চৈধ্য বছৰৰ ল'ৰাৰ নিচিনা পৃথিৱীত আচহুৱা বস্তু আন একো নাই। সৌন্দৰ্য্যও নাই। কোনো কামতো নালাগে। স্নেহও জাগ্ৰত নহয়, তাৰ সঙ্গসুখো বিশেষ প্ৰাৰ্থনীয় নহয়। তাৰ মুখত শিশুসুলভ কথাও নমনায়, বয়সীয়াল মানুহৰ কথাও নমনায়। কথামাত্ৰেই প্ৰগলভতা। আকস্মিকভাৱে কাপোৰ-কানিৰ পৰিমাণ ৰক্ষা নকৰি অস্বাভাৱিকভাৱে বাঢ়ি উঠে, কিছুমানে সেয়া এটা কুশ্ৰী স্পৰ্ধা বুলি ভাৱে। তাৰ শিশুসুলভ লালিত্য আৰু কণ্ঠস্বৰৰ মিষ্টত্ব হঠাতেই গুচি যায়। কিছুমানে সেয়া তাৰ অপৰাধ বুলি ভাৱি লয়। শৈশৱ আৰু যৌৱনৰ বহু দোষ ক্ষমা কৰিব পৰা যায়। কিন্তু এই সময়ত কোনো স্বাভাৱিক অনিবাৰ্য ত্ৰুটিও যেন অসহ্য লাগে।

সিও মনে মনে বুজিলে পৃথিৱীৰ ক'তো যেন সি ঠিক খাপ খোৱা নাই। সেয়ে তাৰ নিজৰ অস্তিত্ব সম্বন্ধে সদায় সি লজ্জিত আৰু ক্ষমাপ্ৰাৰ্থী হৈ থাকে। অথচ, এই বয়সতেই মৰম-চেনেহৰ বাবে কিছু অতিৰিক্ত আগ্ৰহ হয়। এই সময়ত যদি সি কোনো সহৃদয় ব্যক্তিৰ পৰা মৰম বা বন্ধুত্ব লাভ কৰিব পাৰে, তেতিয়া তাৰ ওচৰত আত্মবিক্ৰীত হৈ থাকে। কিন্তু তাক মৰম দিবলৈ কোনেও সাহস নকৰে,

কাৰণ লোকে সেয়া প্ৰশ্ৰয় বুলি ভাৱে।

অতএব, এনেকুৱা অৱস্থাত নিজৰ মাতৃভৱনৰ বাহিৰে আন কোনো অচিনাকি স্থান এই বয়সৰ ল'ৰাবিলাকৰ বাবে নৰক। চাৰিওফালৰ মৰমহীন ব্যৱহাৰে তাক বাৰে বাৰে কাঁইটৰ দৰে বিন্ধে। এই বয়সত সাধাৰণতে নাৰীজাতিক কোনো এক শ্ৰেষ্ঠ স্বৰ্গলোকৰ দুৰ্লভ জীৱ বুলি মনত ধাৰণা এটা আৰম্ভ হয়। অতএব তেওঁলোকৰ পৰা উপেক্ষা অত্যন্ত দুঃসহ যেন লাগে।

মামীয়েকৰ মৰমহীন চকুত সি যেন এটা দুষ্টগ্ৰহৰ নিচিনা প্ৰতিভাত হৈছে, এই কথাটোতেই ফটিকে আটাইতকৈ বেছি কষ্ট পাইছিল। মামীয়েকে যদি তাক দৈবক্ৰমে কিবা এটা কাম কৰিব কৈছিল, তেতিয়া সি মনৰ আনন্দত যিখিনি আৱশ্যক তাতকৈ বেছিকৈ কাম কৰি পেলায়— অৱশেষত মামীয়েকে যেতিয়া তাৰ উৎসাহ দমন কৰি কয়, "হৈছে, হৈছে, ইয়াত আৰু তোমাৰ হাত লগোৱাৰ প্ৰয়োজন নাই। এতিয়া তুমি নিজৰ কামত মন দিয়া। অকণমান পঢ়া গৈ যোৱা", তেতিয়া তাৰ মানসিক উন্নতিৰ প্ৰতি মামীয়েকৰ ইমান বেছি যত্নক অত্যন্ত নিষ্ঠুৰ অবিচাৰ যেন লাগিছিল।

ঘৰত ইমান অনাদৰ। ইয়াৰ পিছত ওলাই গৈ অকণমান সময় কটোৱাৰ ঠাইৰো অভাৱ। চাৰিটা দেৱালৰ মাজত বন্দী ফটিকৰ কেৱল গাঁৱলৈ মনত পৰে।

প্ৰকাণ্ড এটা চিলা উৰুৱাই ফুৰিবলৈ সেই পথাৰ, নিজৰ ইচ্ছামতে উচ্চস্বৰত গান গাই গাই অকৰ্মণ্যভাৱে ঘূৰি ফুৰাৰ সেই নৈপাৰ, দিনৰ মাজত যেতিয়াই তেতিয়াই জঁপিয়াই, সাঁতুৰি নাদুৰি সময় কটোৱাৰ সেই সংকীৰ্ণ স্ৰোতস্বিনী, তাৰ সেই দল-বল, উপদ্ৰৱ, স্বাধীনতা আৰু সৰ্বোপৰি সেই অত্যাচাৰিণী, অবিচাৰিণী আইজনীয়ে দিনে-ৰাতিয়ে তাৰ নিৰুপায় মনটোক আকৰ্ষিত কৰে।

জন্তুৰ নিচিনা এটা নুবুজা ভালপোৱা, কেৱলমাত্ৰ কাষলৈ যোৱাৰ এটা অন্ধ ইচ্ছা, কেৱলমাত্ৰ লগ পোৱাৰ এটা অব্যক্ত ব্যাকুলতা, গধূলিপৰৰ মাতৃহীন গোবৎসৰ নিচিনা কেৱল এটা আন্তৰিক 'মা' 'মা' কান্দোন- সেই লজ্জিত, শঙ্কিত, শীৰ্ণ, দীৰ্ঘ, অসুন্দৰ ল'ৰাজনৰ অন্তৰখন আকুলিত কৰে।

স্কুলত ইমান নিৰ্বোধ আৰু অমনযোগী ল'ৰা আন এজনো নাই। কিবা এটা সুধিলে, সি মুখ মেলি চাই থাকে। মাষ্টৰে যেতিয়া তাক মাৰে তেতিয়া সি গাধৰ নিচিনা নীৰবে সহ্য কৰে। ল'ৰাবিলাকক যেতিয়া খেলিবলৈ সময় দিয়া হয়, তেতিয়া সি খিৰিকীৰ কাষত থিয় হৈ দূৰৈত দেখা পোৱা ঘৰবিলাকৰ ফালে চাই থাকে। যেতিয়া দুপৰীয়া কোনোবা এখন ঘৰৰ ছাঁদত এটা দুটা ল'ৰা ছোৱালীক কিবা খেলি থকাৰ সময়ত অকণমান সময় দেখা পায়, তেতিয়া তাৰ মন চঞ্চল হৈ উঠে।

এদিন বহু সাহস গোটাই মোমায়েকক সুধিছিল, "মামা, মাৰ ওচৰত যাম" মোমায়েকে কৈছিল, "স্কুল ছুটি হ'ব দে"।

কাতি মাহত পূজাৰ ছুটী, এতিয়াও বহু দেৰী।

এদিন ফটিকে তাৰ স্কুলৰ কিতাপ হেৰুৱাই পেলালে। এফালে সহজত পঢ়া শিকা নহয়, তদুপৰি কিতাপ হেৰুৱাই তাৰ অৱস্থা একেবাৰে পানীত হাঁহ নচৰা বিধৰ হ'ল। মাষ্টৰে তাক সদায় মাৰে, অপমান কৰে। স্কুলত তাৰ এনেকুৱা এটা অৱস্থা হ'ল যে তাৰ মোমায়েকৰ ল'ৰাবিলাকে তাৰ লগত কিবা আত্মীয়তাৰ সম্পৰ্ক আছে বুলি ক'বলৈ লাজ পোৱা হ'ল। ফলত ফটিকৰ কিবা অপমানজনক অৱস্থা হ'লে বেলেগ ল'ৰাতকৈ সিহঁতে জোৰ কৰি বেছিকৈ আনন্দ প্ৰকাশ কৰাৰ চেষ্টা কৰে।

অসহ্য লগাত এদিন ফটিকে তাৰ মামীয়েকৰ ওচৰত নিতান্ত অপৰাধীৰ দৰে থিয় হৈ ক'লে— "কিতাপ হেৰাই গ'ল।"

মামীয়েকে ওঁঠৰ দুইপিনে বিৰক্তিৰ ৰেখা অংকিত কৰি ক'লে- "ভাল কৰিছা, মই মাহত তোমাক পাঁচবাৰকৈ কিতাপ কিনি দিব নোৱাৰোঁ।"

ফটিকে একো নকৈ গুচি আহিল। সি যে বেলেগৰ পইচা নষ্ট কৰি আছে, সেই কথা ভাবি তাৰ মাকৰ ওপৰত অত্যন্ত অভিমান উপস্থিত হ'ল। নিজৰ হীনতা আৰু দীনতাই তাক যেন মাটিৰ সৈতে মিহলাই দিলে।

স্কুলৰ পৰা অহাৰ পিছত সেই ৰাতি তাৰ খুব মূৰৰ বিষ হ'ল আৰু গাটো কঁপিব ধৰিলে। সি বুজি পালে, জ্বৰ উঠি আছে। বুজি পালে, বেমাৰ হ'লে তাৰ মামীয়েকৰ প্ৰতি অত্যন্ত অনৰ্থক উপদ্ৰব কৰা হ'ব। মামীয়েকে এই বেমাৰটোক যে কি ধৰণৰ এটা অকাৰণ অনাৱশ্যক উপদ্ৰব হিচাপে গ্ৰহণ কৰিব, এই কথা সি স্পষ্টভাৱেই উপলব্ধি কৰিলে। বেমাৰৰ সময়ত এই অকৰ্মণ্য, অদ্ভুত, নিৰ্বোধ ল'ৰাজনে নিজৰ মাৰ বাহিৰে আন কাৰোবাৰ পৰা সেৱা পাব পাৰে, এনেকুৱা প্ৰত্যাশা কৰিবলৈ তাৰ লাজ লাগিল।

পিচদিনা ৰাতিপুৱা ফটিকক আৰু দেখা পোৱা ন'গল।

ওচৰ-চুবুৰীয়াৰ ঘৰত তাৰ একো সন্ধান পোৱা নগ'ল।

সিদিনা আকৌ ৰাতিৰ পৰা ধাৰাসাৰ শাওনৰ বৰষুণ দি আছে। সেয়ে তাৰ সন্ধান কৰিব গৈ অনৰ্থক বৰষুণত তিতিব ল'গা হ'ল। অৱশেষত ক'তো নাপাই মোমায়েকে পুলিচত খবৰ দিলে।

গোটেই দিন পাৰ হোৱাৰ পিচত সন্ধিয়া এখন গাড়ী বিশ্বম্ভৰ বাবুৰ ঘৰৰ সমুখত ৰখিলে। তেতিয়াও জিৰ জিৰকৈ অবিশ্রাম বৰষুণ দি আছে। বাটত একাঠু পানী।

দুজন পুলিচৰ মানুহে গাড়ীৰ পৰা ফটিকক ধৰাধৰি কৰি নমাই বিশ্বম্ভৰ বাবুৰ ওচৰত থিয় কৰালে। তাৰ আপদমস্তক ভিজা, সর্বাঙ্গত বোকা, মুখ চকু ৰঙা, ঠক্ ঠক্ কৰি কপি আছে। বিশ্বম্ভৰ বাবুয়ে প্রায় কোলাত উঠাই তাক অন্তঃপুৰত লৈ আহিল।

মামীয়েকে তাক দেখিয়েই কৈ উঠিল— "কেলে বাপু, বেলেগৰ ল'ৰাক লৈ কিয় ইমান কর্মভোগ, দিয়া, তাক ঘৰলৈ পঠিয়াই দিয়া।"

বাস্তৱত, গোটেই দিন দুশ্চিন্তাত তেওঁৰ নিজৰো ঠিকমতে খোৱা-লোৱা হোৱা নাই আৰু নিজৰ ল'ৰা কেইটাৰ লগতো বহু খিটিৰ-মিটিৰ হৈছে।

ফটিকে কান্দি উঠিলে, "মই মাৰ ওচৰত গৈ আছিলোঁ, মোক তেওঁলোকে লৈ আহিছে।"

ল'ৰাৰ জ্বৰ বহু বাঢ়ি গ'ল। গোটেই ৰাতি প্রলাপ বকি থাকিল। বিশ্বম্ভৰ বাবুয়ে ডাক্তৰক মাতিলে।

ফটিকে তাৰ ৰঙা চকু এবাৰ ডাঙৰকৈ মেলি মূধচৰ পিনে চাই হতবুদ্ধিৰ দৰে ক'লে- "মামা, মোৰ ছুটি হৈছে।"

মোমায়েকে ৰুমালেৰে চকুলো মুচি মৰমেৰে ফটিকৰ শীর্ণ তপত হাতখন নিজৰ হাতৰ ওপৰত তুলি তাৰ ওচৰত আহি বহিলে।

ফটিকে আকৌ বিৰ বিৰ কৰি বকিব ধৰিলে, ক'লে, "মা, মোক নামাৰিবি মা, সঁচা কৈছো, মই একো দোষ কৰা নাই।"

পিচদিনা দিনৰ ভাগত কিছুসময়ৰ বাবে সচেতন হৈ ফটিকে কাৰোবাৰ প্রত্যাশাত ডাঙৰ ডাঙৰ চকুৰে ঘৰৰ চাৰিওপিনে চালে। নিৰাশ হৈ আকৌ নীৰবে দেৱালৰ পিনে মুখ কৰি শুই থাকিল।

মোমায়েকে তাৰ মনৰ ভাৱ বুজি তাৰ কাণৰ কাষত মুৰ তল কৰি মৃদুস্বৰত ক'লে, "ফটিক, তোৰ মাক আনিব পঠিয়াইছোঁ।"

তাৰ পিচদিনাও পাৰ হ'ল, ডাক্তৰে বিমর্ষ মুখেৰে জনালে, অৱস্থা বৰ বেয়া।

মোমায়েকে চাকিৰ পোহৰ কমাই বেমাৰীৰ শয্যাৰ কাষত বহি প্রতিটো মূহুর্তত ফটিকৰ মাকৰ বাবে প্রতীক্ষা কৰিব ধৰিলে।

ফটিকে জাহাজৰ খালাচীৰ সু�ৰত ক'ব ধৰিলে, "এক বাঁও নিমিলে, দো বাঁও নিমিলে... এ.....এ...."। কলিকতালৈ যোৱাৰ সময়ত কিছু পথ ষ্টীমাৰত আহিব লগা হৈছিল, খালাচীবিলাকে ৰচি পেলাই পানী জোখ-মাখ কৰে, ফটিকে প্রলাপত সিহঁতৰ অনুসৰণত কৰুণ সুৰত পানী জোখ-মাখ কৰি আছে আৰু যি অকূল সমূদ্রত ল'ৰাজন যাত্রা কৰি আছে, ৰচি পেলাই সি ক'তো সেই পানীৰ তল বিচাৰি পোৱা নাই।

এনেকুৱা সময়ত ফটিকৰ মাক বৰদৈচিলাৰ দৰে ঘৰত প্রৱেশ কৰিয়েই চিঞৰি চিঞৰি কান্দি শোক প্রকাশ কৰিব ধৰিলে। বিশ্বম্ভৰে বহু কষ্টত কান্দোন বন্ধ কৰালে, মাকে ল'ৰাৰ বিছনাৰ ওচৰত গৈ উচ্চস্বৰত মাতিলে, "ফটিক, সোণটো মোৰ, মোৰ জানটো।"

ফটিকে যেন অতি সহজতেই তেখেতক উত্তৰ দি ক'লে- "হুঁ"

মাকে আকৌ মাতিলে- "অ ফটিক, মোৰ সোণটো।"

ফটিকে লাহে লাহে ইফালে ঘূৰি কাৰো পিনে নাচাই মৃদুস্বৰত ক'লে- "মা, এতিয়া মোৰ ছুটি হৈছে মা, এতিয়া মই ঘৰত যাওঁ"। ❑

लेखकों से निवेदन

- द्विभाषी राष्ट्रसेवक में प्रकाशन हेतु पत्रिका की प्रकृति के अनुरूप भाषा, साहित्य, समाज, कला व संस्कृति विषयक लेख आमंत्रित हैं।
- अनूदित रचनाओं के संदर्भ में मूल लेखक की अनुमति/स्वीकृति अनिवार्य है।
- लेखक अपनी रचनाएँ केंद्रीय हिंदी निदेशालय द्वारा स्वीकृत मानक हिंदी यूनिकोड में 13 प्वाइंट में टंकित कर पत्रिका के ई-मेल : rastrasewak51@gmail.com पर अथवा स्पष्ट अक्षरों में लिखकर समिति कार्यालय के पते (मंत्री, असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, रूपनगर, गुवाहाटी-781032, असम) पर भेजें।
- अस्वीकृत रचनाएँ लौटाई नहीं जाएँगी। अत: भेजी गई रचना की प्रति अपने पास अवश्य रखें।
- लेखक अपनी रचना के साथ अपना नाम, पदनाम, मोबाइल नं., ई-मेल, पूरा पता सहित एक पासपोर्ट साइज फोटो अवश्य भेजें।
- शोधपत्र की न्यूनतम शब्द-सीमा 2000 और अधिकतम 4000 होनी चाहिए और सार 150 से 200 शब्दों के भीतर होना चाहिए।
- असमीया भाषा में लिखे गए लेख को पेजमेकर फारमेट में गीतांजलि फंट, 12 प्वांइट में टाइप कराकर भेज सकते हैं।
- शोधपत्र के लेखन में एमएलए शैली का पालन करना चाहिए।
- शोधपत्र में क्रमश: शीर्षक, सार, प्रस्तावना, उद्देश्य, संसाधन/सामग्री, प्रविधि/पद्धति, क्षेत्र, मूल विषयवस्तु का विश्लेषण, परिणाम/उपलब्धियाँ, निष्कर्ष और उद्धृत कार्य शामिल हो सकते हैं।
- शोधपत्र की मौलिकता हेतु रचना के साथ घोषणा-पत्र संलग्न किया जाना चाहिए।
- लेखक अपनी तथ्यात्मक सटीकता के लिए पूरी तरह जिम्मेदार हैं।

द्विभाषी राष्ट्रसेवक का सदस्यता प्र-पत्र

यहाँ से काटिए

नाम : .....

पदनाम : .....

पूरा पता : .....

: .....

ई-मेल : ..... मोबाइल : .....

RTGS का विवरण : .....

सदस्यता शुल्क

व्यक्तिगत		*संस्थागत*	
प्रति अंक	: रु. 50/-	प्रति अंक	: रु. 100/-
वार्षिक	: रु. 550/-	वार्षिक	: रु. 1,000/-
दो वर्षों के लिए	: रु. 1,000/-	दो वर्षों के लिए	: रु. 2,000/-
पाँच वर्षों के लिए	: रु. 2,500/-	पाँच वर्षों के लिए	: रु. 4,500/-
आजीवन सदस्य	: रु. 10,000/-		

निर्धारित शुल्क मनीऑडर/डी.डी. के द्वारा असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के नाम से समिति कार्यालय के पते पर भेजा जा सकता है। ऑनलाइन शुल्क निम्न विवरण के अनुसार भेजें :-

Name of Beneficiary : Asom Rastrabhasha Prachar Samiti
A/c No. : 0853010182614
Name of Bank & Branch : Punjab National Bank, G.S. Road
IFS Code : PUNB0085320

अधिक जानकारी के लिए संपर्क करें -

डॉ. क्षीरदा कुमार शइकीया, मंत्री, असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, सेवा मंदिर पथ, रूपनगर, डाक : इंद्रपुर, जिला : कामरूप महानगर, गुवाहाटी-781032 (असम), मो. 9101541380, ई-मेल : rastrasewak51@gmail.com

फिजी में आयोजित 12वें विश्व हिंदी सम्मेलन में असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति को प्रदत्त प्रतीक चिह्न

POSTAL REGISTRATION NO. GH/127/2022-24 ✧ Date of Publication : 28th February, 2023 ✧ RNI No. ASSBIL/2009/31008

एक हृदय हो भारत जननी
असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, गुवाहाटी

संपादकीय कार्यालय :

प्रधान संपादक, द्विभाषी राष्ट्रसेवक, असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, सेवा मंदिर पथ, रूपनगर, गुवाहाटी-781032

मो. 9101541395 / 9101541380, ई-मेल : rastrasewak51@gmail.com